प्रेतात्माओं से सम्पर्क

ॐ

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

सत्य घटनाक्रमेण आधारितः पारलौकिक कथा श्रृंखला

मृतात्माओं से सम्पर्क

सत्य घटनाओं पर आधारित भूत-प्रेत कथा-प्रसङ्ग

एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुञ्ज

अरुण कुमार शर्मा

सङ्कलन

मनोज कुमार शर्मा

सम्पादन

नीरू सिंह

सीईओ (एनशिएंट साइन्स पब्लिशर्स)

संशोधन एवं परिवर्द्धन

चन्द्रशेखर कुमार

भौतिकी शास्त्र (पञ्चवर्षीय परास्नातक)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर

संस्थापक

प्राचीन क्रिया योग संस्थान

कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः

सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः

TeX अमेरिकन मैथेमैटिकल सोसाइटी का व्यापार-चिन्ह है।
METAFONT एडिसन वेस्ली का व्यापार-चिन्ह है।

हालाँकि संपादक एवं प्रकाशक ने इस पुस्तक के सम्पादन व प्रकाशन कार्य में अतिशय

सावधानी का परिचय देने का प्रयास किया है, परन्तु कतिपय त्रुटियों अथवा विलोप के कारण व्यक्त या निहित आश्वस्ति के भार से पूर्णतया विमुक्त है। इस पुस्तक में लिपिबद्ध ज्ञान के प्रयोग वश आकस्मिक या परिणामी क्षति से भी पूर्णतया विमुक्त है।

किसी भी टिप्पणी, सुझाव एवं प्रतिक्रिया के लिए प्रकाशक के निम्न पते, दूरभाष या ई-मेल पर संपर्क करें -

प्राचीन क्रिया योग संस्थान
चन्द्रशेखर कुमार
#४०४, हरी कुञ्ज
सरायढेला, धनबाद
झारखण्ड ८२८१२७, भारतवर्ष
दूरभाष +९१ ७४९३०८६१८७
ईमेल ancientkriyayoga@gmail.com

सर्वाधिकार ©२०१७ चन्द्रशेखर कुमार

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का सर्वाधिकार सुरक्षित है और किसी भी निषिद्ध प्रतिलिपि, संचयन या पुनरूद्धार प्रणाली में प्रसारण किसी भी रूप में करने से पहले या किसी भी तरह, इलेक्ट्रॉनिक, यान्त्रिक, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग द्वारा, या वैसे ही जब तक अन्यथा कहा न जाये, सम्पादक / प्रकाशक की पूर्व अनुमति अनिवार्य है।

एनशिएंट क्रिया योग मिशन : अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ

- अनलॉकिंग हनुमान चालीसा : रेवेलेशन्स ऑफ ए हाउसहोल्डर मिस्टीक (हनुमान चालीसा कुंजिका : एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुंज)
- खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या रहस्य कुञ्जिका (व्योमगम्योपनिषद)
- ड्रिन्क एयर थेरेपी टू किल डायबिटीज (ए पाथ टू सेल्फ-क्योर एण्ड इम्मोर्टलिटी)
- आकाशचारिणी (सत्य घटनाओं पर आधारित योग-तान्त्रिक कथा प्रसंग)
- तृतीय नेत्र (सत्य घटनाओं पर आधारित सिद्ध साधक सत्सङ्ग एवम् योग-तान्त्रिक साधना प्रसङ्ग)
- महा प्राणायामी लाहिड़ी गुरु गीता रहस्य कुञ्जिका
- महा प्राणायामी लाहिड़ी अवधूत गीता रहस्य कुञ्जिका

- महा प्राणायामी लाहिड़ी कबीर गीता रहस्य कुञ्जिका

अध्याय अनुक्रमणिका

- प्रस्तावना
- अन्तर्दृष्टि

१ मृतात्माओं से सम्पर्क

२ मृत्यु से पुनर्जन्म की ओर

३ ब्रह्मपिशाच का प्रतिशोध

४ मैं प्रेतयोनि से मुक्ति चाहती हूँ

५ यात्रा प्रेत लोक की

६ मैं एक भटकती हुई आत्मा हूँ

७ जिन्नात का प्रतिशोध

८ हम सब भावी प्रेत हैं

९ एक तांत्रिक की अतृप्त आत्मा

१० ज्योतिष का अभिशाप

११ रहस्यमयी गुफा

१२ प्रेत की सन्तान

१३ मरने के बाद

१४ जब आत्मा ने मृत्यु का रहस्य खोला

१५ क्या वह विषकन्या थी

१६ पत्नी की आत्मा

१७ एक प्रख्यात कवि का प्रेतात्माओं से साक्षात्कार

१८ क्या वह प्रेतनी थी ?

१९ जब पिछले जन्म की प्रेमिका 'माध्यम' बनी

० परिशिष्ट

१ आत्मा की वैज्ञानिक खोज

२ प्रेतनी की इच्छा

३ प्रेत ने दिया सुराग

४ स्वप्नों में दिवंगतों से मिलन सम्भव

५ मृत्यु के बाद क्या याद आता है ?

६ प्रेतात्मा की उभरती तस्वीर

७ मृत्यु के समय कितनी वेदना

७. १ आश्चर्यजनक दुर्घटना

८ मृत्यु न कष्टदायी होती है, न ही भयानक

९ प्रेतात्माओं से साक्षात्कार

१० मृत्यु जीवन का अन्त नहीं

१०.१ दुर्घटना के बाद पुनर्जन्म

१०.२ असाधारण प्रतिभा

११ यमदूतों की भूल

१२ संन्यासी की आत्मा

० अन्य महत्वपूर्ण योगपरक ग्रन्थ

सत्य घटनाक्रमेण आधारितः पारलौकिक कथा श्रृंखला

१ तृतीय नेत्र (सत्य घटनाओं पर आधारित सिद्ध साधक सत्सङ्ग एवम् योग-तान्त्रिक साधना प्रसङ्ग)

२ The Third Eye (Tantric Yoga Stories Based on True Events)

३ आकाशचारिणी (सत्य घटनाओं पर आधारित योग-तान्त्रिक कथा प्रसंग)

४ The Flying Yogini (Tantric Yoga Stories Based on True Events)

कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित भाष्य श्रृंखला

१ हनुमान चालीसा कुंजिका (एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुंज)

२ Drink Air Therapy to Kill Diabetes (A Path To Self-Cure And Immortality)

३ खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या रहस्य कुञ्जिका (व्योमगम्योपनिषद)

४ Khechari Siddha Unlocking Aakashgamini Vidya

कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित आत्मदर्शन श्रृंखला

१ महा प्राणायामी लाहिड़ी गुरु गीता रहस्य कुञ्जिका

२ महा प्राणायामी लाहिड़ी कबीर गीता रहस्य कुञ्जिका

३ महा प्राणायामी लाहिड़ी अवधूत गीता रहस्य कुञ्जिका

४ महा अवधूत तैलङ्ग स्वामी जीवन रहस्य कुञ्जिका

५ महा प्राणायामी लाहिड़ी जीवन रहस्य कुञ्जिका

प्रस्तावना

उन दिनों मेरा अधिकांश समय प्रारब्धानुसार गुप्त प्राणायाम साधना में व्यतीत होता था, लेखनी रुक-सी गयी थी। काल की स्थिरगम्यता मानों अनुभवजन्य किसी योगलब्ध भाव की प्रतीक्षा मात्र थी। दैव भाव से मेरे हाँथों में एक साथ कई कृतियाँ आ गई जिनमें 'मृतात्माओं से सम्पर्क' भी था। कौतूहलवश कतिपय पृष्ठों के अवलोकन मात्र ने योगानन्द कृत एक विशिष्ट पुस्तक की याद दिला दी - ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी। लेकिन लेखक "अरुण कुमार शर्मा" एक गृहस्थ अध्यात्म अन्वेषी लगे जिनका योगाभ्यास से दूर-दूर तक कोई सरोकार नहीं था, परन्तु इनकी कृतियाँ प्राणायामजन्य सत्य घटनाओं की अद्वितीय साक्ष्य थी।

स्वयं लेखक के शब्दों में -

प्रस्तुत कथा संग्रह में आप जो कुछ भी पढ़ेंगे, निश्चय ही कुछ प्रसंगों और कुछ घटनाओं पर आपको सहसा विश्वास नहीं होगा। यह स्वाभाविक भी है। मनुष्य उसी विषय वस्तु पर विश्वास करता है जो उसे स्वाभाविक प्रतीत होता है। अस्वाभाविकता उसे स्वीकार नहीं।

लेकिन संसार में कुछ ऐसे भी लोग हुए है जिनके जीवन में अस्वाभाविक जिसे आप दूसरे शब्दों में 'अलौकिक' कह सकते है - घटनाएँ घटी हैं और बराबर घटती भी रहती है। यदि इसे आप अतिशयोक्ति न समझे और कल्पना अथवा विचारों की उड़ान न समझें तो ऐसे ही लोगों में एक मैं भी हूँ। मेरे जीवन में बराबर ऐसी तमाम लौकिक, पारलौकिक घटनाएँ घटी है, जिन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। कभी-कभी स्वयं सोचता हूँ कि क्या मैं ही उनका प्रत्यक्षदर्शी रहा हूँ, मैंने ही अनुभव किया है उनका, यदि मैं उन अविश्वसनीय लौकिक पारलौकिक घटनाओं को सम्पूर्ण रूप से लिपिबद्ध करूँ तो एक बृहद ग्रन्थ तैयार हो जाय, लेकिन ऐसा सम्भव नहीं है मेरे लिए। मैंने उन्हीं को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है जिन्हें आध्यात्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाणित सिद्ध करने में समर्थ रहा हूँ —

पारलौकिक जगत का अस्तित्व है इसमें सन्देह नहीं। भूत-प्रेत जैसी अशरीरी आत्माओं का अस्तित्व हैं, इसमें भी सन्देह नहीं। इन सबके संबंध में जो कुछ देखा है और जो कुछ अनुभव किया है उन्हीं को अपनी भाषा शैली में लिपिबद्ध कर 'मृतात्माओं से सम्पर्क' में प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है, पूर्ण विश्वास के साथ मेरे इस संग्रह को स्वीकार करेंगे आप।

कालचक्रानुसार इन कृतियों का वैदिक ज्ञान-सागर-प्रचार-प्रसार-कृत्य के अन्तर्गत विश्व के प्रत्येक कण में प्रवाह स्वतः निसृत हो रहा है। इस आध्यात्मिक ज्ञान की किरणें प्राचीन क्रिया योग संस्थान द्वारा परिष्कृत रूप में प्राचीन सनातन वैदिक मठ की अंतरात्मा में स्थापित हो चुकी हैं।

ऐसी ही एक कृति पी० डी० ऑसपेंसकी की टर्शियम ऑरगॅनॉन थी। प्रकृति की अबूझ पहेलियों का ये भी एक पहलू था।

प्रस्तुत कथा संग्रह मृतात्माओं से सम्पर्क के अन्तर्गत नवदश कथाओं का संग्रह है। ये अपने आप में विशिष्ट तो हैं ही, रहस्य रोमांच से भरपूर और सनसनी खेज भी हैं। यद्यपि ये अविश्वसनीय लगे किन्तु इनमें अतिशयोक्ति नहीं है। लेखक की भाषा में प्राञ्जलता और भाषा पर अधिकार भी है।

मृत्यु के समय एक नीरव विस्फोट के साथ स्थूल शरीर के परमाणुओं का विघटन शुरु हो जाता है और शरीर को जला देने या जमीन में गाड़ देने के बाद भी ये परमाणु वातावरण में बिखरे रहते हैं। परन्तु इनमें फिर से उसी आकृति में एकत्र होने की तीव्र प्रवृत्ति रहती है। साथ ही इनमें मनुष्य की अतृप्त भोग-वासनाओं की लालसा भी बनी रहती है। इसी को प्रेतात्मा कहते हैं। प्रेतात्मा का शरीर वासनामय आकाशीय होता है। मृत्यु के बाद और प्रेतात्मा के पूर्व की अवस्था को 'मृतात्मा' कहते हैं। मृतात्मा और प्रेतात्मा में बस थोड़ा सा ही अन्तर है।

मृतात्माओं का शरीर आकाशीय होने के कारण उनकी गति प्रकाश की गति के समान होती है। वे एक क्षण में हज़ारों मील की दूरी तय कर लेती हैं। अपने आकर्षण केन्द्र की ओर वे तुरन्त दौड़ पड़ती हैं।

इसी पुस्तक से

... बाबा पहले थोड़े गम्भीर हो गये । फिर बोले, 'यह कोई आश्चर्यजनक अथवा असम्भव बात नहीं है । जहाँ जो घटना अचानक घटती है वहाँ उस स्थान पर दीर्घकाल तक के लिये अपना अमिट छाप छोड़ देती है, जिसे विशेष साधनों द्वारा पुन: देखा जा सकता है ।

'क्या यह सम्भव है ?'

'हाँ बिल्कुल सम्भव हाँ ! जो इसके विज्ञान को जानते-समझते हैं - वे भूतकाल में घटी हुई किसी भी घटना को वर्तमान में प्रत्यक्ष कर सकते हैं ।'

'वह विज्ञान क्या है ?'

'वह वियोग-तंत्र के अन्तर्गत एक विशिष्ट विज्ञान है, जिसका नाम है - 'क्षण विज्ञान' । उसके सिद्धान्त के अनुसार, जिस वायवीय वातावरण में मनुष्य रहता है - उसमें एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा घनीभूत है । वह 'ईथर' से भी सूक्ष्म और अधिक शक्तिशाली है । उसके परमाणु दो प्रकार के होते हैं । पहले प्रकार के परमाणु ध्वनि को ग्रहण करते हैं और दूसरे प्रकार के परमाणु दृश्य को । दोनों का ग्रहण होता है तो एक ही साथ, मगर उसके प्राकट्य में अन्तर हो जाता है समय का । प्रकाश की गति में और ध्वनि की गति में एक मील प्रति सेकेण्ड का अन्तर समझना चाहिये । जितनी तेजी से घटना घटती है उसी तेजी से वे परमाणु दृश्य और ध्वनि को ग्रहण करते हैं । इस प्रकार के दृश्य और इस प्रकार की ध्वनियाँ वातावरण में काफी दिनों तक रहती हैं ।'

बाबा की ये सारी सैद्धांतिक बातें मेरे गले के नीचे नहीं उतरीं । शायद बाबा मेरे भाव को समझ गये । 'बोले, इसी मकान में और इसी कमरे में दस वर्ष पूर्व एक नवयुवती की हत्या कर दी गयी थी ।'

'अच्छा।' मैं आश्चर्य से बोला, 'मगर मैं इसी मुहल्ले के करीब रहता हूँ । मुझे इस हत्या का पता नहीं चला ।'

'चलता भी कैसे ? मारकर लोगों ने इसी मकान में लाश दफना दी और सबेरा होने पर यह अफवाह उड़ा दी गयी थी कि वह युवती मालमत्ता लेकर कहीं भाग गयी ।'

'हाँ आपने ठीक कहा- मैंने भी ऐसा ही सुना था । मगर आप कहना क्या चाहते हैं ?'

'क्या तुम दस वर्ष पूर्व के उस मरण-दृश्य को देखोगे ?'

'क्या आप उसे दिखा सकते हैं ?'

'क्यों नहीं ?' बाबा हँसकर बोले, 'अभी दिखा सकता हूँ ।' ...

आशा है प्रस्तुत कथा-संग्रह भी अन्य कथा-संग्रहों की भांति पाठकों को प्रीतिकर होगी।

प्रस्तुत संस्करण का निर्माण प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) द्वारा किया गया है। इस प्रक्रिया में कंप्यूटर प्रणाली की अत्याधुनिक विधियों (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++ इत्यादि) का पूर्ण प्रयोग किया गया है।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से मृतात्माओं से सम्पर्क करने की सहज वैदिक विधि को प्राप्त किया, जिसका विस्तृत विवरण भविष्य में एक ग्रन्थ रूप में साधकों के लिए उपलब्ध होगा ।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।

सुझाव, प्रतिक्रिया एवं समीक्षा हेतु निर्दिष्ट : *ancientkriyayoga@gmail.com*.

चन्द्रशेखर कुमार
प्राचीन क्रिया योग संस्थान
जनवरी २०१७

अन्तर्दृष्टि

वर्ष २०१०-२०१३ में मातृश्री के साथ प्राणायाम के नित्य ५-६ घण्टे भक्ति भाव से योगाभ्यास करते हुए दिव्य ऊर्जाओं एवं महात्माओं का अलौकिक साक्षात्कार प्राप्त हुआ । इस संसर्ग व सत्संग से अभिभूत होकर प्राचीन क्रिया योग संस्थान का बीजारोपण हुआ। सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः। कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

अन्तःपुर में अद्भुत प्रकृति के गूढ़ अर्थों एवं अलौकिक अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन प्रारम्भ हुआ जिनको अर्द्धांगिनी के अदम्य लगन एवं सहयोग से शनैः शनैः लिपिबद्ध करना आरम्भ किया। काल की स्थिरगम्यता मानों अनुभवजन्य किसी योगलब्ध भाव की प्रतीक्षा मात्र थी

इस पारलौकिक स्पंदन को लेखनी में समाहित करना अति दुष्कर होता अगर ये कार्य सिद्ध साधन निर्देशित न होता।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त

जीव नगण्य एवं रिक्त है।

साधनाकाल में साधक अपरिमित चरणों से गुजरता है। किसी भी चरणविशेष के पड़ाव का निर्धारण उसकी विशिष्टता एवं साधक की अंतर्दशा से होता है। इस साधनाक्रम में साधक की बाह्य दशावलोकन से उसकी अन्तर्दशा का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता है। बाह्य लक्षण यथा शरीर का भयानक कम्पन एवं उत्तोलन (वायु में तैरना) इत्यादि से दर्शक हत्प्रभ एवं विस्मित हो उठता है। जबकि साधक स्वयं साक्ष्य भाव से इन बाह्य लक्षणों को सरलता एवं सुगमता से स्वीकार करते हुए साधनारत रहता है।

कालांतर में साधक को ये सत्य विदित होता है कि इसका प्रत्येक 'शब्द' अक्षुण्ण, पारलौकिक एवं अक्षय है जिसका प्रादुर्भाव सामान्यतः अगोचर है।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से गुप्त-लुप्त दिव्य विद्याओं की सहज वैदिक विधि को प्राप्त किया, जिसका विस्तृत विवरण भविष्य में ग्रन्थों के रूप में साधकों के लिए उपलब्ध है ।

कालचक्रानुसार इन कृतियों का वैदिक ज्ञान-सागर-प्रचार-प्रसार-कृत्य के अन्तर्गत विश्व के प्रत्येक कण में प्रवाह स्वतः निसृत हो रहा है । इस आध्यात्मिक ज्ञान की किरणें प्राचीन क्रिया योग संस्थान द्वारा परिष्कृत रूप में प्राचीन सनातन वैदिक मठ की अंतरात्मा में स्थापित हो चुकी हैं

ये कृतियाँ प्राणायामजन्य सत्य घटनाओं एवं अनुभवों की अद्वितीय साक्ष्य हैं ।

ये रचनाएँ समस्त साधकों को समर्पित है।

प्रस्तुत ग्रन्थों का निर्माण प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) द्वारा किया गया है। इस प्रक्रिया में कंप्यूटर प्रणाली की अत्याधुनिक विधियों (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++ इत्यादि) का पूर्ण प्रयोग किया गया है।

सुझाव, प्रतिक्रिया एवं समीक्षा हेतु निर्दिष्ट : *ancientkriyayoga@gmail.com*.

चन्द्रशेखर कुमार

भौतिकी शास्त्र (पञ्चवर्षीय परास्नातक)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर

व्यस्थापक (सीईओ) व संस्थापक (फाउण्डर)
प्राचीन क्रिया योग संस्थान कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः
सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः
#४०४, हरी कुञ्ज, सरायढेला, धनबाद, झारखण्ड ८२८१२७, भारतवर्ष
मुख्य तकनीकी अधिकारी (सीटीओ) व सह-संस्थापक (को-फाउण्डर)

एनशिएंट साइन्स पब्लिशर्स

नीरू सिंह

मुख्य कार्यपालक अधिकारी (सीओओ) व सह-संस्थापक (को-फाउण्डर)
प्राचीन क्रिया योग संस्थान व्यस्थापक (सीईओ) व संस्थापक (फाउण्डर)
एनशिएंट साइन्स पब्लिशर्स
#४, नॉर्थ एस के पुरी, कृष्णा अपार्टमेण्ट के पीछे, पटना, बिहार ८०००१३, भारतवर्ष

अध्याय १
मृतात्माओं से सम्पर्क

परामनोविज्ञान से एम० ए० करने के बाद मन में आत्माओं के सम्बन्ध में कौतूहल और जिज्ञासाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। उस समय प्रेत-विद्या अथवा आत्म-विद्या पर शोध करने की व्यवस्था विश्वविद्यालयों में नहीं था, अत: मैंने व्यक्तिगत रूप से प्रेत-विद्या अथवा आत्म-विद्या पर खोज करने का निश्चय कर लिया। सबसे पहले मैंने इन दोनों विषयों से सम्बन्धित तमाम पुस्तकों और हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह किया। ऐसी पुस्तकों का जो संग्रह मेरे पास है, वैसा शायद ही किसी और के पास हो। खोज के सिलसिले में मैंने यह जाना कि आत्माओं के कई भेद हैं, जिनमें मृतात्मा, प्रेतात्मा, सूक्ष्म-आत्मा और जीवात्मा - ये चार मुख्य हैं।

मृत्यु के बाद मनुष्य कहाँ चला जाता है और उसकी आत्मा किस अवस्था में रहती है? इस विषय में मुझे बचपन से ही कौतूहल रहा है। सच तो यह है कि मृत्यु के विषय में भय और शोक की भावना से कहीं अधिक जिज्ञासा का भाव मेरे मन में रहा है। शायद इसी कारण मैंने परामनोविज्ञान में एम०ए० किया और शोध शुरू की।

वास्तव में मृत्यु जीवन का अन्त नहीं, बल्कि जीवन का प्रारम्भ है। जैसे दिन भर के परिश्रम के बाद नींद आवश्यक है उसी प्रकार जीवन भर के श्रम और भाग-दौड़ के बाद मृत्यु आवश्यक है। मृत्यु जीवन भर की थकान के बाद हमें विश्राम और शान्ति देती है, जिसके फलस्वरूप हम पुन: तरोताजा होकर नया जीवन शुरू करते हैं।

मेरी नजर में मृत्यु का अर्थ है गहरी नींद, जिससे जागने पर हम नया जीवन, नया वातावरण और नया परिवार पाते हैं, फिर हमारी नयी यात्रा शुरू होती है। इस प्रसंग में यह भी जान लेना जरूरी है कि स्वर्ग-नरक केवल कल्पना मात्र है। शास्त्रों में इनकी कल्पना इसलिए की गयी है कि लोग पाप से बचें और सद्कार्य की ओर प्रवृत्त हों। नरक का भय उन्हें दुष्कर्म से बचायेगा और स्वर्ग-सुख की लालसा उन्हें सद्कार्य अथवा पुण्य की ओर प्रेरित करेगी। जो कुछ भी है, वह हमारे विचार हैं, हमारी भावनायें हैं। उन्हीं के अनुसार मरणोपरान्त हमारे लिए वातावरण तैयार होता है।

मृत्यु एक मंगलकारी क्षण है। एक सुखद और आनन्दमय अनुभव है। मगर हम उसे अपने संस्कार, वासना, लोभ आदि के करण दारुण और कष्टमय बना देते हैं। इन्हीं सबका संस्कार हमारी आत्मा पर पड़ा रहता है, जिससे हम मृत्यु के अज्ञात भय से हमेशा त्रस्त रहते हैं ।

मृत्यु के समय एक नीरव विस्फोट के साथ स्थूल शरीर के परमाणुओं का विघटन शुरू हो जाता है और शरीर को जला देने या जमीन में गाड़ देने के बाद भी ये परमाणु वातावरण में बिखरे रहते हैं। परन्तु इनमें फिर से उसी आकृति में एकत्र होने की तीव्र प्रवृत्ति रहती है। साथ ही इनमें मनुष्य की अतृप्त भोग-वासनाओं की लालसा भी बनी रहती है। इसी को प्रेतात्मा कहते हैं। प्रेतात्मा का शरीर वासनामय आकाशीय होता है। मृत्यु के बाद और प्रेतात्मा के पूर्व की अवस्था को 'मृतात्मा' कहते हैं। मृतात्मा और प्रेतात्मा में बस थोड़ा-सा ही अन्तर है। वासना और कामना अच्छी - बुरी दोनों प्रकार की होती है। स्थूल शरीर को छोड़कर जितने भी शरीर हैं - सब भोग - शरीर हैं। मृतात्माओं के भी शरीर भोग - शरीर हैं। वे अपनी वासनाओं - कामनाओं की पूर्ति के लिए जीवित व्यक्तियों का सहारा लेती हैं। मगर उन्हें व्यक्तियों का, जिसका हृदय दुर्बल है अथवा जिनके विचार, भाव, संस्कार और वासनायें उनसे मिलती-जुलती हैं ।

मृतात्माओं का शरीर आकाशीय होने के कारण उनकी गति प्रकाश की गति के समान होती हैं। वे एक क्षण में हजारों मील की दूरी तय कर लेती हैं। अपने आकर्षण-केन्द्र की ओर वे तुरन्त दौड़ पड़ती हैं ।

जीवित व्यक्तियों के शरीर में मृतात्मायें और प्रेतात्मायें कैसे प्रवेश करती हैं - इस पर मैंने काफी गहराई से खोज की। मृतात्माओं और प्रेतात्माओं में मैंने जो किंचित अन्तर बताया है वह यह है कि मृतात्मायें अपने संस्कार और अपनी वासनाओं को जिस व्यक्ति में पाती हैं उसी के माध्यम से उस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर अपनी कामना-पूर्ति कर लिया करती हैं। उदाहरण के लिए - जैसे किसी व्यक्ति को पढ़ने-लिखने का शौक अधिक है। वह उसका संस्कार बन गया है। उसमें पढ़ना-लिखना उसकी 'वासना' कहलायेगी। जब कभी यह अपने संस्कार अथवा अपनी वासना के अनुसार पढ़ने-लिखने बैठेगा, उस समय कोई मृतात्मा जिसकी वही वासना रही है, तुरन्त उस व्यक्ति की ओर आकर्षित होगी और वासना एवं संस्कार के ही माध्यम से उसके शरीर में प्रवेश कर अपनी वासना की पूर्ति कर लेगी। दूसरी ओर उस व्यक्ति की हालत यह होगी कि वह उस समय का पढ़ा-लिखा भूल जायेगा। किसी भी प्रकार का उसमें संस्कार न बन पायेगा ।

इसी प्रकार अन्य वासना, कामना और संस्कार के विषय में भी समझना चाहिये। हमारी जिस वासना को मृतात्मायें भोगती हैं, उसका परिणाम हमारे लिए कुछ भी नहीं होता। इसके विपरीत कुछ समय के लिए उस वासना के प्रति हमारे मन में अरुचि पैदा हो जाती है। इस सम्बन्ध में प्रेतात्माओं के अपने अलग ढंग हैं । वे जिस व्यक्ति को अपनी वासना, कामना अथवा अपने संस्कार के अनुरूप देखती हैं तुरन्त सूक्ष्मतम प्राणवायु यानी 'ईश्वर' के माध्यम से उसके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और अपनी वासना को तृप्त करने लग जाती हैं। इसी को 'प्रेत-बाधा' कहते हैं। ऐसे व्यक्ति की बाह्य चेतना को प्रेतात्मायें लुप्त कर

उसके अन्तर्चेतना को प्रभावित कर अपनी इच्छानुसार उस व्यक्ति से काम करवाती हैं। उनके कार्य, विचार, भाव आदि उसी व्यक्ति के-से होते हैं जिस पर वह 'हावी' होती हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं, इस विषय में पाश्चात्य देशों में अनेक अनुसंधान हो रहे हैं। परामनोविज्ञान के हजारों केन्द्र खुल चुके हैं। वास्तव में यह अत्यन्त गहन और जटिल विषय है जिसकी विवेचना थोड़े से शब्दों में नहीं हो सकती।

अच्छे संस्कार और अच्छी वासना वाली मृतात्मायें और प्रेतात्मायें तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर रहती हैं मगर जो कुत्सित भावनाओं, वासनाओं और बुरे संस्कारों की होती हैं वे गुरुत्वाकर्षण के भीतर मानवीय वातावरण में ही चक्कर लगाया करती हैं।

इन दोनों प्रकार की आत्माओं को कब और किस अवसर पर मानवीय शरीर मिलेगा और वे कब संसार में लौटेंगी इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बतलाया जा सकता है।

मगर यह बात सच है कि संसार के प्रति आकर्षण और मनुष्य से संम्पर्क स्थापित करने की लालसा उनमें बराबर बनी रहती है। वे बराबर ऐसे लोगों की खोज में रहती हैं जिनसे उनकी वासना या संस्कार मिलते-जुलते हों। चालीस वर्ष के दीर्घकाल में, मेरा जितनी मृतात्माओं से सम्पर्क हुआ है, उनकी सूची काफी लम्बी है। अन्तिम रूप से मैंने यही निष्कर्ष निकाला है कि जो व्यक्ति जिस अवस्था में, जिस प्रकृति या स्वभाव का होता है उसकी मृतात्मा या प्रेतात्मा भी उसी स्वभाव की होती है।

मैंने अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की मृतात्माओं और प्रेतात्माओं से सम्पर्क स्थापित कर उनकी मति-गति का पता लगाया है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि सभी प्रकार की आत्माओं से संम्पर्क स्थापित करने, उनकी मति-गति का पता लगाने और उनसे लौकिक सहायता प्राप्त करने के लिए तंत्र शास्त्र में कुल सोलह प्रकार की क्रियायें अथवा साधनायें हैं। वैसे पश्चिम के देशों में इसके लिए 'प्लेन चिट' का आविष्कार हुआ है। मगर वह साधन, पूर्ण सफल नहीं है। उसमें धोखा है। जिस मृतात्मा को बुलाने के लिए प्रयोग किया जाता है वह स्वयं न आकर, उसके स्थान पर उसकी नकल करती हुई आस-पास भटकने वाली मामूली किस्म की आत्मायें आ जाती हैं। मृतात्मा यदि बुरे विचारों, भावों और संस्कारों की हुई तो उनके लिए किसी भी साधन-पद्धति का प्रयोग करते समय मन के एकाग्रता की कम ही आवश्यकता पड़ती है, मगर जो ऊँचे संस्कार, भाव-विचार और सद्भावना की आत्मायें हैं, उनको आकर्षित करने के लिए अत्यधिक मन की एकाग्रता और विचारों की स्थिरता की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि एकमात्र 'मन' ही ऐसी शक्ति है, जिससे आकर्षित होकर सभी प्रकार की आत्मायें स्थूल, लौकिक अथवा पार्थिव जगत में प्रकट हो सकती हैं। सर्वप्रथम यौगिक क्रियाओं द्वारा अपने मन को एकाग्र और शक्तिशाली बनाना पड़ता है। जब इसमें भरपूर सफलता मिल जाती है तो तांत्रिक पद्धति के आधार पर उनसे सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा की जाती है। भिन्न-भिन्न आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने की भिन्न-भिन्न तांत्रिक पद्धति है। जैसा कि मैं ऊपर बतला चुका हूँ, आत्मा के चार मुख्य भेद हैं। पहले आत्मा को ही लीजिए। क्या है वह ?

विश्व-ब्रह्माण्ड में क्रियाशील और सर्वव्यापक परम-तत्व जिसे आप परमात्मा कह सकते हैं, उसका एक लघु अंश है आत्मा। उसके भीतर एक चेतन-तत्व है जिसे 'मन' कहते हैं। जब वह चेतन-तत्व अर्थात् मन, जड़-तत्व के सम्पर्क में आता है तो उसमें विकार उत्पन्न हो जाता है। तब हम 'आत्मा' को 'जीवात्मा' कहने लग जाते हैं । इस विश्व-ब्रह्माण्ड में एक और 'तत्व' क्रियाशील है - जिससे 'गति' उत्पन्न होती है, वह तत्व है - प्राण तत्व। जीवात्मा भौतिक जगत में प्रवेश करने के पहले प्राण तत्त्व का आवरण धारण करती है। इसी आवरण को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। सूक्ष्म शरीरधारी आत्मा को ही सूक्ष्मात्मा कहते हैं। मरने के बाद वासना शरीर यानी प्रेतयोनि से मुक्ति होने के बाद मृतात्मा सूक्ष्म शरीर धारण कर अन्तरिक्ष की गहराई में चली जाती है और स्थूल जगत में पुनः आने के लिए स्थूल शरीर क्री प्रतीक्षा करती है। मैं अपनी इस कथा में केवल मृतात्माओं से सम्पर्क की ही चर्चा करूँगा और उससे संबन्धित एक ऐसी अविश्वसनीय और रोमांचकारी घटना का उल्लेख करूँगा जिससे 'भारतीय आत्मविद्या' के तिमिराच्छन्न और रहस्यमय पक्ष पर प्रकाश पड़ेगा। मृतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के दो मुख्य तरीके हैं। पहला है किसी एकान्त स्थान या कमरे के शान्त एकान्त वातावरण में आधी रात के समय एक तेल का दीप जलाकर एकाग्र मन से किसी तांत्रिक-मंत्र का जाप करना। दूसरा तरीका किसी व्यक्ति को माध्यम बनाकर उसके शरीर से मृतात्माओं से मंत्रबल से सम्पर्क स्थापित करना। मैंने शुरु-शुरू में पहला तरीका ही अपनाया ।

बात १२ अगस्त १९४८ की है। उस समय मेरी उम्र करीब २५ वर्ष की रही होगी। युवावस्था में सभी सुनहले सपने देखते हैं और सभी किसी से प्रेम करने के लिए लालायित रहते हैं। मैंने भी श्यामली को लेकर सपना देखा था। उससे मैं प्रेम करता था और वह भी मुझे दिल से चाहती थी। हम दोनों शीघ्र शादी कर लेना चाहते थे। श्यामली को एक युवक गजानन पहले से ही चाहता था, मगर श्यामली उसकी कुछ बुरी आदतों के कारण उससे घृणा करती थी। जब मेरे प्रेम-प्रसंग के बारे में उसे मालूम हुआ और यह भी मालूम हुआ कि श्यामली मुझसे शादी करना चाहती है तो गजानन एकबारगी भड़क उठा । मुझसे तो कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी, मगर श्यामली को उसने कई बार धमकाया — श्यामली पर धमकी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । एक दिन तो गजानन ने श्यामली को जान से मार डालने की भी धमकी दे डाला। इस पर भी श्यामली विचलित नहीं हुई ।

उन्हीं दिनों मुझे एक जरूरी काम से कलकत्ता जाना पड़ गया। जब लौटकर आया तो मालूम हुआ कि श्यामली की हत्या कर दी गयी थी। मुझे गहरा आघात लगा। मेरा सारा अस्तित्व असीम दु:ख और पीड़ा के सागर में डूब गया। सारे सपने टूट गये और मेरे सामने गहरा अंधकार छा गया ।

श्यामली का कत्ल निश्चय ही गजानन ने किया था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं था। मगर कोई चश्मदीद गवाह न होने और कोई पुष्ट प्रमाण न मिलने के कारण वह साफ बच निकला। जब कभी मेरे सामने वह आता तो एक अनजानी-सी हूक मेरे मन में उठती। मगर मैं कर ही क्या सकता था ? एक साल का समय बीत गया । श्यामली की दी हुई पीले पुखराज की अँगूठी मेरी उँगली में पड़ी थी । जब कभी गौर से उसकी ओर देखता तो ऐसा

लगता कि श्यामली मुझे छोड़कर कहीं नहीं गयी है। किसी अदृश्य शक्ति के जरिये उसका सम्बन्ध मुझसे अज्ञात रूप से बराबर बना हुआ है। तभी मेरे मन में उसकी मृतात्मा से सम्पर्क स्थापित करने की प्रेरणा जागृत हुई। उन दिनों मैं बनारस के नगवा मुहल्ले में एक मकान में अकेला रहता था।

जाड़े की पूर्णमासी की रात थी। एक लम्बे-चौड़े कमरे को मैंने साफ किया और जब आधी रात हुई तो चमेली के तेल का दीपक जलाया और उसके सामने बैठकर एकाग्र व स्थिर मन से मंत्र का जाप करने लगा। गंगा की तरफ वाली खिड़की खुली थी। रुपहली चाँदनी छनकर कमरे के भीतर आ रही थी। रात का दो बजा होगा। चारों ओर सन्नाटा। कहीं किसी के चेतन होने का कोई संकेत नहीं। ऐसी हालत में चाँदनी के सहारे एक छाया को कमरे में प्रवेश करते हुए मैंने देखा। पहले तो वह घने कुहरे जैसी लगी, मगर बाद में धीरे-धीरे वह बर्फ जैसी ठोस और पारदर्शक हो गयी। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। तभी वह पारदर्शक छाया बिल्कुल सजीव, साकार सुन्दर युवती के रूप में बदल गयी। उसने पलटकर पीछे की ओर देखा। मैं भी अब उसको बिल्कुल साफ देख रहा था - चमकता हुआ साँवला चेहरा। वक्ष के नुकीलेपन से होड़ लेती हुई नाक और सम्मोहक आँखें। एक विचित्र-सी बेचैनी से मन-प्राण जकड़ गया। एक बार उसका मौन सम्मोहक नियन्त्रण स्वीकार कर लूँ ऐसा भाव मन में आया, मगर दूसरे क्षण मैंने अपने को सँभाल लिया। लाल होंठों पर बिखरी मुस्कराहट शायद मेरे इरादे को भाँप गयी थी। कुछ ऐसा लगा कि सम्मोहक आँखें सहम-सी गयी हैं, पर उनमें अस्वीकृति का कोई संकेत नहीं उभरा था और भय की भी कोई छाया नहीं उभरी थी। साँसों की गति पर चढ़ते-उतरते उरोज, सम्मोहक आँखें, बार - बार दिल को भेद कर निकल आने वाली मुस्कराहट, क्षण-प्रतिक्षण मेरी उत्तेजना को बढ़ा रहे थे। रह - रहकर माथा झन्ना उठता था।

सहसा मेरी निगाह उँगली में पहनी पुखराज जड़ी अँगूठी पर टिक गयी। कुछ क्षणों के लिए मेरा ध्यान उस युवती की ओर से हटकर कल्पना में डूब गया। अँगूठी पहनाने के बाद मेरी बाँह से टिके हुए उस मासूम चेहरे ने मुझसे कहा था - 'जब कभी भी अकेले रहोगे तो यह अँगूठी तुम्हें मेरी याद दिला देगी। तनहाइयों में यह अँगूठी तुम्हें मेरे प्यार का वास्ता देती रहेगी।' अँगूठी में जड़े पुखराज से वे बड़ी-बड़ी निश्छल आँखें मुझे उसी अन्दाज से देख रही थीं। वासना और भावना का एक अपूर्व - सा अन्तर्द्वन्द्व मेरे मानस में छिड़ गया था।

दीपक के मन्द प्रकाश में मैंने देखा - वह युवती स्थिर नजरों से मेरी ओर निहार रही थी।

एकाएक मेरी कल्पना टूट गयी। अचकचाकर पूछ बैठा - 'कौन हो तुम ?'

उत्तर में एक मधुर अट्टहास मेरे कानों से टकराया। वह अट्टहास श्यामली का नहीं बल्कि किसी और का था।

श्यामली की जगह वह कौन युवती आ गयी ? किसकी है यह मृतात्मा ? मैं सोचने लगा। तभी उस युवती ने फुसफुसाहट के स्वर में किंचित हँसते हुए कहा - 'मैं मालकिन हूँ। इस मकान की मालकिन। मेरा नाम शोभा है।'

’शोभा !’ मेरे मुँह से निकल पड़ा और उसी के साथ तीन साल पहले घटी एक घटना मेरे मानस-पटल पर उभर आयी। मकान मालिक मेरे एक मित्र थे, उनकी ही पत्नी का नाम था - शोभा। उसे मैंने देखा तो नहीं था मगर उसके रूप और सौन्दर्य के बारे में बहुत कुछ सुना था। शादी के कुछ ही दिनों बाद मालूम हुआ कि शोभा ने आत्महत्या कर ली है। आत्महत्या का कारण क्या था - यह अन्त तक मालूम न हो सका ।

’तुमने आत्महत्या क्यों की थी ?’ मैंने कारण जानने के उद्देश्य से पूछा ।

‘आत्महत्या ! ‘ शोभा की मृतात्मा ने कहा - ’मैंने आत्महत्या कहाँ की थी ? मेरी तो हत्या की गयी थी।’

’किसने तुम्हारी हत्या की थी ?’

‘तुम्हारे मित्र ने !’

‘क्यों ?’

‘उनको मुझ पर शक हो गया था ।’ इतना कहकर वह एकबारगी सिसकने लगी। फिर थोड़ी देर बाद उसी अवस्था में आगे कहने लगी - ‘गजानन को तो आप जानते ही हैं ।’

‘हाँ खूब जानता हूँ।’

‘वह मुझसे शादी करना चाहता था। मगर मेरे माता-पिता तैयार नहीं हुए । उन्होंने मेरी शादी आपके मित्र के साथ कर दी। गजानन बौखला गया । चारों ओर वह मुझे बदनाम करने लगा। उस पापी ने आपके मित्र को बतलाया कि तुम्हारी पत्नी के साथ मेरा शारीरिक संबंध रह चुका है, वह मुझसे प्रेम करती थी और शादी करने के लिए भी तैयार थी। मैंने आपके मित्र को काफी समझाया, मगर उनको मेरी किसी भी बात पर विश्वास नहीं हुआ। गजानन ने मेरी जिन्दगी नर्क बना दी थी, मगर अब मैं उसे नहीं छोड़ूँगी। आपने मुझे जगा दिया है। आपकी तांत्रिक-शक्ति ने मुझे चैतन्य कर दिया है। अब मैं गजानन से बदला ले लूँगी। उस बदमाश को छोड़ूँगी नहीं ।’

दूसरे ही दिन मुझे समाचार मिला कि गजानन अपने कमरे में मृत पाया गया है। प्रत्यक्षदर्शियों ने बतलाया कि कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द था। उसे तोड़कर लोग जब भीतर घुसे तो देखा कि वह बिस्तर पर औंधा पड़ा था और मुँह से काफी खून निकलकर बिस्तर पर फैला हुआ था। गजानन की मृत्यु सभी के लिए रहस्यमयी बनी रह गयी। भीतर से दरवाजा बन्द था । कमरे में न कोई दूसरा दरवाजा था और न तो कोई खिड़की ही थी इसलिए किसी के द्वारा गजानन की हत्या किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था । अत: पुलिस ने आत्महत्या मानकर अपनी जाँच खत्म कर दी ।

मैंने श्यामली की मृतात्मा से सम्पर्क करना चाहा था, मगर हो गया शोभा से। सोचा, अच्छा ही हुआ, एक रहस्य तो खुला और यह भी एक नयी बात मालूम हुई कि मृतात्मायें किसी न किसी तरह अपना बदला लेकर ही छोड़ती हैं। मगर भौतिक दृष्टि से लोगों को

उसका कार्य-कारण सम्बन्ध अन्त तक समझ में नहीं आता ।

उसके बाद मैंने कई बार तांत्रिक प्रयोग के बल पर श्यामली की मृतात्मा से सम्पर्क करना चाहा मगर बराबर असफल रहा। कारण समझ में नहीं आया। श्यामली से सम्पर्क होने के बजाय आसपास भटकती, अतृप्त आत्माओं से सम्पर्क हो जाता ।

आखिर एक रात इसका रहस्य खुला। हमेशा की तरह तेल का दीपक जलाकर मैं आधी रात में मंत्र-जाप कर रहा था । रात की गहराई के साथ-साथ निस्तब्धता भी घनीभूत होती जा रही थी। सहसा मुझे एक बिजली-सा झटका लगा । उसी के साथ मैंने देखा- सामने एक युवती खड़ी थी। मैं तुरन्त पहचान गया । वह श्यामली थी। वह मेरे करीब आना चाहती थी, पर जब भी इसके लिए प्रयास करती तो मेरे उसके बीच कुहरा जैसा एक पर्दा आ जाता ।

श्यामली ने मुझे बतलाया कि जब भी मैंने उससे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया बार-बार उसे यहाँ आने के लिए कोई अदृश्य शक्ति रोक लिया करती थी। इसके बाद उसने जो रहस्यमयी कथा सुनाई यह निश्चय ही पारलौकिक दृष्टि से मेरे लिए काफी महत्वपूर्ण थी ।

गजानन ने ही उसकी हत्या की थी, इसमें कोई शक न था। काफी देर तक श्यामली को अपने मरने का एहसास नहीं हुआ था। जब उसकी अन्तर्चेतना जागृत हुई उस समय हरिश्चंद्रघाट पर उसकी लाश आधी से ज्यादा जल चुकी थी। वह मेरे पास भी पहुँची और मुझसे बात करने की भी काफी कोशिश की थी मगर कर न सकी थी। उसको सब कुछ सपना जैसा लग रहा था । उसी स्थिति में वह न जाने कितने दिनों तक पृथ्वी के वातावरण में भटकती रही। कोई अदृश्य शक्ति उसे बराबर इधर-उधर ढकेलती रहती। तभी उसकी नजर एक औरत पर पड़ी। उसने अनुभव किया कि उसकी वासना, भावना और संस्कार उस औरत से काफी मिलती-जुलती है। एकाएक उस अदृश्य शक्ति के वशीभूत होकर वह उस औरत के शरीर में प्रवेश कर गयी और उसी के साथ उसकी अंतर्चेतना भी लुप्त हो गयी । जब वह वापस लौटी तो उसने अपने आपको शरीर के बन्धन में पाया। वह औरत श्यामली की माँ थी और श्यामली उसकी लड़की ।

अन्त में श्यामली ने बतलाया कि इस समय पलंग पर वह अपनी माँ के बगल में सोयी है। उसके शरीर में केवल सूक्ष्मतम प्राण स्पन्दन कर रहा है। बाहरी तौर पर एक प्रकार से वह मर चुकी है। अगर मैंने उसे शीघ्र मुक्त नहीं किया तो हो सकता है उसकी आत्मा से शरीर का सम्पर्क टूट जायेगा ।

मैंने तुरन्त श्यामली की आत्मा को मंत्र-शक्ति के बन्धन से मुक्त कर दिया ।

श्यामली के सम्पर्क से अपनी खोज की दिशा में मुझे दो नयी बातें मालूम हुई। पहली यह कि मृतात्मा की यदि अंतर्चेतना किसी कारणवश लुप्त है तो उससे किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं हो सकता। दूसरी यह कि यदि मृतात्मा ने कहीं जन्म ले लिया है तो कुछ समय तक अन्तर्चेतना के कारण पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहती है। यदि समय की अवधि बढ़ गयी

तो उसी स्मृति के आधार पर बालक या बालिकाएँ पूर्वजन्म की बातें बतलाने लगती हैं। जीवन में अंतर्चेतना का भी महत्त्व है। कोई भी शक्ति, जो मृतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने का आधार है तभी सक्रिय होती है, जबकि अन्तर्चेतना जागृत रहती है ।

इसी सन्दर्भ में अपने खोज-काल के प्रारम्भिक दिनों की एक विचित्र और रोमांचक घटना और सुना देना चाहता हूँ। मैंने दूसरी विधि के अनुसार अपने एक मित्र के लड़के राघव को माध्यम बनाया और उस पर अपने दादाजी की आत्मा के आवाहन का प्रयास किया। उनकी मृत्यु एक साल के अन्दर ही हुई थी। वे साधक पुरुष थे। उनका जीवन सात्विक और त्यागमय था। चार घण्टे के अथक प्रयत्न के बाद उनकी आत्मा आयी। मैंने वास्तविकता को समझने के लिए तुरन्त प्रश्न किया - 'आपकी मृत्यु कब, किस दिन हुई थी ?'

आत्मा ने सही-सही उत्तर दिया ।

'आपकी सत्ता इम समय कहाँ है ?' मैंने पुनः प्रश्न किया ।

'पृथ्वी से बहुत दूर अन्तरिक्ष में। इसीलिए आने में इतना समय लगा है । पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण हमारे लिए बाधक है। इससे भी अधिक कठिन है मनुष्य से सम्पर्क स्थापित करना ।' दादाजी की आत्मा ने बतलाया ।

'मृत्यु के तुरन्त बाद क्या आप मानव-अस्तित्व से सम्बन्ध भंग कर पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के बाहर निकल गये थे ?'

'नहीं ! कुछ समय तक मृत्यु के बाद प्राप्त नये जीवन और नये वातावरण को समझने का मैंने प्रयास किया और अपनी चिता के जलने तक यहाँ रहा, फिर गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकल गया ।'

'क्या आपको अपने परिवार के सदस्यों का स्मरण होता है ?'

'क्यों नहीं, मगर उन्हीं सदस्यों के विषय में अधिक सोचता हूँ, जिनका मुझसे जीवनकाल में सर्वाधिक आत्मीय सम्बन्ध था ।'

'क्या आप मुझे कोई सन्देश देना चाहते हैं ?'

'हाँ ! भविष्य से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बातें बतला देता हूँ। तुम्हारी कल्याणकारी प्रवृत्ति, उपकार, करुणा और दया की भावना ही तुम्हारे नाश का कारण बनेगी। परिवार में तुम्हारा अपना कोई न होगा। सभी तुम्हारे प्रति स्वार्थी होंगे। तुम्हारी मानसिक और वैचारिक उच्चता को साधारण लोग नहीं समझ सकेंगे । नारी के प्रति सदा तुम्हारे हृदय में स्नेह, प्रेम और अपनत्व की भावना रहेगी मगर बार-बार तुमको उससे धोखा मिलेगा। सन् १९७० से १९८० के बीच का समय तुम्हारे लिए मानसिक बौद्धिक और शारीरिक संक्रान्ति काल सिद्ध होगा। १९७० के प्रारम्भ में तुम्हारे जीवन में आने वाली एक स्त्री इस संक्रान्ति काल का मुख्य कारण बनेगी — तुम उस स्त्री के जघन्य अपराधों और भयंकर पापों को धोने का काफी प्रयास करोगे, और उसके कलुषित जीवन में अध्यात्म का संचार

करने का भी प्रयास करोगे मगर इसका परिणाम उल्टा ही होगा — समझ लो एक चोर को साधु नहीं बनाया जा सकता, पर एक साधु को बड़ी सरलता से चोर अवश्य बनाया जा सकता है —'

इतना कहकर एकाएक दादाजी की आत्मा गायब हो गयी। मगर दूसरे ही क्षण मेरे मित्र के लड़के राघव का सारा शरीर बुरी तरह काँपने लगा। जैसे मिर्गी का उसे दौरा पड़ गया हो — चेहरा काला पड़ गया और आँखें लाल हो उठीं। मैंने सोचा, दादाजी की आत्मा के जाते ही राघव को क्या हो गया। मैंने तांत्रिक क्रिया बन्द कर दी — उसका भी कोई कुपरिणाम नहीं हो सकता था। मैं एकटक राघव की ओर देखने लगा।

अचानक ख्याल आया कि सम्भव है - राघव की 'आत्मा' दादाजी की आत्मा की शक्ति से विचलित हो गयी हो और उसी का यह परिणाम हो।

मगर नहीं, मेरा यह विचार भ्रमात्मक था। एकाएक राघव चीख पड़ा और उसी के साथ भयंकर अट्टहास करते हुए बोला - 'जानते नहीं, कि मैं कौन हूँ?'

राघव के चीखने व अट्टहास करने और बोलने के ढंग से मैं समझ गया कि उस पर कोई तपोमयी दुष्ट आत्मा आ गयी है।

'मैं डाकू मानसिंह हूँ।'

यह सुनकर मैं घबरा गया। हाथ से छूटकर माला गिर पड़ी। किसी प्रकार अपने को सँभाला और फिर शान्त स्वर में बोला - 'मैंने तो आपको बुलाया नहीं था फिर कैसे आ गये आप ?'

'मैं रामनगर की रामलीला देखने रोजाना इधर से गुजरता हूँ। मुझे यहाँ का वातावरण अच्छा लगा। थोड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। इस लड़के की आत्मा सोयी हुई मिली, इसकी अन्तर्चेतना भी लुप्त मिली थी, बस मैं आ गया।'

आपकी क्या इच्छा है ? क्या चाहिए आपको ?'

'काफी दिनों से भूखा हूँ। खाना खिला सकते हो ?'

'क्या खायेंगे आप?'

'मुर्गे का गोश्त और शराब चाहिए मुझे।'

अभी मानसिंह का वाक्य पूरा ही हुआ था कि उसी के साथ झनझना कर सौ रुपये के सिक्के जमीन पर मेरे चारों तरफ गिर पड़े। कहाँ और किधर से आये वे रुपये, मैं तत्काल समझ न सका।

तभी कड़कड़ाती हुई आवाज गूँजी - 'ये रुपये मेरे हैं। आपको मुर्गा और शराब लाने के लिए दिये हैं।

है भगवान! कहाँ फँस गया मैं। तुरन्त अपने एक साथी को रात ग्यारह बजे मुर्गे का गोश्त

और शराब की बोतल लाने को कहा। मैं जान गया कि बिना खाये-पीये मानसिंह की आत्मा पिण्ड न छोड़ेगी।

सामने शराब की भरी बोतल और गोश्त की प्लेट मैंने रख दी। राघव के द्वारा डाकू मानसिंह की आत्मा ने सिर्फ दस मिनट के अन्दर शराब की बोतल खाली कर दी और प्लेट का सारा गोश्त खत्म कर दिया।

मैं भौचक्का-सा देखता रहा। फिर बोला - 'अब तो आप जायेंगे न !'

"हाँ, अब मैं जाऊँगा, मगर सुनो! तुमने मेरी सहायता की है, इसके बदले तुम मुझसे क्या चाहते हो ?'

मैंने मन में सोचा, एक भयंकर डाकू की दुष्ट आत्मा से मुझे भला कौन-सी सहायता मिलेगी? मैंने विनम्र स्वर में कहा - 'बस, आपकी मेहरबानी चाहिए।'

मेरी बात सुनकर डाकू मानसिंह की आत्मा एकबारगी खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर सहज स्वर में बोली - 'तुम मुझसे भले ही डर के कारण कुछ न माँगो, मगर मैं तुम्हारी ऐन मौकों पर बराबर मदद किया करूँगा।'

मानसिंह की आत्मा के अन्तिम शब्दों के साथ ही राघव सहज हो उठा। वह आँखें फाड़कर अँधेरे कमरे में चारों ओर देखने लगा।

'राघव ! तुमको कैसा लग रहा है इस समय ?' मैंने पूछा।

'बस ऐसा लगता है कि गहरी नींद से मैं अचानक जाग पड़ा।' कहानी तो खत्म हो गयी यहाँ। मगर अन्त में दो बातें मैं बतला देना जरूरी समझता हूँ। पहली यह कि दादाजी की आत्मा ने जो भविष्यवाणियाँ की थीं, वे बिल्कुल सही उतरी और दूसरी यह कि डाकू मानसिंह की आत्मा ने अदृश्य रूप से कई विषम और जटिल मौकों पर मेरी आर्थिक सहायता की। आज भी उसकी आत्मा रामनगर की रामलीला देखने आती है या नहीं, यह तो मैं नहीं बतला सकता, मगर यह जरूर कहूँगा कि यह विलक्षण था।

अध्याय २
मृत्यु से पुनर्जन्म की ओर

अमावस्या की काली अँधेरी रात। लगभग दो बजे का समय था। चारों ओर गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी। कभी-कदा आवारा लावारिस कुत्तों के भौंकने और पागल सियारों के रोने की दर्दभरी आवाजों से साँय-साँय करता हुआ निस्तब्ध वातावरण छन्न से छूट कर बिखर जाता था।

कुछ ही देर पहले श्मशान में एक चिता घण्टों धू-धू कर जलने के बाद बुझी थी। मगर राख गर्म थी अभी। चिता में जलने वाली लाश की अधजली और बदरंग खोपड़ी को श्मशान के डोम चौधरी ने लातों से ढकेल कर गंगा के गन्दे पानी में फेंक दिया था। जब उसने फेंका था

उसी समय पास के पीपल की डाल पर अँधेरे में छिप कर बैठा हुआ कोई मांसखोर पक्षी एकबारगी जोर से चीख उठा था और उसके साथ भोला गिरी महाशय भी चौंके थे। चौंककर अँधेरे में मेरी ओर देखा था उन्होंने। वे क्या कहना चाहते थे - मैं दूसरे ही क्षण समझ गया। मैं लपककर उस जगह पहुँचा जहाँ डोम चौधरी ने खोपड़ी फेंकी थी पानी में। टटोलकर मैंने खोपड़ी निकाल ली और लाकर भोला गिरी को थमा दो।

एकान्त कमरे में लकड़ी की एक चौकी पर लाल रेशमी कपड़ा बिछाकर उस पर खोपड़ी रख दी गयी। फिर उसके सामने लोहबान, अगरबत्ती और चमेली के तेल का दीप जलाया गया और खोपड़ी को माला पहनायी गयी। उसके बाद भोला गिरी ने लाल सिन्दूर की स्याही से खोपड़ी पर कोई अटपटा मंत्र लिखा और काफी देर तक उसके सामने ध्यानस्थ बैठे रहे। अपनी पिछली कहानी 'पुनर्जन्म' में मैंने भोला गिरी का परिचय दिया था। वे आत्मविद्या के महापण्डित और प्रेतशास्त्र के भारी विद्वान् थे। मुझे अपनी खोज और शोधकार्य में उनका सहयोग और मार्गदर्शन प्राप्त था। वे मेरे विशेष आग्रह पर उस रात एक भयंकर तांत्रिक अनुष्ठान की योजना कर रहे थे, जो अपने आप में अत्यन्त रहस्यमय था। वे उस खोपड़ी के माध्यम से उसकी आत्मा का आवाहन कर मृत्यु के अनन्तर की स्थितियों से अवगत होना चाहते थे। मैं उनके संकेत पर कमरे के एक कोने में आसन जमा कर मौन साधे बैठा था और उनकी गतिविधि को आँखें फाड़े देख रहा था।

ध्यानभंग होने पर भोला गिरी ने झोले में रखी शराब की भरी बोतल निकाली और समूची शराब दहकते हुए कोयले की आग में उड़ेल दी। फिर उसी के साथ ढेर सारा लोहबान आग में डाल दिया। धुएँ का एक गुबार उठा और चारों तरफ फैल गया — शराब और लोहबान की मिली-जुली गन्ध कमरे में चारों तरफ बिखर गयी — वातावरण एकबारगी रहस्यमय हो उठा और उसी के साथ फिस्-फिस् की आवाज मुझे सुनाई दी।

वह घुटी हुई आवाज किसकी थी मैं समझ न पाया और तभी गिरी महाशय का गम्भीर स्वर गूँज उठा उस रहस्यमय तांत्रिक वातावरण में। कौन हो तुम? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई ? समझते देर न लगी मुझे। खोपड़ी की आत्मा वहाँ आ गयी थी। स्याह धुएँ की आकृति, जो किसी औरत की शक़्ल की थी, मैं स्पष्ट सामने देख रहा था। वह आकृति खोपड़ी के नजदीक खड़ी झूल रही थी। मैं एक स्थानीय कॉलेज की प्राध्यापिका हूँ। मेरा नाम सुषमा अग्निहोत्री है। मेरा संसार में कोई नहीं है। जीवन में असफल होकर स्वयं आत्महत्या की है। थोड़ा ठहर कर आत्मा आगे बोली - 'मुझे इस प्रकार यहाँ क्यों बुलाया गया है ?'

'कुछ रहस्यमय बातों की जानकारी के लिए। मुझे विश्वास है कि आप पढ़ी-लिखी महिला हैं। आप मेरे प्रश्नों का जवाब अपने अनुभवों के आधार पर देंगी —'

'क्या जानना चाहते हैं आप ?'

'आपने आत्महत्या कैसे की ?'

'ढेर सारी नींद की गोली खाकर।'

’नींद की गोली खाने के बाद तुरन्त आपके मन में कौन-सा विचार आया ? क्या सोचा तुरन्त आपने ?’

‘आह! मैंने बड़ी भारी गलती की ! ऐसा मुझे नहीं करना चाहिए था। अब क्या होगा?’ मेरी आत्मा मौत की तमाम भयंकर तकलीफों को कैसे सहन कर सकेगी? ..... मगर नहीं, ऐसा सोचना मेरा भ्रम था। मौत न कष्टदायिनी होती है और न ही भयानक। मौत के सम्बन्ध में आवश्यक न होने के कारण वह भयानक और डरावनी लगती है। अग्निहोत्री की आत्मा ने आगे बतलाया, ’मनुष्य चेतन है इसलिए उसका एक ही स्थिति में बराबर बने रहना सम्भव नहीं है। प्रकृति के सब रूपों में परिवर्तन बराबर होता रहता है, तो जीवन-यात्रा में गतिशीलता क्यों नहीं रहेगी ? यात्रा-क्रम के इन पड़ावों को ही जीवन और मृत्यु कहते हैं। इसमें न कुछ अप्रत्याशित है और न आश्चर्यजनक। फिर मरण से भय किस बात का ? वास्तव में मृत्यु के संबंध में लोग विचार ही नहीं करते। उसकी संभावनाओं और तैयारी के विषय में और उसके सन्दर्भ में उपेक्षा बरतते हैं। फलतः समय आने पर मरण अविज्ञात रहस्य के रूप में सामने आता है, जो भयानक एवं कष्टदायक होता है। अज्ञात की ओर बढ़ने और विचार करने पर ही महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। इतिहास उन व्यक्तियों और उन महापुरुषों से भरा पड़ा है जिन्होंने जन-प्रवाह से विपरीत अज्ञात दिशा में बढ़ने का साहस भरा पुरुषार्थ दिखाया है।’

मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्व को अपनी योग साधनाओं के माध्यम से देखकर आत्मा के अजर-अमर होने की घोषणा की है। इस तथ्य की पुष्टि अब परामनोविज्ञान नवीन शोधों के द्वारा कर रहा है।

सुषमा अग्निहोत्री की मृतात्मा ने आगे बतलाया कि मरने के पहले जो भय था वह मरने के बाद समाप्त हो गया। शरीर छोड़ने की अनुभूति मुझे स्पष्ट रूप से हुई। मरणकाल की घड़ी न कौतूहलमय होती है और न तो होती है कष्टदायक, जिसे असह्य कहा जा सके। सब कुछ उतनी ही सरलता से सम्पन्न हो जाता है जितना कि रात्रि में सोते समय वस्त्रों का उतारना।

शरीर से अलग होने के बाद मुझे काफी हल्कापन अनुभव हुआ। काफी देर तक मैं लाल और नीले रंग के प्रकाश के वलय में घिरी हुई थी। मेरे शरीर में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ था। वह शरीर वैसा ही था जैसा मेरी कभी पार्थिव शरीर था। हाँ ! मैं उस नवीन शरीर में विचारों, इच्छाओं और कामनाओं को तीव्रता से अनुभव कर रही थी और अभी भी कर रही हूँ। मुझे शरीर और संसार से अलग हुए सिर्फ १६ घण्टे हुए हैं और इस १६ घण्टों में शान्ति का जो अनुभव हुआ है वह विचित्र है, बतला नहीं सकती। अब मुझे जाने दीजिए।

मरणोत्तर जीवन के और पुनर्जन्म के भारतीय सिद्धातों पर विश्वास कर पश्चिम के परामनोवैज्ञानिक उनका विश्लेषण करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

पुनर्जन्मवाद का बुनियादी आधार है, श्रीमद्भगवद् गीता। जिसके अनुसार जीव अपने कर्म के अनुसार नवीन देह धारण करता है।

मुसलमानों में सूफी सम्प्रदाय वाले भी पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। संत मौलाना जलालुद्दीन ने कहा था, मैं हजारों बार इस धरती पर जन्म ले चुका हूँ। यद्यपि ईसाई धर्म पुनर्जन्म को नहीं मानता। परन्तु पश्चिमी देशों के कई विख्यात दार्शनिकों ने पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है।

एडविन आर्नोल्ड ने आत्मा के अनादित्य पर तथा अमरत्व पर अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये, 'आत्मा अजन्मा और अमर है। कोई ऐसा समय न था जब यह नहीं थी। इसका अन्त और आरम्भ स्वप्नमात्र है। मृत्यु ने इसे कभी स्पर्श नहीं किया। यदि हम आत्मा की अमरता पर विश्वास कर लेते हैं, तो पुनर्जन्म के बारे में अनास्था का प्रश्न ही नहीं उठता।'

आटेरियो कनाडा के मानव सम्पदा के निर्देशक 'हर्वग्रिफिन' दिल के मरीज थे — सन् १९७४ में उन्हें तीन दौरे पड़े और फिर बीस बार से अधिक दिल के दौरे पड़े — हर बार डॉक्टरों द्वारा मृत घोषित किये जाने पर कुछ ही मिनटों बाद वह पुनः जीवित हो उठते थे — डॉक्टरों ने उसे अनहोनी घटना के रूप में स्वीकार किया। मृत्यु के पश्चात् उन्हें जो अनुभूति हो रही थी, वह लगभग एक-सी थी — ग्रिफिन का कहना है कि प्रत्येक मृत्यु के बाद उन्होंने अपने को उज्ज्वल तेज से घिरा हुआ पाया, जिसमें गर्मी की अनुभूति होती थी — मुझे याद है वह बिजली के कड़कने से निकलने वाले प्रकाश जैसा था — ध्यान से देखने पर पाया कि वह मेरी ओर बढ़ रही है — मेरे और प्रकाश के बीच में एक काली-सी छाया थी जो उस तेज प्रकाश से मेरी रक्षा कर रही थी — उस समय हमने स्वयं को एक मुड़े हुए शरीर के रूप में अनुभव किया — इसके साथ ही काली छाया के तैरने की अनुभूति हो रही थी — इतने में पुनः वह उज्ज्वल प्रकाश मेरी ओर बढ़ा — डर तो नहीं लगा पर रहस्यात्मक अनुभूति से रोमांचित हो उठा — सोच रहा था कि कहीं वह प्रकाश मुझे पूरी तरह घेर न ले। ठीक उसी समय हमारा एक पुराना परिचित प्रकट हुआ, जिसे मैं छू सकता था — उसने निडर भाव से कहा - 'जाओ सब ठीक हैं —' अचानक मुझे सीने पर तेज आघात महसूस हुआ — आवाज भी सुनाई दी - 'क्या बिजली के झटके दिये जायें?' दूसरी ओर से आवाज आयी - 'नहीं अभी नहीं — उसकी पलकें झपक रही हैं — इसकी आयु पूरी नहीं हुई — इसे जिन्दा रहना चाहिये —' इसके बाद मैं अस्पताल में पड़े अपने शरीर में वापस आ गया —

ग्रिफिन की अनुभूति अस्पष्ट होते हुए भी मरणोत्तर जीवन का ही नहीं, एक ऐसे लोक के अस्तित्व का प्रतिपादन करती हैं जहाँ स्थूल शरीर की मर्यादायें समाप्त हो जाती हैं — मृत्यु को जीवन का अन्तिम अतिथि मानकर उसके स्वागत की पूरी तैयारी की जाती रहे, उसके साथ सुखद प्रयासों के लिए आवश्यक साधन जुटाने में तत्परता बरती जाये तो मरण वैसा ही आनन्ददायक और उतना ही हर्षवर्धक होगा - जैसे सुरम्य स्थानों के लिए नियोजित पर्यटन —

मृत्यु के बाद वास्तव में क्या होता है ? इस विषय पर भी वैज्ञानिक लोग जीव-विज्ञान की प्रयोगशालाओं में वर्षों से प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिका के 'विलसा-क्लाउड चेम्बर' के शोध से बड़े आश्चर्यजनक तथ्य सामने आये हैं। जिससे वैज्ञानिकों को यह बात स्वीकार करनी

पड़ी कि मरने के बाद भी किसी न किसी रूप में जीव का अस्तित्व बना रहता है।

इस प्रयोग के अन्तर्गत एक ऐसा सिलेण्डर लिया जाता है, जिसकी भीतर की परतें विशेष चमकदार होती हैं। फिर उसमें कुछ रासायनिक घोल डाले जाते हैं। जिसके फलस्वरूप भीतर एक विशेष प्रकार की चमकदार गैस फैल जाती है। इस गैस की यह विशेषता है कि यदि कोई परमाणु या इलेक्ट्रॉन इसके भीतर प्रवेश करे, तो शक्तिशाली कैमरे द्वारा उसका चित्र उतार लिया जाता है। प्रयोग के लिए इसमें एक चूहा रखा गया। फिर बिजली के करेंट से उसे मार डाला गया। चूहे के मरणोपरान्त उस सिलेण्डर का चित्र उतारा गया। वैज्ञानिकगण यह देखकर विस्मित हुए कि मृत्यु के बाद गैस के कुहरे में भी मृत चूहे की धुँधली आकृति तैर रही थी। वह आकृति वैसी ही हरकतें कर रही थी जैसी जीवित अवस्था में चूहा करता था। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि मृत्यु के बाद भी प्राणी की सत्ता किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहती है। विख्यात तत्वदर्शी, चिन्तक और मनोवैज्ञानिक कार्ल युंग का एक रहस्यमय विचित्र अनुभव सुनिए -

'सन् १९४४ में मुझे दिल का दौरा पड़ गया था। डॉक्टरों के अनुसार मैं मृत्यु के मुख में था। जब मुझे ऑक्सीजन और इंजेक्शन दिये जा रहे थे, तब मुझे अनेक विचित्र अनुभव हुए। कह नहीं सकता कि मैं अचेतावस्था में था कि स्वप्नावस्था में। पर मुझे स्पष्ट अनुभूति हो रही थी कि मैं अन्तरिक्ष में लटका हूँ और अपने से लगभग एक हजार मील नीचे स्थित येरूशलम नगर को साफ देख रहा हूँ।

फिर मुझे लगा कि मेरा सूक्ष्म शरीर एक पूजा-गृह में प्रवेश कर रहा है। पूजा का कक्ष प्रकाशमय था। मुझे लग रहा था कि मैं निस्सीम इतिहास का एक खण्ड हूँ और अन्तरिक्ष में कहीं भी विचरण करने की क्षमता रखता हूँ। तभी मुझे अपने ऊपर एक छाया मँडराती हुई दिखाई दी। वास्तव में वह छाया मेरे डॉक्टर की थी। मुझे लगा, डॉक्टर मुझसे कह रहा था कि तुमको शीघ्र अपने भौतिक शरीर में लौट आना है और जैसे ही मैंने इसका पालन किया मुझे लगा कि अब मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ और मेरा बन्दी जीवन पुन: प्रारम्भ हो गया है। इस अलौकिक अनुभव के कारण, जो अंतर्दृष्टि मुझे प्राप्त हुई उसने मेरे सारे संशयों का अन्त कर दिया और मैंने जान लिया कि जीवन की समाप्ति पर क्या होता है ? निश्चय ही हमारे जगत में अवश्य ही एक चौथा आयाम है, जो अनोखे रहस्यों से भरा है।'

कहने की आवश्यकता नहीं, इस प्रकार के विवरणों और घटनाओं का मेरे अन्वेषण पर गहरा प्रभाव पड़ा। मृत्यु के बाद की स्थिति और पुनर्जन्म की स्थिति पर मैं एक साथ खोज-कार्य कर रहा था क्योंकि वे दोनों स्थितियाँ एक-दूसरे की पूरक समझी जाती हैं।

जो बच्चे अपने पूर्वजन्म की बातें बतलाते हैं उनके सम्बन्ध में खोज करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि पूर्वजन्म की स्मृति का कारण व्यक्ति या बालक की इन्द्रियातीत शक्ति है। जिस व्यक्ति अथवा बालक में अति मस्तिष्क शक्ति का बाहुल्य होता है उसे अपने पूर्वजन्म का भान हो उठता है।

इसी सन्दर्भ में आधुनिक युग के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का कहना है कि जन्म के समय

की वेदना और यंत्रणा इतनी तीव्र और दुखद होती है कि मानस पर सदा के लिए आसन्न हो जाती है। जन्म के समय की यह पीड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में प्राय: उभर आती है। इसी तरह से युवावस्था से प्रौढ़ावस्था में पदार्पण बड़ा पेचीदा होता है। कई ऐसे झटके लगते हैं कि पहले की कई बातें स्मृति से गायब हो जाती हैं। यहाँ यह बतला दूँ कि इन बातों अथवा धारणाओं से मुझे खोज की दिशा में बल अवश्य मिला। मगर इनके तथ्यों को मैं एक विशेष सीमा तक ही स्वीकार कर सका। मेरे सामने कुछ ऐसे सिद्धान्त थे जिसने मन में कई गहरी जिज्ञासाएँ पैदा कर दी थीं। जिनका समाधान मैं उन्हीं उपलब्धियों से करना चाहता था किसी और की धारणा से नहीं।

सबसे पहले मेरे सामने यह प्रश्न था कि पूर्वजन्म की बात बतलाने वाले व्यक्ति और बच्चे यह क्यों नहीं बतला सके कि मृत्यु के बाद तुरन्त क्या होता है ? इस प्रकार की सैकड़ों घटनायें मैंने पढ़ीं, सुनीं और देखीं, किन्तु मैंने किसी को मृत्यु के बाद की और पुनर्जन्म लेने के पहले की स्थितियों अथवा अवस्थाओं पर प्रकाश डालते हुए नहीं देखा।

मृत्यु के बाद से लेकर पुनर्जन्म तक की जीवात्मा की यात्रा निस्सन्देह रहस्यमयी है। यात्रा के बीच की स्थितियाँ और अवस्थायें निश्चय ही रहस्यपूर्ण और तिमिराच्छन्न हैं। वैज्ञानिकों और परामनोवैज्ञानिकों के पास इनका कोई समाधान नहीं है और न तो है इन प्रश्नों का जवाब ही कि मृत्यु के बाद आत्मा या चेतना कहाँ चली जाती है ? क्या शरीर के अन्त के साथ जीवन का भी अन्त हो जाता है या शरीर के नष्ट हो जाने के उपरान्त आत्मा नयी देह धारण करती है ? खैर, ये और ऐसे ही अनेक प्रश्न हैं, जो आदिकाल से मानव-मस्तिष्क में बराबर कौंधते रहते हैं जिनका केवल आध्यात्मिक उत्तर मिल सका है, लेकिन वैज्ञानिक उत्तर आज तक नहीं मिल सका है। एक बार इसी सन्दर्भ में अमेरिका के प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक डॉ० स्टीवेन्सन भारत आये थे। लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली अपने प्रयोग में।

सुषमा अग्निहोत्री की मृतात्मा ने मृत्योपरांत तात्कालिक स्थितियों का जो वर्णन किया उसने मेरे भीतर खोज की प्रवृत्ति और अधिक तीव्र कर दी थी। मुझे इस बात की आशा हो गयी थी कि तांत्रिक मार्ग से चलने पर आश्चर्य और कौतूहल से भरे उन रहस्यमयी तिमिराच्छन्न स्थितियों और अवस्थाओं का पता चल सकता है, जो मृत्यु के बाद और जन्म के पहले की यात्रा के बीच जीवात्मा के सामने उत्पन्न हुआ करती है। जब मैंने अपनी जिज्ञासायें भोला गिरी के सम्मुख रखीं और जब खोपड़ी के माध्यम से मृतात्माओं को बुलाने वाली विशेष तांत्रिक क्रियाओं को बतलाने का आग्रह किया तो वे एकबारगी टाल गये। मैं जानता था कि ऐसे लोग शीघ्र तैयार नहीं होते। मगर मैंने उनका पीछा नहीं छोड़ा। मैं बराबर कभी शराब लेकर, तो कभी फल-मिठाई लेकर उनके पास जाता रहा।

इसी बीच मैंने ऐसे कई लोगों की खोपड़ियाँ इकठ्ठी कर लीं, जिनकी एक मास के भीतर किसी न किसी रूप में और किसी न किसी प्रकार मृत्यु हुई थी। खोपड़ी इकठ्ठा करने में मेरा सहयोग दिया था- मणिकर्णिका श्मशानघाट के डोम चौधरी पन्नालाल ने — मेरे परिवार को काफी सम्मान देते थे वह। मुझे तो वह अधिक मानते थे। मेरे लिए उन्होंने एक सुन्दर-

सी चौकी बनवा रखी थी। जब कभी मैं उनके हवेलीनुमा मकान पर जाता, तो वह अपनी गद्दी से उठ खड़े हो जाते और पालागी महाराज कहकर उसी चौकी पर बैठने का आग्रह करते। चौकी रोज गंगाजल से धोयी जाती और उस पर रेशमी चादर बिछायी जाती। जब कभी आवश्यकता पड़ने पर श्मशानघाट पर उनसे मिलने जाता तो वहाँ भी अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी मेरा भरपूर स्वागत करते।

सावन-भादों का महीना था। गंगा खूब बढ़ी-चढ़ी थी। साँझ का समय था। हल्की वर्षा हो रही थी। पन्नालाल चौधरी से मिलने के लिए जब श्मशान पर पहुँचा, तो देखा वहाँ बहुत-सी लाशें जलने के इन्तजार में पड़ी हुई थीं। दर्जनों चिताएँ जल भी रही थीं और उन लाशों और धू-धू कर जलती हुई चिताओं के बीच एक ऊँचे तख्त पर गद्दी-तकिया लगाये चौधरी पन्नालाल शराब पी रहे थे और साथ ही नौकरों को गालियाँ भी बकते जा रहे थे। मगर मुझे देखते ही शराब की बोतल एक ओर रख दी तथा उन्होंने और गाली देना बन्द कर बोले - 'पालागी महाराज ! तोहार कई दिन से इन्तजार करत रहली। आवा बैठा, तोहसे एक बात करे के हौ। कहाँ रहला इतना दिन '

गद्दी के करीब बैठ गया मैं। तभी जलती हुई लाश की दुर्गन्ध का एक तेज भभका आया और मन-मस्तिष्क पर छा गया एकबारगी। जी मिचला उठा मेरा।

जब सब लोग चले गये तो, चौधरी कहने लगे - ' तोहरे पूजा के वास्ते एक खोपड़ी का जुगाड़ कईले हई। बड़ी कीमती खोपड़ी बाटै। समझला न !'

इतना कहकर चौधरी ने गद्दी के नीचे से एक खोपड़ी और मुझे थमाते हुए फिर कहने लगे - 'ई खोपड़ी एक जवान शादीशुदा लड़की का हौ, सुने में आयल हौ कि बंगाल के कोई तांत्रिक साधु के चक्कर में पड़कर आपन आत्महत्या करले रहल।'

यह सुनकर चौंक पड़ा मैं। साथ ही खुश भी हुआ मैं इसलिए कि एक बार भोला गिरी ने मुझसे कहा था कि तांत्रिक साधना के बीच किसी प्रकार की मरी हुई किसी युवती की खोपड़ी मिल जाये, तो तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है।

मैंने खोपड़ी लेकर तुरन्त अपने झोले में डाल ली और भागा-भागा पहुँचा मैं भोला गिरी के यहाँ। रात के करीब दस बज रहे थे। गली सुनसान हो गयी थी। सिर्फ कुछ लावारिस कुत्ते पानी में भींगते हुए दुबके खड़े थे। जब मैं गिरी महाशय के कमरे में पहुँचा, तो देखा वे बोतल सामने रखे मदिरा-पान कर रहे थे।

झोले से निकालकर खोपड़ी उनके सामने मैंने रख दी और फिर एक ही साँस में उन्हें सारी बातें बतला दीं। सब कुछ सुन लेने के बाद मदिरा से बोझिल पलकों को उन्होंने धीरे से ऊपर उठाया और लाल-लाल आँखों से खोपड़ी की ओर काफी देर तक देखते रहे। थोड़ी देर बाद भर्राये स्वर में बोले, 'जा ले जा ! शराब में डुबाकर रख दे इसे।'

तुरन्त दूसरे कमरे में जाकर एक बहुत बड़े बर्तन में ढेर सारी शराब उड़ेलकर उसमें खोपड़ी को डुबाकर रख दिया और घर वापस लौट आया।

मगर नींद नहीं आयी। सारी रात जागता रह गया। युवती के बारे में ही सोचता रहा। कौन थी वह ? कैसी रही होगी यह युवती ? कैसे फँस गयी तांत्रिक साधु के चवकर में ? क्यों ? किसलिए आत्महत्या की उसने ?

पूरी रात इन तमाम प्रश्नों को लेकर मैं अशान्त रहा। दूसरे दिन गिरी महाशय ने बतलाया कि सचमुच वह खोपड़ी तांत्रिक दृष्टि से काफी मूल्यवान है। दीपावली की रात्रि में उस पर प्रयोग किया जायेगा।

दीपावली की रात आयी। पहले वाले कमरे में ही तांत्रिक क्रिया शुरू हुई। धीरे-धीरे गम्भीर वातावरण रहस्यमय हो उठा। दीपक की पीली लौ एक बार कसमसाई फिर एकाग्र होकर जलने लगी। गिरी महाशय ने महापात्र में मदिरा-पान किया और महाशंख की माला पर कोई मंत्र जपने लगे। सहसा वातावरण में एक चीत्कार गूँज उठा। भय और आतंक से मेरा चित्त भर गया।

कोई दस मिनट के बाद फीस्-फीस् की धीमी आवाज सुनाई दी। संभल गया मैं। गिरी महाशय की ओर देखा- उनका चेहरा लाल हो रहा था। मंत्र-जाप में लीन थे वह। एकाएक उनका स्वर गूँज उठा, 'कौन हो तुम ?'

'मैं ..... मैं ..... पश्चिम बंगाल से आयी हूँ।'

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'ललिता.....ललिता सान्याल !'

'तुमने आत्महत्या की है ?'

'हाँ!' इतना कहकर ललिता की आत्मा सिसकने लगी।

'क्यों और किसलिए आत्महत्या की तुमने ?'

'आप तंत्रसाधक हैं। आप स्वयं समझ सकते हैं इसे।'

'नहीं ! तुम बतलाओ मुझे कारण।'

ललिता की आत्मा ने सिसकते हुए भरे कण्ठ से जो कुछ बतलाया उसने मेरे अन्तर को एकबारगी झकझोर कर रख दिया। उसकी बड़ी लम्बी और करुण कथा थी। यदि उसे यहाँ लिपिबद्ध करता हूँ, तो विषयान्तर हो जायेगा और प्रस्तुत रचना भी लम्बी हो जायेगी। इसलिए सोचता हूँ कि ललिता की करुणा में आकण्ठ डूबी व्यथाभरी कथा को आगे कभी लिखूँगा। अपराध साहित्य के ही किसी अंक में आगे पढ़ने को मिलेगी यह कथा, जिसका शीर्षक होगा 'मुक्त केशी मुक्ति दो।'

सब कुछ सुन लेने के बाद गिरी महाशय बोले, 'आत्महत्या करने के बाद तुम्हें कैसी स्थिति का अनुभव हुआ हैं ?'

‘मैं बहुत दिनों तक यही न जान सकी कि मेरी मौत हो चुकी है और मुझसे दुनिया का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है और जब इसका ज्ञान हुआ, तो मैंने अपने आपको एक नीरव वातावरण में पाया। चारों ओर एक विचित्र-सी शान्ति छायी हुई थी। उस अवस्था में मुझे अपनी देह की याद आई और उसके प्रति मोह जाग गया। मैंने अपने शरीर को बहुत खोजा मगर वह मुझे नहीं मिला। नदी के जिस स्थान पर मैंने आत्महत्या की थी वहाँ एक बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था। मैं उसी पेड़ पर कुछ दिन रही और फिर वहाँ से भटकती हुई गंगा किनारे स्थित एक श्मशान में जा पहुँची। मगर वहाँ पहुँचते ही मुझे दो आदमी खोजते हुए आ गये। उनका रंग काला था। सिर काफी बड़ा और मुँड़ा हुआ था। दोनों नंगे थे। उनकी आकृति काफी भयानक थी। दोनों ही मुझे घसीटते हुए ले जाने लगे। मैं काफी रोई-चिल्लाई, गिड़गिड़ाई मगर इन सबका कोई प्रभाव उन पर नहीं पड़ा।’

वे दोनों मुझे एक ऐसी जगह पर ले गये, जहाँ हजारों औरतों और मर्दों की भीड़ थी। पता चला कि वे लोग मेरी तरह ही आत्महत्या कर वहाँ पहुँचे थे। किसी की जीभ बाहर झूल रही थी, तो किसी की आँखें बाहर निकली हुई थीं। किसी की गर्दन ही काफी लम्बी हो गयी थी। सभी आत्महत्या के लिए घोर पश्चाताप कर रहे थे। इसी प्रकार एक ओर जहर खाकर मरने वालों की भी भीड़ थी। वे लोग भी पश्चाताप कर रहे थे। मैंने देखा संसार में जिस तरह से लोगों ने आत्महत्या की थी उन लोगों की अलग-अलग भीड़ थी। रेल से कटकर मरने वालों की अलग। ऊँचे से कूदकर मरने वालों की अलग और अस्त्र-शस्त्र से आत्महत्या करने वालों की अलग। सभी के सामूहिक पश्चाताप का प्रभाव मुझ पर पड़ा और मैं रोने लगी। उस समय मेरे कष्ट की सीमा न रही। जब मैंने यह जाना कि इस स्थान पर तब तक रहना पड़ेगा, जब तक संसार में बाकी आयु समाप्त न हो जायेगी। एक दिन मुझे ऐसा लगा कि मेरे पार्थिव शरीर की खोपड़ी किसी कापालिक के हाथ पड़ गयी है और वह उसे लेकर काशी गया है। शायद वह कोई साधना करेगा। बात सच निकली। काशी के श्मशानघाट पर धूनी रमाये वह कापालिक मेरी खोपड़ी सामने रखकर कोई मंत्र जप रहा था। तभी मैं वहाँ पहुँच गयी और मैंने उस कापालिक को जोर का धक्का दिया। वह एक ओर लुढ़क गया। फिर उठकर चीखता-चिल्लाता भय से काँपता हुआ वह एक ओर भागा। उसके बाद मैं इस वातावरण में अपने अस्तित्व का अनुभव कर रही हूँ। मुझे थोड़ी शान्ति मिल रही है।

’तुम्हारी आयु अभी कितनी शेष है ?’ गिरी महाशय ने पूछा।

‘अभी पचपन वर्ष नौ महीने तीन दिन बाकी हैं।’

‘मृत्यु के समय तुम्हारी कितनी आयु थी ?’

‘सिर्फ चौबीस वर्ष तीन महीना।’

‘सिर्फ चौबीस वर्ष तीन महीना!’ ‘क्या तुम इसी तरह शेष आयु में शान्ति का अनुभव करना चाहती हो ?’

‘हाँ ! मगर कौन देगा मुझे शान्ति, कौन हरेगा मेरा दारुण कष्ट तथा कौन है मेरी सहायता

करने वाला ?'

यह सुनकर गिरी महाशय ने मेरी ओर उँगली से इशारा करते हुए कहा, 'यह व्यक्ति तुमको शान्ति देगा, तुम्हारे सभी कष्टों को भी दूर करेगा और तुम्हारी पूरी सहायता करेगा, बोलो तैयार हो ?'

'हाँ! मैं तैयार हूँ। लेकिन मुझे करना क्या होगा ?'

'इस व्यक्ति को सहयोग देना होगा।'

'किस बात का सहयोग ?'

'तुम्हारी सहायता और अदृश्य सहयोग से यह व्यक्ति उन मृतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करना चाहता है जिनकी खोपड़ियाँ इसने इकठ्ठी कर रखी हैं।'

'ठीक है, मैं तैयार हूँ।'

'इतना बोलकर ललिता की मृतात्मा वापस चली गयी।' और उसके जाते ही गिरी महाशय ने उसकी खोपड़ी में मदिरा डाली और उसे मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, ' अपनी एक विलक्षण सिद्धि दे रहा हूँ, अलौकिक सिद्धि है यह। सारी मदिरा एक ही साँस में पी डालो।'

मैंने खोपड़ी काँपते हाथों से ले ली और एक ही साँस में गट्-गट् कर सारी शराब पी गया। सारा शरीर एकबारगी झनझना उठा। कलेजा भी जल उठा उसी के साथ।

जब मैंने शराब पी ली, तो गिरी महाशय आगे बोले, 'अब और आज से ललिता की मृतात्मा तुम्हारे साथ रहेगी। उसकी खोपड़ी में इसी तरह मदिरा पीकर तुम उससे कभी भी सम्पर्क स्थापित कर सकते हो और उससे सहयोग प्राप्त कर सकते हो। लेकिन, हाँ! इस खोपड़ी का बराबर खयाल रखना। टूटने न पाये और कहीं खोने भी न पाये।'

प्रसन्नता से झूम उठा मैं। एक बहुत बड़ी सिद्धि मिल गयी थी मुझे। लेकिन उस समय यह नहीं सोचा कि यही अलौकिक सिद्धि एक दिन मेरे जीवन में एक बहुत बड़ी भयंकर समस्या खड़ी कर देगी।

उसी दिन से ललिता की प्रेतात्मा हर समय मेरे साथ रहने लगी, मगर उसके अस्तित्व की अनुभूति न होती। अनुभूति तभी होती जब मैं उसकी खोपड़ी में भरकर रात के समय मदिरा-पान करता। अनुभूति तो होती ही, उसके अलावा उस समय कोमल स्पर्श का भी अनुभव होता। ऐसा लगता मानो कोई कोमलांगी अपनी कोमल उँगलियों से मेरे अंगों को धीरे-धीरे सहला रही है।

गिरी महाशय की मंत्रशक्ति से ललिता की आत्मा की शान्ति एकाएक बढ़ जाती थी और उसका अगोचर सम्बन्ध मदिरा-पान करने पर मेरे सूक्ष्म शरीर से स्थापित हो जाता था और उस समय मैं जिस खोपड़ी की भटकती हुई आत्मा को उसके माध्यम से बुलाना चाहता, उसे वह लाकर उपस्थित कर दिया करती थी।

पहली बार मैंने ललिता की आत्मा के माध्यम से जिस खोपड़ी की आत्मा को बुलाया वह किसी पढ़े-लिखे कुलीन ब्राह्मण की थी। नाम था सरजू पाण्डेय। आयु थी चालीस वर्ष के लगभग।

सरजू पाण्डेय ने आत्महत्या तो नहीं की थी, मगर उन्हें जहर देकर मार डाला गया था और वह जहर भी दिया था उनकी पत्नी कौशल्या ने। मगर क्यों ? इसलिए कि वह अपने देवर - जिसका नाम था रामप्रसाद पाण्डेय - से प्रेम करती थी। वह यह नहीं चाहती थी कि उसका पति उन दोनों के बीच काँटा बनकर हमेशा चुभता रहे। सरजू पाण्डेय पढ़े-लिखे और काफी समझदार व्यक्ति थे। रामप्रसाद पाण्डेय का सम्बन्ध कौशल्या से है - यह जानते थे वह। मगर जान-बूझ कर भी वह चुप थे। इन्सान सब कुछ बरदाश्त कर सकता है पर अपनी पत्नी की चरित्रहीनता को बर्दाश्त कभी नहीं कर सकता। आखिर एक दिन विस्फोट हो ही गया। जिसके फलस्वरूप सरजू पाण्डेय को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

इस प्रसंग में मुझे सर्वथा एक नयी रहस्यमयी बात का पता चला - वह यह कि जिस किसी की हत्या का रहस्य रहस्य ही बना रह जाता है और पुलिस उस रहस्य का पता नहीं लगा पाती या किसी की हत्या को साधारण मृत्यु या आत्महत्या मानकर लोग मौन साध जाते हैं ऐसी स्थिति में मृतात्मा को भारी कष्ट होता है। ऐसी मृतात्मायें कभी-कभी अपनी अदृश्य शक्ति के बल पर स्वयं ऐसा वातावरण और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दिया करती हैं जिससे हत्या का सारा रहस्य खुल जाता है और मुल्जिम को दण्ड भी मिल जाता है।

सरजू पाण्डेय की तड़पती आत्मा ने भी ऐसा ही किया था। उसके मामले को आत्महत्या मानकर पुलिस ने अपनी छानबीन बन्द कर दी थी। गाँव वाले भी चुप हो गये थे। सभी ने समझ लिया कि किसी कारणवश सरजू पाण्डेय ने आत्महत्या कर ली है।

मगर सरजू पाण्डेय की आत्मा चुप नहीं बैठी। वह अपने भाई और अपनी पत्नी के मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालने लगी। जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनों में आये दिन झगड़े होने लगे। एक दिन झगड़ा मारपीट में बदल गया और इसी तरह एक दिन मारपीट के दौरान एक-दूसरे को लांछन लगाकर सरजू पाण्डेय की हत्या का रहस्य उगल दिया दोनों ने।

सरजू पाण्डेय की आत्मा ने बतलाया कि 'दोनों पर मुकदमा चल रहा है। मैं जानता हूँ कि क्या होगा अन्त में। रामप्रसाद को फाँसी होगी और कौशल्या को होगी आजीवन कारावास। वैसे अभी मैं स्वतन्त्र हूँ, मगर शीघ्र ही अपने गाँव के मुखिया रमापति की बहू मालती के गर्भ से जन्म लेने वाला हूँ। मैं बराबर मालती के आसपास चक्कर लगाया करता हूँ।'

'क्यों चक्कर लगाते हो ?' मैंने पूछा।

सरजू की मृतात्मा ने बतलाया, 'मालती के गर्भ में पलने वाले जिस शिशु के रूप में जन्म लेने वाला हूँ उसके शरीर की रचना अभी पूरी नहीं हुई है। जब शरीर की रचना पूरी हो जाती है, प्राणों का संचार नस-नाड़ियों में होने लगता है और हृदय एवं मस्तिष्क में रक्त का भी संचार होने लगता है तभी आत्मा प्रवेश करती है शिशु के शरीर में।'

‘क्या तुम मालती के अलावा और किसी के गर्भ में प्रवेश नहीं कर सकते ?’ मैंने प्रश्न किया।

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में सरजू की आत्मा ने जो बतलाया उसका सारांश यह था कि आत्मा को अपनी इच्छानुसार किसी भी गर्भ में प्रवेश करने और जन्म लेने की स्वतन्त्रता नहीं होती। कोई अदृश्य शक्ति बराबर इसके लिए आत्मा को रोकती रहती है। इसी प्रकार दूसरी ओर कर्म और संस्कार के अनुकूल गर्भ में प्रवेश करने के लिए भी प्रेरित करती रहती है। मतलब यह कि आत्मा अपनी इच्छा से मनचाहे गर्भ में प्रवेश कर जन्म नहीं ले सकती। इसके लिए वह किसी अदृश्य शक्ति के बंधन में परतंत्र रहती है।

जब मैंने सरजू पाण्डेय की आत्मा से यह पूछा कि मृत्यु के क्षण से लेकर गर्भ में प्रवेश करने के पूर्व तक तुम्हें क्या-क्या अनुभव हुए और किन-किन अवस्थाओं एवं परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, तो इस पर उसने बतलाया कि ’मुझे रात के समय दूध में जहर दिया गया था। दूध पीने के थोड़ी देर बाद जैसे ही मैं खाट पर लेटा कि मुझे चक्कर-सा आने लगा और उसी के साथ पेट और सीने में भी भयंकर दर्द होने लगा। फिर कब और किस क्षण मैं चेतना शून्य हो गया बतला नहीं सकता और जब चेतना लौटी तो अपने शरीर को चिता में जलते हुए देखा। वहाँ गाँव वालों और परिवार वालों की भीड़ थी। मैं भी जाकर अपनी चिता के सामने खड़ा हो गया। मुझे अपने शरीर को जलते हुए देखकर काफी दुःख हो रहा था। विवश था, कर ही क्या सकता था ? ‘

जब मेरी चिता जल गयी और सब लोग वापस लौट आये उसी समय श्मशान में मुझे विचित्र रूप-रंग के तीन-चार व्यक्ति दिखलायी दिये। वे काफी लम्बे थे। कम से कम सात फुट के अवश्य रहे होंगे। उनके शरीर का रंग लाल था। छाती चौड़ी थी। सिर कोंहड़े की तरह और मुँड़ा हुआ था। सिर पर कम से कम दो फुट की लम्बी चुटिया थी, जो कमर के नीचे तक लटक रही थी। आँखें बड़ी-बड़ी और गूलर की तरह लाल थीं। नाक थोड़ी बाहर निकली थी और नीचे का जबड़ा लटक रहा था।

वे लोग मेरी ओर बढ़ रहे थे। सभी की नजरें मुझ पर गड़ी हुई थीं। जब वे नजदीक आये और पकड़ने के लिए लपके तो मैं डरकर वहाँ से भागा। मगर वे लोग काफी शक्तिशाली थे। उन लोगों ने मुझे घेर कर पकड़ ही लिया। रोने लगा मैं। एक ने मुझे डाँटकर कहा - चुप, चल हम लोगों के साथ। वे लोग मुझे पकड़ कर एक ऐसे स्थान पर ले गये, जहाँ एक ओर तो ऊँचे-ऊँचे हरे-भरे वृक्ष थे और दूसरी ओर काफी लम्बा-चौड़ा मैदान था। उस मैदान में करीब सैकड़ों आदमी इकठ्ठे थे — शायद उन लोगों को भी मेरी तरह पकड़ कर वहाँ लाया गया था। उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दी जा रही थीं उस समय। लेकिन न कोई चीख-चिल्ला रहा था और न तो कुछ बोल रहा था। सभी मूक होकर यातना सह रहे थे। मुझे भी पकड़कर एक ओर बैठा दिया गया। मुझे भी यातना दी जायेगी यह सोचकर मैं काँप रहा था। उसी समय मुझे जोर की भूख लगी। मैंने राक्षस जैसे उस व्यक्ति से खाना माँगा। मगर उसने खाना देने के बजाय कसकर एक लात जड़ दी मेरी पीठ पर, और फिर बोला, खाना खायेगा ! कभी किसी को तूने खाना खिलाया भी है !

उस लम्बे-चौड़े मकान के एक ओर एक बड़ा महल था। वह लाल पत्थरों का बना था और

उसके चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें थीं। महल में जाने के लिए बड़े-बड़े दो फाटक थे। महल में, पहले फाटक से एक के बाद एक व्यक्ति को ले जाया जाता था और दूसरे फाटक से उसे बाहर कर दिया जाता था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि भीतर जाने वाला व्यक्ति जब बाहर निकलता था तो उसका रूप-रंग बदला हुआ होता था। काफी देर बाद मेरी भी बारी आयी और मुझे पकड़कर भीतर ले जाया गया। पूरे महल में हल्के गुलाबी रंग का प्रकाश फैला हुआ था। एक काफी लम्बे-चौड़े कमरे में बहुत बड़ा तख्त बिछा था। वह तख्त पुराने जमाने के राज-सिंहासन जैसा था। जिस पर लाल रंग का मखमली चादर बिछा था। जिस पर एक काफी मोटा-ताजा भयानक शक्ल का व्यक्ति बैठा हुआ था जिसे घेर कर भयानक शक्ल के ही चार-पाँच व्यक्ति खड़े थे।

तख्त पर बैठे राक्षस जैसे उस व्यक्ति को देखते ही मैं पत्ते की तरह काँपने लगा। मेरी घिग्घी बंध गयी। मुझे लाकर उसी के सामने खड़ा कर दिया गया। फिर जो लोग मुझे वहाँ लाये थे, उन्होंने न जाने किस भाषा में मेरे सम्बन्ध में उस भयानक व्यक्ति से बातें कीं। वह बातें सुनते हुए बीच-बीच में सिर हिलाता रहा। अन्त में उसने कोई आदेश दिया जिसे समझ न सका मैं। मगर जैसे ही मैं उसके सामने से हटाया गया और दूसरे फाटक से निकाला जाने लगा उसी समय एकाएक मेरे रंग-रूप में परिवर्तन हो गया। अब मैं ब्रह्मराक्षस की शक्ल में था। मुझे शेष आयु ब्रह्मराक्षस के रूप में भोगनी थी।

सरजू पाण्डेय की आत्मा अन्त में बोली- ब्रह्मराक्षस की योनि काफी कष्टदायिनी है। भूख-प्यास लगने पर न कुछ खाया जाता है न तो पानी ही पिया जा सकता है। जिस कारण मौत हुई रहती है उसी दुःख, क्लेश और पीड़ा को यातना के रूप में बराबर भोगना पड़ता है। बराबर अशान्ति को अवस्था बनी रहती है। मैं भी उसी यातना को भोग रहा हूँ और उसी अशान्ति में जी रहा हूँ। उस यातना और उस अशान्ति से तभी मुक्ति मिलेगी जब जिस समय मेरी आत्मा गर्भ में प्रवेश कर मालती के पुत्र के रूप में आपकी दुनिया में फिर जन्म लेगी।

सरजू पाण्डेय की मृतात्मा की मृत्यु से पुनर्जन्म तक की यह अलौकिक कथा एक प्रकार से यहीं ख़त्म हो गयी, मगर मेरे शोध और अन्वेषण का सिलसिला खत्म नहीं हुआ। मुझे ललिता के माध्यम से उन आत्माओं से भी साक्षात्कार करना था, जिनकी खोपड़ियाँ मेरे पास सुरक्षित थीं।

अध्याय ३
ब्रह्मपिशाच का प्रतिशोध

जो कथा मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ वास्तव में मेरे जीवन का वह एक ऐसा संस्मरण है जिसे चाह करके भी भुलाया नहीं जा सकता। आज भी कभी उस घटना की याद आ जाती है, तो सारा शरीर एकबारगी सिहर उठता है मेरा।

सन् १९५४, जनवरी का महीना। साँझ का समय था। उन दिनों मैं 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य' शीर्षक से एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिख रहा था और उसी के संबंध में अपने एक मित्र जिनका नाम राधामोहन सान्याल था से मिलने कलकत्ता गया हुआ था। उस समय सान्याल महाशय भी रहस्यवाद पर शोधकार्य कर रहे थे। शनिवार का दिन था। सान्याल महाशय से मिलने के बाद मैं काली जी का दर्शन करने के लिये चल पड़ा। मगर उस समय माँ का मन्दिर बन्द हो चुका था। एक घण्टे बाद खुलने वाला था। अतः मैं समय व्यतीत करने के विचार से इधर-उधर टहलता हुआ कालीघाट के श्मशान की ओर चला गया। श्मशान में कई लाशें जल रही थीं। दुर्गन्धमय वातावरण में अबूझ-सी खिन्नता छायी हुई थी। न जाने कब तक अपलक निहारता रहा मैं उन जलती हुई लाशों को। मन अवसाद से भर उठा। खिन्न हो गया चित्त उन चिताओं के रूप में जलते हुये परम-सत्य को देखकर। तभी हरि बोल हरि बोल की आवाज कानों में पड़ी। सिर घुमाकर देखा- खाट पर एक युवक का शव रखे कुछ लोग जल्दी-जल्दी श्मशान की ओर आ रहे थे। लाश के पीछे एक युवती भी थी। सद्यः परिणीता युवती। सहज ही उसकी ओर आकर्षित हो गयी दृष्टि। गोरा रंग, लम्बा कद, छरहरा बदन। माँग में लाल सिन्दूर, कलाइयों में शंख के वलय और लाल चूड़ियाँ। सुडौल और आकर्षक देह पर लिपटी हुई चौड़े पाट की लाल रेशमी साड़ी।

बहुत ही सुन्दर युवती थी वह। उम्र यही रही होगी २४-२५ साल के लगभग — आँखें सूजी हुई थीं। कभी गुलाब की तरह खिला रहने वाला चेहरा मुरझाया हुआ था। बाल खुलकर पीठ पर बिखेरे हुये थे। मुरझाये हुये चेहरे पर असीम पीड़ा, कष्ट, दुःख और असीम वेदना के भाव स्पष्ट थे। बुझी हुई आँखों के नीचे स्याह धब्बे उभर आये थे। निश्चय ही वह मृत युवक की पत्नी थी, समझते देर न लगी मुझे। काल के क्रूर हाथों ने उसी युवती का दप्-दप् कर जलता हुआ सिन्दूर पोंछा था। उसी को असमय में विधवा बनाया था मृत्यु ने।

कंधों से उतारकर खाट जमीन पर रख दी गयी। माथे पर उभर आये पसीने की बून्दों को गमछे से पोंछते हुये लोग जरा परे हटकर सुस्ताने लगे।

सामने जलती हुई चिताओं को पथरायी हुई आँखों से युवती ने एक बार देखा और फिर धम्म से वह पति की लाश के सिरहाने बैठ गयी।

मैं धीरे-धीरे चलकर युवक की लाश के करीब पहुँचा। देखा, युवक काफी सुन्दर था। गहरी शान्ति का भाव था, मुख पर। ऐसा लगता था, मानो वह गहरी नींद में सो रहा है और कोई मधुर स्वप्न देख रहा है। आँखें अधखुली थीं। नीचे का होंठ मुस्कराहट की मुद्रा में था।

युवती दोनों हाथ बाँधे बुझी-बुझी आँखों से अपने पति के चेहरे की ओर एकटक निहार रही थी अब। ऐसा लगा मानो वह अपने पति के नींद से जागने की प्रतीक्षा कर रही हो। अचानक अपने दोनों हाथों को फैलाकर युवती ने लाश को आलिंगन में ले लिया और करुण स्वर में लगी विलाप करने। श्मशान की उदासी और गहरी हो गयी। पेड़ पर बैठा हुआ कौवा भी एकबारगी के-के कर चीख पड़ा। लोग दौड़े और लपककर युवती को लाश से अलग किया, फिर एक सज्जन समझाते हुये बोले, 'इस तरह अब रोने से कोई लाभ नहीं चन्दना। अपने मन को शान्त रखो। जो चला गया, अब वह लौटकर आने वाला नहीं है।'

युवती का नाम चन्दना था। सचमुच वह चन्दना ही थी। वे सज्जन उसे पकड़कर एक ओर ले गये और फिर समझाने लगे। मगर चन्दना अभी भी रोये ही जा रही थी। कभी वह आँचल से आँसू पोंछती, तो कभी पति की लाश की ओर देखती।

दृश्य बड़ा ही करुण हो उठा था। मन विषण्ण हो उठा मेरा। रुका न गया मुझसे वहाँ फिर। श्मशान के बाहर निकल आया मैं। मगर तभी एक सज्जन किसी को चीख चीखकर गाली देते हुए वहाँ आ पहुँचे। ६०-६५ के लगभग उम्र थी उन महाशय की। पर वेश-भूषा भिखारियों जैसी थी। वह फटा-पुराना चिथड़े जैसा कुर्ता पहने थे। कमर में मैली कुचैली धोती बँधी हुयी थी। सिर के बाल रूखे और उलझे हुये थे। दाढ़ी भी काफी बढ़ी हुई थी। बिल्कुल किसी पागल भिखारी जैसे लग रहे थे महाशय।

उस व्यक्ति को देखकर लोग एकबारगी घबरा गये। १२-१३ सज्जनों ने आगे बढ़कर उसे पकड़ना चाहा, मगर वह बूढ़ा व्यक्ति सभी को परे ढकेलता हुआ उस युवक की लाश के करीब जा पहुँचा और मेरे लाल... मेरे लाल, मेरे बेटे और मेरे निशीथ कहते हुये लिपट गया लाश से।

मृत युवक का नाम निशीथ था। मगर वह बूढ़ा व्यक्ति कौन था ? क्या बाप था उस युवक का ? हाँ, बाप ही था बूढ़ा बगल में खड़े एक बंगाली सज्जन फुसफुसाकर बोले 'आपने पहचाना नहीं, यह राय चौधरी विपिन बाबू हैं।'

राय चौधरी विपिन मजूमदार। चन्दनवाड़ी के जमींदार राय चौधरी विपिन।

' हाँ, हाँ, महाशय वही राय चौधरी मजूमदार। उन्हीं के बेटे की लाश है वह। वह जो वहाँ खड़ी-खड़ी रो रही है लड़की उन्हें की बहू है बेचारी। अभी एक साल पहले ही तो शादी हुई है। लेकिन मौत के सामने भला किसका बस चलता है ? राय चौधरी विपिन मजूमदार को मैं जानता था। बहुत बड़े जमींदार थे वह। चन्दनवाड़ी में बहुत बड़ी हवेली थी उनकी। कलकत्ता में भी कई मकान थे — कई सिनेमा हाल के मालिक थे वह। सभी सुख था उन्हें। बड़े ही वैभवशाली और सम्पन्न व्यक्ति थे मजूमदार...। मगर उनकी हालत यह कैसे हो गयी। कौन से राहु ने ग्रस लिया उनको ?

अरे भाई ! ब्रह्मपिशाच के प्रतिशोध की आग में सब कुछ जलकर भस्म हो गया। अब बाकी ही क्या बचा। एक लड़का था वह भी आज चल बसा। बगल में खड़े महाशय फिर फुस-फुसाकर अपने आप कहने लगे, 'भगवान् दुश्मन को भी ऐसा बर्बाद न करे।'

ब्रह्मपिशाच का प्रतिशोध, कैसा प्रतिशोध — समझ में न आया मेरे कुछ। जब मैंने सान्याल से इसकी चर्चा की, तो वे गम्भीर हो उठे और फिर उन्होंने जो कुछ बतलाया वह बड़ी ही मर्मस्पर्शी और रोमांचकारी कथा थी। सान्याल महाशय भी चन्दनवाड़ी के निवासी थे यह पहली बार मुझे मालूम हुआ। राय चौधरी की मान-मर्यादा, प्रतिज्ञा, धन, यश-कीर्ति और वैभव के साथ उनके समूचे परिवार को ब्रह्मपिशाच के प्रतिशोध की ज्वाला में जलते हुये सान्याल ने अपनी आँखों से देखा था। सारी कथा सुन लेने के बाद नींद न आयी मुझे पूरी रात। बार-बार चन्दना का मासूम चेहरा उभर आता था आँखों के सामने। 'मरणोत्तर जीवन पर पुस्तक तो अवश्य लिख रहा था मैं, मगर राय चौधरी की मर्मस्पर्शी कथा ने मुझे इस बात का विश्वास दिला दिया कि मृत्यु के बाद भी जीवन के अस्तित्व में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। मनुष्य के विचार, स्वभाव, गुण आदि में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता।'

राय चौधरी विपिन बाबू सज्जनता और दया की प्रतिमूर्ति थे। उन्हें तीन सन्तानें थीं, दो पुत्र और एक पुत्री। सबसे बड़े पुत्र का नाम था, मनीष राय चौधरी और उससे छोटे पुत्र का नाम था निशीथ। पुत्री - जिसका नाम था हेमलता - सबसे छोटी थी।

जहाँ विपिन बाबू सदाचारी, सज्जन, दयालु और धार्मिक प्रवृत्ति के थे वहीं ठीक उसके विपरीत मनीष परम व्यसनी और दुराचारी था। जमींदारों के जितने भी अवगुण होते हैं वे सब उसमें कूट-कूटकर भरे थे। लुक-छिपकर वह शराब पिया करता था और गाँव की बहू-बेटियों को छेड़ा करता था। इन अवगुणों के बावजूद भी मनीष में एक विशेषता यह थी कि वह अपने पिता की अवज्ञा नहीं करता था। उनके सामने वह एक आज्ञाकारी पुत्र के समान ही रहता था।

विपिन बाबू काली के साधक-उपासक थे। अपनी हवेली में ही उन्होंने काली का एक भव्य मन्दिर बनवाया था, जिसमें काली की चतुर्भुजी मूर्ति स्थापित थी। दोनों नवरात्रों में विशेष रूप से माँ काली की पूजा, आराधना होती और भैंसों की बलि भी दी जाती।

माँ काली की नित्य सेवा, अर्चना और पूजा-पाठ के लिये पैतृक पुरोहित आशुतोष भट्टाचार्य नियुक्त थे।

हर अमावस्या को नियम के अनुसार मनीष को भी माँ की पूजा के लिए मन्दिर जाना पड़ता था। पिता की आज्ञा पर मन ही मन झुँझलाते हुए भी वह उनकी अवज्ञा नहीं कर पाता था। उसका कुसंस्कारी मन पिता के अनुशासन और जप-तप से नहीं बँध पाया था।

पुरोहित भट्टाचार्य महाशय की केवल एक पुत्री थी संध्या। जो अपनी नानी के यहाँ कलकत्ता में रहती थी। भट्टाचार्य महाशय अकेले थे और मन्दिर से सटे एक कमरे में रहते थे। उनका रहन-सहन और खाने-पीने का सारा खर्च विपिन बाबू वहन करते थे। सदैव दूसरों को आशीर्वाद देकर भट्टाचार्य महोदय अपने शुष्क जीवन का सूनापन दूर करते थे। सन् १९४१ ई० में भट्टाचार्य की सास का देहान्त हो गया। इसीलिये उनकी एक मात्र पुत्री संध्या चन्दनवाड़ी चली आयी और पिता के साथ रहने लगी। संध्या तब १६-१७ वर्ष की

हो चली थी। उसका एक-एक अंग पुष्ट होकर खिल उठा था। उसका रंग काफी गोरा था। कद लम्बा और शरीर छरहरा था। आँखें बड़ी-बड़ी थीं। नाक नुकीली थी। होंठ पतले और गुलाब के फूल की तरह कोमल और रक्ताभ थे। कोई भी उसको देखता, तो बस अपलक देखता ही रह जाता उसे।

पुत्री के आ जाने से भट्टाचार्य महाशय को मुँहमाँगी मुराद मिल गयी थी। उनको अपने नीरस जीवन में प्रथम बार ही शायद सुख-सुविधाओं की झलक मिली थी।

संध्या ने गृहस्थी आते ही जमा दी थी। भट्टाचार्य को दोनों समय भोजन मिलने लगा था। जीवन का ढर्रा चलता रहा कुछ समय तक। एक दिन भट्टाचार्य महोदय के मन में तीर्थ-यात्रा करने का विचार उत्पन्न हुआ। वे काशी जाना चाहते थे और वहाँ कुछ समय व्यतीत कर बद्रीनाथ जाने का उनका विचार था। अवसर देख एक दिन उन्होंने अपनी तीर्थ-यात्रा के इस विचार को विपिन बाबू के सम्मुख व्यक्त किया।

विपिन बाबू स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनको भला क्या एतराज हो सकता था। उन्होंने तुरन्त अनुमति दे दी। बोले - 'भट्टाचार्य जी, आप सहर्ष तीर्थ-यात्रा पर जायें जो खर्च चाहिये, मुझसे ले लें।'

भट्टाचार्य महाशय प्रसन्न हो उठे। गद्गद स्वर में बोले - 'मेरी अनुपस्थिति में संध्या को आप अपनी शरण में रख लें। तीर्थ से वापस लौटने पर मैं शीघ्र ही संध्या का विवाह करना चाहता हूँ।'

विपिन बाबू को इसमें क्या आपत्ति थी। उन्होंने संध्या को अपने पास रखने तथा भट्टाचार्य को चिन्तारहित होकर तीर्थ-यात्रा करने का आश्वासन दे दिया।

एक सप्ताह बाद भट्टाचार्य महाशय काशी-यात्रा के लिये रवाना हो गये और संध्या विपिन बाबू के परिवार के साथ रहने लगी। शीघ्र ही वह हेमलता की प्रिय सहेली भी बन गयी। विपिन बाबू की पत्नी बड़ी रानी कनकप्रिया देवी तो संध्या की सुन्दरता और मृदु स्वभाव की प्रशंसा ही किया करती थी।

अभाव में पली संध्या समुचित स्नेह-प्रेम पाकर खिल उठी। गुलाब के फूल की तरह उसका रूप-रंग निखर आया। विपिन बाबू ने हेमलता के साथ ही साथ उसकी भी शिक्षा और गायन सीखने का प्रबंध कर दिया। वह एक प्रकार से हेमलता की छोटी बहन ही बन गयी थी। दोनों प्राय: साथ ही साथ रहती थीं।

हवेली के बाहर आम का घना बाग था। काफी बड़ा बाग था वह। एक दिन हेमलता और संध्या दोनों साथ-साथ बाग में टहल रही थीं। उसी समय मनीष भी वहाँ पहुँच गया। अभी तक उसने संध्या को नहीं देखा था। अपनी बहिन के साथ एक रूपसी युवती को देखकर उसका लोलुप मन उसे पाने के लिये तड़प उठा। उसने ललचायी नजर से संध्या की ओर देखा और फिर अपनी बहिन से पूछा - ' यह लड़की कौन है ?

'अरे, तुमको नहीं मालूम ? पुरोहित जी की लड़की है - संध्या।' हेमलता हँसकर बोली।

‘मैं तो आज इसे देख रहा हूँ। बहुत सुन्दर है।’

‘आप घर पर रहते ही कहाँ हैं कि इसे देखेंगे।’ हेमलता आगे बोली - ’संध्या जितनी सुन्दर है उससे कहीं अधिक सुन्दर इसका गाना है। सुनोगे तो पागल हो जाओगे।’

’ठीक है, कभी सुनेंगे तुम्हारी सहेली का गायन।’ जब दोनों की बातें हो रही थीं - उस समय संकोच में डूबी एक ओर खड़ी थी संध्या।

मनीष की लोलुप दृष्टि बराबर जमी रही संध्या पर। संध्या ऐसी कामुक दृष्टि से भली-भाँति परिचित थी। उसे मनीष की आँखों में वासना के उस दानव का आभास मिल चुका था, जो आँखों ही आँखों में उसे पी जाना चाहता था। वह तुरन्त उसके सामने से हट गयी।

मनीष की वासना की आग बुरी तरह भड़क उठी थी। वह किसी भी तरह और किसी भी कीमत पर संध्या को प्राप्त कर लेना चाहता था। अब तक न जाने कितनी कुमारी लड़कियों और विवाहिता युवतियों के सतीत्व से खेल चुका था वह। मगर बदनामी के भय से और जमींदारी के रोब से कोई कुछ बोल नहीं पाता था।

आखिर एक रात अपहरण कर ही लिया मनीष ने संध्या का। मगर यह अपहरण मनीष के लिये ही नहीं बल्कि राय चौधरी के समूचे परिवार के लिये भयंकर रूप से घातक सिद्ध हुआ।

नित्य की भाँति चार बजे भोर में कनकप्रिया देवी उठीं। उन्होंने देखा कि संध्या उनकी बगल वाली चारपायी पर नहीं थी। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। संध्या उनके साथ ही उठती थी और नित्य-क्रिया के लिये जाती थी। जब दो-तीन घण्टे तक संध्या किसी को हवेली में नहीं दिखलायी दी, तो हंगामा मच गया। हर सम्भावित स्थान को खोजा गया मगर संध्या को नहीं मिलना था, नहीं मिली। कभी नहीं मिली।

राय चौधरी विपिन बाबू इसी दुःख में बीमार पड़ गये और उन्होंने चारपायी पकड़ ली। करीब पन्द्रह दिन के बाद तालाब के किनारे आम के एक पेड़ के नीचे झाड़ी में फँसा हुआ संध्या की साड़ी का टुकड़ा मिला। जब लोगों ने उसे पहचाना, तो गाँव में शोर मच गया। फिर पुलिस आयी। तालाब में जाल डाला गया। काफी देर के बाद और काफी मेहनत के बाद संध्या की लाश मिली। लाश नंगी थी और सड़ चुकी थी।

लाश को देखकर कनकप्रिया देवी बेहोश होकर गिर पड़ी। मर्यादाशील विपिन बाबू चीख-चीखकर अपने सिर के बल नोचने लगे। बीमार तो थे ही, उनकी आत्मा कलप रही थी कि वे भट्टाचार्य जी को दिये गये वचन को अब कैसे निभा पायेंगे ? क्या जवाब देंगे उनको ?

चार-पाँच महीने बाद भट्टाचार्य महाशय तीर्थ से वापस चन्दनवाड़ी लौटे और जब उन्होंने यह दुखद समाचार सुना तो विक्षिप्त हो उठे। लगातार हफ्तों तक संध्या-संध्या चिल्लाते रहे। संयम और विवेक की प्रतिमूर्ति भट्टाचार्य महोदय का संयम टूट गया था, विवेक भी नष्ट हो गया था उस समय।

’किस व्यभिचारी ने मेरी पुत्री के साथ दुराचार किया है ? मैं उसका समूल नाश कर दूँगा। उसके पूरे वंश को नष्ट कर दूँगा’ क्रोध से थर-थर काँपते हुये उस ब्रह्म तेजोमय ब्राह्मण ने कहा और धीरे-धीरे चलकर तालाब के किनारे पहुँचा और पानी में उतरकर अपना गमछा भिगोया और उसे कसकर गले में बाँधा और आत्मघात कर लिया।

ब्रह्म-हत्या का समाचार जब विपिन बाबू ने सुना तो पीले पड़ गये। एक नहीं, दो-दो मौतें हो चुकी थी। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे करें क्या ? सदमे को बरदाश्त न कर सके विपिन बाबू। पागल हो गये वह। दिन भर गाँव में घूमते रहते और चीखते-चिल्लाते रहते। हालत दिन पर दिन दयनीय होती गयी उनकी।

विपिन बाबू की अवस्था ऐसी होने पर मनीष स्वतंत्र हो गया। उसकी तूती बोलने लगी। सुरा-सुन्दरी का खुला प्रयोग होने लगा हवेली में।

बरसात का मौसम था। उस दिन सवेरे से ही पानी बरस रहा था। साँझ गहरा गयी थी। मनीष आकण्ठ डूबा हुआ था मदिरा में और उस समय उसको तृप्त करने के लिये कई ग्राम बालायें थीं उसके निकट। अचानक चीखकर जमीन पर गिर पड़ा मनीष और बेहोश हो गया। फिर तो उस दिन से एक न एक व्याधि उसे लगी ही रहती। मनीष को लगता कि किसी अज्ञात शक्ति ने उसे जमीन पर पटक दिया है। नींद में भयानक से भयानक और डरावनी आकृतियाँ उसे घूरती हुई दिखाई पड़तीं। कभी-कभी ऐसी स्थिति में खाट से उठकर तालाब की ओर भागने लग जाता वह। भोजन परोसकर सामने लाया जाता, तो मल-मूत्र में परिवर्तित हो जाता वह। मनीष को भूखा-प्यासा ही रह जाना पड़ता। बड़े-बड़े ब्राह्मण और ओझा बुलाये गये। तंत्र-मंत्र और झाड़-फूँक किया गया। तरह-तरह के अनुष्ठान और तांत्रिक प्रयोग किये गये। मगर लाभ कुछ नहीं हुआ। सभी ने यही बतलाया कि मनीष पर ब्रह्मराक्षस का साया है। ठीक होना कठिन ही है। कोई भी उपचार शुरू होने पर मनीष के शरीर में असह्य पीड़ा होती थी और वह पागलों की तरह चिल्लाने-चीखने लगता। मरने के पूर्व बराबर एक सप्ताह तक वह बेहोश रहा। सभी उपाय व्यर्थ गये। कभी-कभी बेहोशी की ही अवस्था में चिल्लाता- ‘मैं यह वंश निर्मूल कर दूँगा।’

और एक रात जैसे ही वह चिल्लाकर बोला - ‘मैं यह वंश निर्मूल कर दूँगा’ - उसी समय मनीष के मुँह से ढेर सारा खून निकला और उसी के साथ उसके प्राण निकल गये।

मरने के कुछ देर पहले मनीष ने अपनी माँ को अपना पाप बतलाया। उसने कहा, ’वह संध्या को अपने दो आदमियों की सहायता से उठवाकर गाँव से दो मील दूर रंगमहल में ले गया था। वहाँ उसने संध्या के साथ बलात्कार किया। इच्छा भर भोग लेने के बाद उसने उसे नौकरों के हवाले कर दिया। नौकरों ने भी जी-भर कर सम्भोग किया संध्या के साथ। फिर गला घोंटकर उसने मार डाला उसको और लाश तालाब में डुबो दी।’

मनीष के मरने के बाद हवेली में तरह-तरह की भयानक आवाजें गूँजने लगीं। कभी-कभी किसी औरत के खिल-खिलाकर हँसने की आवाज भी तैर जाती हवा में। हवेली के बन्द दरवाजे-खिड़की और आलमारियों के बन्द पल्ले अपने आप फटाफट खुल जाते। कभी-कदा

आँगन और दालानों में मल-मूत्र की वर्षा भी होने लग जाती जिससे चारों तरफ दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध फैल जाती। हवेली से कीमती सामानों का गायब होना और कपड़ों में आग लग जाना तो मामूली बात हो गयी थी।

करीब एक साल तक तो ऐसा ही सब कुछ होता रहा। उसके बाद मौत का सिलसिला चल पड़ा। एक के बाद एक की मृत्यु होने लगी। शान्ति के लिये किसी अनुष्ठान प्रयोग के लिये कोई भी ब्राह्मण या तांत्रिक अब तैयार न होता। पूजा-हवन के लिये यदि कोई तैयार भी हो जाता, तो हवन की अग्नि ही प्रज्वलित न हो पाती। खैर, अन्त में सदाबहार हवेली वीरान हो गयी। निशीथ कलकत्ते में अपने मामा के पास रहता था। बस वही बचा रहा, इस अभिशाप से अब तक। वह विपिन बाबू को भी कलकत्ता ले आया। इलाज भी कराया उनका। मगर ठीक कहाँ होना था उन्हें। हाजरा रोड और कालीघाट की सड़कों और गलियों में पागल भिखमंगों की तरह वे घूमते रहते। किसी ने कुछ दे दिया तो खा लिया वर्ना अपने में लीन। उस घटना के करीब पन्द्रह दिनों के बाद साँझ के समय मैं हाजरा रोड से गुजर रहा था। देखा- फुटपाथ पर विपिन बाबू पड़े हुए थे। शरीर पर वही फटा-पुराना कुर्ता और वही मैली-कुचैली लुंगी। उलझे हुये बाल, कीचड़ में सने हुए थे। आँखें बन्द थीं, मुँह खुला हुआ था। एक ओर अल्युमीनियम का एक कटोरा पड़ा था। खाली नहीं था वह। उसमें भात था, जो कभी का सूख गया था। निस्पन्द पड़े विपिन बाबू के चारों ओर घेर कर कई लोग खड़े थे। पूछने पर मालूम पड़ा कि न जाने कब के मरे पड़े हैं फुटपाथ पर वह। आँखें भर आयीं मेरी। रुका न गया वहाँ फिर मुझसे। वंश के एकमात्र अन्तिम चिराग निशीथ की मृत्यु के आघात को सहन न कर सके विपिन बाबू। सचमुच ब्रह्मपिशाच के प्रतिशोध की आग ने उन्हें भी जलाकर भस्म कर डाला था।

लगभग बीस वर्ष बाद। मुझे एक आवश्यक कार्य से सान्याल से मिलने के लिये चन्दनवाड़ी जाना पड़ा। एक प्रकार से मैं इन तमाम घटनाओं को भूल ही चुका था। मगर जब चन्दनवाड़ी पहुँचा, तो स्मृति-पटल पर एक-एक घटना उभर आयी।

करीब ५०-६० कच्चे-पक्के मकानों का गाँव चन्दनवाड़ी। गाँव के बाहर एक बहुत बड़ा तालाब था और उस तालाब से सटा हुआ था काफी लम्बा-चौड़ा केले का बाग और बाग के बाद थी विपिन बाबू की हवेली। साँझ की स्याह चादर फैल चुकी थी चारों तरफ। एक अबूझ-सी खिन्नता व्याप्त थी वातावरण में। जब मैं तालाब के किनारे से होकर आगे बढ़ा, तो सामने ही दिखलायी पड़ गयी हवेली। ध्वस्त परिवेश में - अतीत की एक यादगार के रूप में - वह हवेली धूल-धूसरित होकर भी बाँकी भंगिमा से सिर ऊँचा किये खड़ी थी। उसे देखकर बड़ा ही कातर और म्लान प्रतीत हुआ मुझे। सब ओर साँय-साँय हो रहा था। सिवार से भरे तालाब के मटमैले पानी में हल्की छाया पड़ रही थी हवेली की। मैंने देखा तालाब की सीढ़ियाँ टूटी-फूटी थीं और उन पर बेशुमार काई लगी हुई थी। जिसके फलस्वरूप वातावरण में दुर्गन्ध फैल रही थी। सोचने लगा मैं - इसी तालाब में संध्या की लाश फेंकी गयी थी और इसी तालाब के पानी में उतरकर आत्मदाह किया था भट्टाचार्य महाशय ने। एक की हत्या की गयी थी और दूसरे ने स्वयं अपनी हत्या की थी। दोनों आत्माओं का साक्षी था वह मूक तलाब। विषण्ण हो उठा मेरा मन और वहीं काई लगी एक

सीढ़ी के टूटे पत्थर पर बैठ गया मैं ।

कब तक गालों पर हाथ धरे चुप-चाप यही सब सोचता हुआ बैठा रहा मैं, ख्याल नहीं । अचानक किसी के खिलखिलाकर जोर से हँसने की आवाज कानों में पड़ी मेरे। चौंक पड़ा एकबारगी मैं । चारों ओर सिर घुमाकर देखा। सारी प्रकृति रात्रि के निविड़ अंधकार में डूबी हुई थी । कौन था ? किसकी हँसी थी वह ? कुछ समझ में न आया मेरे ।

उठकर चलने लगा मैं । अभी चार-पाँच कदम ही चला होऊँगा कि अचानक फिर वही हँसी सुनाई पड़ी मुझे । इस बार मैंने हँसने की आवाज को ध्यान से सुना । हवेली से आयी थी वह आवाज । न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं घूम पड़ा हवेली की ओर ।

एक अबूझ-सी उदासी, एक विचित्र सी खिन्नता परिव्याप्त थी उस हवेली में । लाल पत्थरों से बनी एक ऊँची शानदार हवेली की धूल से अटी सीढियाँ चढ़ते समय लगा जैसे काफी अरसे से कोई आया न हो वहाँ । टूटी-फूटी जर्जर बारादरी में प्रवेश करते ही दहशत से पर फड़-फड़ाते कबूतर कानों को छूते हुये निकल गये । लगा जैसे चमगादड़ भी चीखें हों यहीं कहीं ।

राशि-राशि बिखरे अंधकार में धुँधले उजाले का दायरा एक बार सिमट कर फैला और फिर फैलता ही गया । लगा हाथ में लैम्प लिये कोई आ रहा है । आँखों में विस्मय भरे एकटक सामने देखता रहा मैं ।

काठ का जर्जर किवाड़ हटाये जाने की आहट हुई । म्लान उजियाला । उस पीली मद्धिम रोशनी में देखा - मिट्टी के तेल का धुआँ उगलती चिमनी लिये एक हाथ बाहर आया । उसके पीछे एक अस्पष्ट-सा चेहरा । गौर से देखने पर शरीर की रेखायें स्पष्ट हो गयीं । लम्बा-दुबला, जीर्ण-शीर्ण-सा शरीर, तीखी नाक, विस्फारित भावहीन-सी आँखें आँखों के किनारे गहरी स्याही-विवर्ण रक्तहीन-सा मुख । न जाने किस निगाह से देख रही थी वह युवती कि डर लग आया ।

जैसे दुविधा हो रही हो - ऐसे निगाह से देखती रही थी वह प्रौढ़ युवती मेरी ओर । फिर क्षीण हँसी हँस कर बोली, 'भीतर चले आइये ।'

फीकी रोशनी का दायरा कसमसाया और फिर आगे सरका। उसी के पीछे-पीछे मैं चला ।

भीतर गहरी खामोशी थी । बाहर की दुनिया से वह अंजाना लोक परे-सा प्रतीत हुआ मुझे । थोड़ा भय लगा, मगर फिर सँभाल लिया मैंने अपने आपको ।

यह प्रौढ़ युवती कौन है ? क्या इसी की हँसने की आवाज सुनाई पड़ी थी मुझे ? जब मैं मन में यह सोच रहा था उसी समय उसने पीछे मुड़कर मेरी ओर देखा और फिर जरा - सा हँसकर बोली, 'आपने मुझे क्या पहचाना नहीं ?'

'नहीं, आपको पहचान न सका मैं ! कौन हैं आप ?'

'कालीघाट के श्मशान की घटना भूल गये - ऐसा लगता है मुझको !'

अचानक मस्तिष्क में कुछ कौध-सा गया' क्या आप चन्दना हैं ! विपिन बाबू की पुत्रवधू... चन्दना ?'

हाँ! आपने अब पहचाना ठीक से ।' फिर फिस-फिस कर हँस पड़ी चन्दना । बड़ी रहस्यमयी हँसी थी वह ।

'आप इस हवेली में मुझे मिलेंगी - ऐसा कभी सोचा न था मैंने कब से हैं आप ?'

'जब से मेरी दुनिया उजड़ी है तभी से हूँ शर्मा जी !'

'मैं शर्मा हूँ! यह कैसे मालूम है आपको ?'

'मुझे सब मालूम है पण्डित जी ! आप बनारस के रहने वाले हैं और यहाँ सान्याल बाबू से सरकारी काम से मिलने आये हैं, यह भी मुझे मालूम है ।'

स्तब्ध रह गया मैं । रहस्य समझ में नहीं आया ।

लम्बे-चौड़े आँगन के बाद कई कमरे थे । एक कमरे का दरवाजा लगा जैसे अपने आप खुल गया हो । कच्ची जमीन पर एक खाट बिछी हुई थी । एक तरफ टूटी हुई एक कुर्सी भी पड़ी थी । मुझे उसी कुर्सी पर बैठने का संकेत कर छोटी रानी स्वयं खाट पर बैठ गयीं । अचानक हवा का एक झोंका आया और उसी के साथ कमरे में विचित्र-सी दुर्गन्ध फैल गयी । लगा जैसे कहीं कोई मुर्दा सड़ रहा हो ।

चिमनी की काँपती हुई पीली रोशनी में अब मैं साफ देख रहा था छोटी रानी चंदना को । जो रूप और सौन्दर्य मैंने बीस वर्ष पहले देखा था वैसा अब कुछ भी न था वहाँ । न वह रूप था और न था वह सौंन्दर्य । चम्पा के फूल की तरह शरीर का रंग धूमिल पड़ गया था । सावन-भादों की काली घटा की तरह स्याह घने बाल अधपके होकर रूखे पड़ गये थे । आँखों के नीचे भी स्याही फैल गयी थी । पूरे चेहरे पर झुर्रियाँ उभर आयी थीं । मगर इन सबके बावजूद भी मुख पर एक अजीब-सा तेज फैल रहा था उस समय । खाट पर बैठने के बाद छोटी रानी ने एक बार बड़ी गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर आहिस्ते से बोली - 'आप तो जानते ही हैं सारी कथा...'

'हाँ, सब जानता हूँ। सब सुन चुका हूँ मैं वासना की एक छोटी-सी चिनगारी ने कैसे प्रतिशोध की ज्वालामुखी बनकर राय चौधरी परिवार को भस्म कर डाला - उससे अच्छी तरह परिचित हूँ मैं —'

'उफ्फ । माँ क्या से क्या हो गया...' एक दीर्घ श्वास ली छोटी रानी ने और फिर आगे बोली - 'मेरा एक काम है, कर सकेंगे आप उसे ?'

'आज्ञा दें ! अवश्य करूँगा मैं ।' मेरी बात सुनकर छोटी रानी ने एक बार चारों तरफ आँखें घुमाकर देखा और फिर खाट पर बिछी दरी के नीचे से एक पोटली निकालकर उसे मेरी ओर बढ़ाते हुये कहा - 'ये रुपये हैं । पूरे पाँच हजार रुपये... । इसे रख लें अपने पास ।'

पोटली ले ली मैंने । फिर बोला - 'क्या करना होगा मुझे ?' फिर एक लम्बी साँस ली छोटी रानी ने और उच्छवास भरे स्वर में कहने लगी, 'राय चौधरी परिवार के सभी लोग भयंकर प्रेत-योनि में पड़े हैं । उनकी आत्मा का उद्धार करना होगा आपको ।'

'ठीक है, मगर मैं कैसे कर सकता हूँ उद्धार ?'

'आपको जो रुपये मैंने दिये हैं - इनसे आप काशी और गया में श्राद्ध करवा दें और ब्राह्मणों और साधु-संन्यासियों को भोजन भी करवा दें । इन सबसे उन प्रेतात्माओं को शांति मिलेगी और प्रेत-योनि से मुक्ति मिल जायेगी ।'

अपने वाक्य को जैसे ही छोटी रानी ने पूरा किया उसी समय आँगन में किसी की खिलखिलाकर हँसने की आवाज आयी । किसी की हँसी थी वह ! आश्चर्य और भय के मिले-जुले भाव से भर गया मन । सिर घुमाकर देखने की कोशिश की पर अँधेरे में कुछ दिखलाई न पड़ा मुझे ।

१०-१५ मिनट बाद फिर उसी प्रकार हँसने की आवाज आयी । इस बार की हँसी मुझे अजीब-सी लगी । निश्चय ही वह किसी मनुष्य की हँसी नहीं थी । अचानक मेरी निगाह छोटी रानी की ओर घूम गयी । देखा, उनका चेहरा पीला पड़ गया था । भय और आतंक से थर-थर काँप रही थीं वह । पथराई हुई आँखों से कभी मेरी ओर तो कभी आँगन की ओर देख लेती थीं । फिर एकाएक उनका चेहरा काला पड़ गया । हँसने की फिर आवाज सुनाई पड़ी । इस बार बिल्कुल नजदीक सुनाई पड़ी थी आवाज । ऐसा लगा मानो कोई कमरे में ही हँसा हो । दृष्टि अपने आप घूम गयी और फिर सुषुम्ना तक एक हिम प्रवाह दौड़ गया । रोम-रोम सिहर उठा । सोलह-सत्रह साल की एक युवती दरवाजे के पास खड़ी रानी साहिबा की ओर घूर रही थी । बड़ी भयानक शक्ल थी उस युवती की । सारा शरीर भीगा हुआ था उसका । बालों से भी पानी चू रहा था । गीली साड़ी बदन से चिपकी हुई थी । ऐसा लगा मानो अभी-अभी स्नान करके वही आयी हो । कौन थी वह लड़की ? उसे देखकर असीम आतंक से अवश हो गया मेरा सारा शरीर । लगा जैसे प्राण ही निकल जायेंगे । छोटी रानी की ओर देखने की कोशिश की मैंने लेकिन कहाँ थीं !

एक क्षण ! एक क्षण का भी सौवाँ हिस्सा । उसके बाद ही वह रहस्यमयी लड़की आँगन की ओर बढ़ गयी और अगले ही क्षण भयानक अट्टहास से गूँज उठा निस्तब्ध वातावरण । लगा जैसे भयातुर कण्ठ से छोटी रानी ने चीत्कार किया हो - 'बचाओं ।'

'छोटी रानी, छोटी रानी रानी माँ' पुकारता हुआ मैं भी भागा आँगन की ओर । मगर दूसरे ही क्षण किसी पत्थर है टकरा कर गिर पड़ा मुँह के बल जमीन पर । फिर होश न रहा मुझे और जब चेतना लौटी तो देखा- सवेरा हो चुका था और मैं सान्याल के कमरे में एक खाट पर पड़ा था और सान्याल के अलावा और कई लोग खड़े थे मेरे करीब । छोटी रानी कहाँ हैं, धीमे स्वर में पूछा मैंने सान्याल से !

सान्याल का चेहरा गम्भीर हो उठा । बिना कुछ बोले वे दूसरे कमरे में चले गये और जब वापस लौटे तो उनके हाथ में पोटली थी, रुपये की पोटली ।

‘क्या यह आपका रुपया है ?’ ’नहीं रानी माँ ने दिया था रुपया। उन्हीं का है यह रूपया।’ यह सुनकर सान्याल का चेहरा सफेद हो गया। शायद उनका गला सूख गया था। सूखे कण्ठ से हकलाते हुये बोले - ’ कल रात सचमुच आपसे रानी माँ मिली थीं और रुपया दिया था ?’

‘आप इस तरह क्यों पूछ रहे हैं ! क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ आपसे ?’

’नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है। आपसे रानी माँ नहीं, रानी माँ की भटकती हुई प्रेतात्मा मिली थी” और सान्याल अपना वाक्य पूरा कर पाते कि बीच में ही चीख कर बोल पड़ा मैं - ’क्या वह प्रेतनी थी ?’

’हाँ सान्याल ने जवाब दिया - वह प्रेतनी थी। पिछले बीस साल से हवेली में भटक रही है वह ! और उसके साथ ही भटक रही है संध्या की भी प्रेतात्मा।’ कहने की आवश्यकता नहीं। मैंने उसी दिन चन्दनवाड़ी छोड़ दिया और बनारस चला आया और छोटी रानी के आदेश के अनुसार सारा काम करा दिया। उनकी और उनके परिवार के लोगों की भटकती हुई आत्माओं को शान्ति मिली या नहीं, प्रेत योनि से वे लोग मुक्त हुये या नहीं, यह मैं नहीं बतला सकता, मगर यह अवश्य बतला सकता हूँ कि पिछले महीने में एक बार चन्दनवाड़ी गया था। हवेली में पूरी एक रात रहा पर मुझे वहाँ फिर कोई भटकती हुई आत्मा नहीं दिखलायी पड़ी। सान्याल ने उस वीरान हवेली को खरीद लिया है।

अध्याय ४
मैं प्रेतयोनि से मुक्ति चाहती हूँ

’शर्मा जी ! मैं प्रेतयोनि से मुक्ति चाहती हूँ। पिछले अस्सी वर्षों से मैं इस नारकीय योनि में भटक रही हूँ।’

‘तुम्हारा नाम क्या है ?’

‘चम्पा चमेली।’

नाम सुनकर मैंने ध्यान से उस युवती की ओर देखा। मझोला कद, हल्का जैतूनी रंग, बड़ी-बड़ी आँखें और अजन्ता स्टाइल में बँधे हुये चमकदार लम्बे-काले बाल, उसके तराशे हुये चेहरे से बच्चों का-सा भोलापन टपकता था। साँचे से ढले हुये-से उसके जिस्म को देख कर बरबस मशहूर मूर्तिकार माइकल एंजलो की बनाई हुई सौन्दर्य की देवी वीनस की मूर्ति की याद आ जाती थी। गुलाबी रंग की बनारसी साड़ी में लिपटी वह किसी देवी की भाँति दिखायी दे रही थी।

सहसा हवा के झोंके से फट् से खिड़की का पल्ला खुल गया और पानी की बौछार मेरे ऊपर आ पड़ी। मेरी नींद खुल गयी। उठ कर मैंने बत्ती जलाई। घड़ी की ओर देखा- एक पैंतीस। हे माँ ! कैसा सपना था ! वह कौन थी, जो मुझसे प्रेत-मुक्ति की याचना कर रही थी।

बाहर तेज बारिश हो रही थी। नींद उचट गयी थी, इसलिए फिर नहीं सो सका। सपने के ही बारे में सोचते-विचारते कब रात गुजर गयी पता ही न चला। रह-रहकर आँखों के सामने चम्पा चमेली का खूबसूरत चेहरा थिरक उठता था। कितनी सुन्दर थी वह।

कई दिनों तक उसकी सूरत याद आती रही, फिर धीरे-धीरे सब कुछ भूल गया।

कमरे में जल रहे शमादान की पीली लौ से नजर हटाकर मैं खिड़की के बाहर साँय-साँय करते अँधेरे में दरख्तों की ओर आँखें फाड़े देखता रहा। वातावरण को झकझोरती हुई बाहर की तीखी, बर्फीली हवा एकाएक कमरे में फैल गयी। शमादान की पीली लौ काँपी-दरवाजे और खिड़कियों के पर्दे भी फड़फड़ा उठे, फिर थम कर हौले-हौले लहराने लगे। मैंने आहिस्ते से पूछा - 'इस हवेली का मालिक कौन था ?'

'विपिन राय चौधरी।' परेश बाबू बोले - 'पश्चिम बंगाल के जमींदार थे। उन्हें मरे एक लम्बा अरसा बीत गया - करीब अस्सी वर्ष।'

'अस्सी वर्ष।'

'जी हाँ।'

'उनके जीवन और रहन-सहन के बारे में आपको कुछ मालूम है ?'

'जी नहीं, न उनका कोई इतिहास मालूम है और न इस हवेली के निर्माण की कथा ही। मगर इस हवेली में उनकी एक तस्वीर टँगी है।'

उन्होंने शमादान उठा लिया। लौ एक बार पुन: काँपी, लेकिन शमा बुझी नहीं। धुँधले अँधेरे को चीर कर दीवार पर पीली, मद्धिम रोशनी का एक बड़ा-सा दायरा बन गया था। उसी की ओर इंगित करते हुये परेश बाबू बोले, 'यही है विपिन राय चौधरी की तस्वीर।'

मैंने आँखें ऊपर उठाई। समय की मार से फीके पड़ गये गहरे रंगों से बने एक आदमकद तैलचित्र पर निगाह अटक गयी। चित्र की आकृति धूमिल पड़ गयी थी, पर नज़र गड़ा कर देखने पर साफ दीखने लगा सब कुछ - मखमल और कमख्वाब की लम्बी शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा, पैरों में कीमती जूता, रत्नजटित म्यान में झूलती तलवार। गले में पड़ी सफेद और हरे मोतियों की मालायें, रोबीला चेहरा। गहरी काली आँखें, बिच्छू के डंक जैसी खड़ी मूँछें। सिर के ऊपर कलंगीदार साफा और मोटे-मोटे होंठों पर विद्रूप-भरी कुटिल मुस्कान।

तस्वीर देख कर विपिन राय चौधरी मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे। वहाँ से पलट कर मैंने खिड़की के सामने खड़े होकर कहा - 'बड़ा जालिम और खतरनाक रहा होगा यह आदमी ?'

'जी हाँ !' परेश बाबू बोले - ' एक नम्बर के मक्कार और परले दर्जे के ऐयाश भी ! संसार का ऐसा कोई भी घृणित कार्य नहीं होगा, जो इन्होंने न किया हो ! लम्पट।'

'आप ठीक ही कह रहे हैं' मैंने कहा, 'मध्ययुग में राजोचित पौरुष के जो लक्षण माने जाते

थे, उनसे वंचित नहीं रहे होंगे विपिन राय चौधरी। मगर एक बात सोचने वाली है। राय चौधरी परिवार के लोग अस्पृश्य से स्पर्श हो जाने पर अपने धर्म और गोत्र की प्रतिष्ठा बचाने के लिये भयंकर जाड़े की रात में भी स्नान कर लेते थे। उनके कर्मकाण्डी विवेक को अतीत के पापाचार की इस लीला-स्थली ने कैसे दबा दिया, जिसकी दीवार पर मैं देख रहा हूँ कि आज भी गर्हित दुष्कर्मों के दाग मौजूद हैं।'

फिर थोड़ा रुक कर मैं बोला - 'गृह-प्रवेश के पहले आपने इस हवेली को गंगा जल से धुला तो लिया ही होगा ?'

शमादान की पीली लौ एक बार और काँपी, फिर स्थिर हो गयी। परेश बाबू गहरी उसाँस लेकर बोले - 'शर्मा जी! गंगाजल पाप के दागों को धो सकता है, लेकिन अभिशाप की मँडराती हुई काली छायाएँ तो फिर भी रह ही जाती हैं।

खिड़कियों के पर्दों को लहराता हुआ ठण्डी हवा का एक झोंका भीतर घुस आया। मैंने विस्मय से पूछा, 'कैसा अभिशाप ?'

परेश बाबू की विमूढ़-सी दृष्टि बड़ी विचित्र-सी प्रतीत हुई, बोले, 'कलकत्ते से आपको इसीलिये तो बुलाया है शर्मा जी इसी अभिशाप की कथा सुनाने के लिये।' फिर खखार कर गला साफ करने के बाद कहने लगे - 'यह एक विदग्ध और अतृप्त आत्मा के अभिशाप की व्यथा-भरी कथा है शर्मा जी, जिसने विपिन राय चौधरी का नाश कर दिया और उसके वंशजों को भी खा गयी। इतना ही नहीं, उसने इस आलीशान हवेली को श्रीहत् और धूल-धूसरित कर दिया। आज भी यह इस हवेली में किसी को जीने नहीं देती — काश ! यह सब पहले ही जान गया होता तो कभी भी इस हवेली को न खरीदता। मगर अब तो बुरी तरह फँस गया हूँ। पहले पत्नी मरी, बाद में मेरा एकमात्र सहारा तीस वर्षीय पुत्र और उसकी पत्नी भी चल बसी। अब सिर्फ मैं बचा हूँ। मुझे भी एक न एक दिन उस अभिशप्त आत्मा के आक्रोश का शिकार बनना ही पड़ेगा। मैं जानता हूँ अच्छी तरह जानता हूँ '

परेश बाबू एकदम फफक्-फफक् कर बच्चों की तरह रोने लगे। मैं उनकी ओर स्थिर दृष्टि से ताकता रहा।

परेश बाबू से मेरा घनिष्ठ परिचय था। यह चाय बागान के मैनेजर थे। ब्रिटिश काल में उन्होंने काफी पैसा कमाया था। जमीन-जायदाद बढ़ाने की प्रबल लालसा थी और उसी लालसा के वशीभूत होकर उन्होंने मुँहमाँगी कीमत पर दार्जिलिंग में विपिन राय चौधरी की यह हवेली खरीद ली थी, लेकिन बाद में जब मरणयज्ञ शुरू हुआ और शरीर में सफेद दाग उभरने लगे तब उनकी आँखें खुलीं, फिर कारण का पता चला तो अभिशाप की व्यथा सामने आयी, फिर तो परेश बाबू के होश ही उड़ गये। काफी तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ, अनुष्ठान हुए, मगर कोई लाभ नहीं दिखा, फिर हार कर कलकत्ता से मुझे बुलाया।

रोते हुए परेश बाबू ने मेरे पैर थाम लिए। मैं चौक पड़ा, 'यह आप क्या कर रहे हैं ?'

मगर उन्होंने मेरे पैर नहीं छोड़े। कहने लगे, 'मैं और मेरा परिवार तो बरबाद हो ही चुका

है शर्मा जी ! बस, मेरा प्राण रह गया है, उसकी रक्षा आपको करनी है। वसुधा और उनके बच्चों को भी कुछ न हो, इसका भी आपको ध्यान रखना होगा।'

'अच्छा, अच्छा ! पहले मेरा पैर तो छोड़िये आप !' जब परेश बाबू कुछ शान्त हुए तो मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने हवेली के संबंध में कौन-सी अभिशाप कथा सुनी है ?

परेश बाबू ने मेरी ओर देख कर कहा - 'मेरा आशय एक नर्तकी की नृशंस हत्या से है शर्मा जी। वह आज से अस्सी वर्ष पूर्व विपिन राय चौधरी की प्रबल वासना और क्रोध का शिकार बनी थी।'

'थोड़ा विस्तार से मुझे सब बतलाइये, परेश बाबू, तभी मैं आपकी सहायता कर सकूँगा।'

खिड़कियों के शीशों से पानी की बौछार टकरा रही थी। निविड़ रात्रि की नीरवता के बीच अँधेरे की गहरी काली तहों में ढके काफी दूर तक फैले घने जंगल के पेड़ों की कैद में सिसकारती, सिर पटकती हवा के हाहाकार के मध्य पुरातन काल में बनी उस विशाल कोठी के उस अँधेरे कमरे में बैठे परेश बाबू विचित्र स्वर में एक नर्तकी की अतृप्त आत्मा के अभिशाप की दारुण कथा सुनाने लगे। बोले - 'अब तो कुछ भी शेष नहीं है शर्मा जी ! सब कुछ अतीत के गर्भ में समा गया। केवल एक दारुण स्मृति भर बची रह गई है। किसी जमाने में यह बड़ी आलीशान हवेली थी। विपिन राय चौधरी के प्रताप से हर समय जग-मग करती रहती थी — जहाँ हम बैठे हैं, यही कमरा दीवानखाना था। इसका भी बड़ा ठाठ था। यहाँ सोलह बत्तियों वाला सोने का शमादान जलता था। ये जो काई लगी प्लास्टर उखड़ी काली-काली दीवारें हैं, इन पर कभी आदमकद कीमती आईने लटकते थे। दरवाजों पर रातरानी, जूही, चमेली की मालायें झूलती थीं। फर्श पर कीमती कालीन बिछे होते थे। छत से बेशकीमती झाड़-फानूस लटकते थे।'

परेश बाबू कथावाचक जैसी प्रवाहमयी भाषा में बोलते जा रहे थे, लगा जैसे वह अतीत में आकण्ठ डूब गये हों। यह बता रहे थे - 'उसी जमाने में विपिन राय चौधरी की नजर एक नर्तकी पर पड़ गई। वह बला की हसीन और गजब की तरहदार थी - जैसे औरत न होकर किसी कुशल मूर्तिकार के हाथों से तराशी हुई संगमरमर की मूर्ति हो। अंग-अंग से जैसे बिजली कौंधती थी। विपिन उस पर मर मिटे।'

मैंने बीच में टोक कर पूछा, 'उस नर्तकी का नाम क्या था ?' 'चम्पा चमेली।'

ऐं, चम्पा चमेली? मैं एकदम चौंक पड़ा। दो साल पहले का वह सपना एकाएक उभर कर सामने आ गया। क्या इसी नर्तकी ने मुझसे अपनी प्रेत-योनि से मुक्ति की याचना की थी ? मैंने उत्सुकता से पूछा, 'क्या चम्पा चमेली का कोई चित्र होगा यहाँ ?'

'हाँ ! परेश बाबू एक विशालकाय आलमारी के सामने जाकर खड़े हो गये। उसके पल्ले खोलकर उन्होंने कोई चीज निकाली, फिर आलमारी बन्द करके मेरे समीप आते हुये बोले - 'यह देखिये।'

और उन्होंने आलमारी से निकाली हुई वस्तु मेरे हाथ पर रख दी। शमादान की फीकी,

काँपती रोशनी में मैंने वह छवि देखो। साथ ही आतंक की एक ठण्डी लहर मेरे कलेजे में दौड़ गयी - मैं सिहर उठा, हाथ बुरी तरह काँप गये। यह छवि गिरते-गिरते बची थी। जो रूप और सौन्दर्य मैंने सपने में देखा था - बिल्कुल वही जादू चम्पा चमेली की छवि में थी। कहीं कोई वैषम्य नहीं। मैं अवाक् खड़ा न जाने कब तक उस छवि की ओर देखता रहा।

तभी हवा का एक तेज झोंका भीतर घुस आया। दरवाजे-खिड़कियाँ बजने लगे। मेरे ऊपर कुछ विचित्र-सा सम्मोहन जैसा छाता जा रहा था। एक अजीब किस्म का भारीपन-सा महसूस हो रहा था। चेतना-शक्ति जैसे लुप्त हुई जा रही थी, फिर भी चम्पा चमेली की छवि की ओर ताकता रहा। ऐसा लगा मानो वह अपनी मूक भाषा में मुझसे कुछ कहना चाहती है।

परेश बाबू बता रहे थे, 'चम्पा चमेली चढ़ती उम्र की युवती थी और विपिन अधेड़ हो चले थे। उनकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ चुकी थीं, मन में अभी हविश बाकी थी। उन्होंने चम्पा चमेली के शरीर पर तो बलात अधिकार जमा लिया, लेकिन उसके मन पर कब्जा नहीं कर पाये। चम्पा चमेली का दिल तो कहीं और लगा था।'

पल भर रुक कर परेश बाबू फिर बताने लगे, 'एक बरसाती रात को इसी दीवानखाने में एक भयंकर घटना घटी। लोगों की नजर बचाकर, नर्तकी चम्पा चमेली लुकती-छिपती अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी। उसी समय बिजली की-सी चपलता से आकर विपिन ने उसे घेर लिया। शराब से बोझिल आँखें और हाथ में नंगी तलवार। उन्हें किसने खबर दे दी थी, पता नहीं। इसके बाद एकदम अप्रत्याशित रूप से यह काण्ड हो गया। उन्होंने नर्तकी की एक भी नहीं सुनी और तलवार के एक ही वार से उसके दोनों पैर काट दिये, फिर दूसरे वार में उसकी गर्दन उड़ा दी। दीवानखाने का कीमती गलीचा नर्तकी के खून से लाल हो उठा था।'

मैंने काँपते स्वर से पूछा, 'उसके प्रेमी का क्या हुआ ?' 'बेचारा भाग कर जाता कहाँ। उसे भी उसी समय हवेली के पिछवाड़े वाले कदम्ब के पेड़ के नीचे पकड़ कर कत्ल कर दिया गया।'

मैं मन ही मन सोचने लगा जरूर ऐसा ही वीभत्स काण्ड हुआ होगा। कामातुर विपिन चम्पा चमेली की बेवफाई का पता लगते ही आपा खो बैठे होंगे।

परेश बाबू ऐसे दबे-सहमे स्वर में विवरण दे रहे थे, जैसे वे अतीत के उस जघन्य हत्याकाण्ड के दर्शक रहे हों। मैं कौतूहल से उनकी ओर देख रहा था। वास्तव में उस समय उनकी दशा बड़ी दयनीय थी। भय और आतंक से चेहरा हतप्रभ हो गया था।

मैंने धीरे से पूछा, 'फिर क्या हुआ ?'

'उसके थोड़े ही दिनों बाद विपिन मर गये। अन्तिम समय में वह पागल हो गए थे। मरते समय उनकी देह से बड़ी विचित्र बदबू निकलने लगी थी।' परेश बाबू बताने लगे, 'उन्हें अपने आसपास हमेशा पाजेब और घुँघरू की आवाजें सुनाई पड़तीं और दबे स्वर में कोई

फिस्-फिस् हँसता हुआ घूमता महसूस होता था। कलकत्ते के प्रसिद्ध तांत्रिक रामापद भट्टाचार्य ने बताया कि चम्पा चमेली और उसके प्रेमी की आत्मायें विपिन को परेशान कर रही हैं, अब उन्हें मार कर ही वे छोड़ेगी। विपिन जब काफी रोये-गिड़गिड़ाये तो भट्टाचार्य ने इसी हवेली में एक तांत्रिक अनुष्ठान का आयोजन किया, मगर वह सफल नहीं हो सके।' जब तक अनुष्ठान होता रहा, तब तक मल-मूत्र की वर्षा होती रही। भट्टाचार्य महाशय असफल होकर चले गए तो विपिन के सेक्रेटरी ने कामरूप कामाख्या के प्रसिद्ध अघोरी तांत्रिक सदानन्द अवधूत को बुलाया, मगर वे भी कुछ ही दिन में भाग खड़े हुये। इसी प्रकार कई तांत्रिक आये और असफल होकर चले गये। कोई उन प्रेतात्माओं से विपिन की रक्षा न कर सका। आखिर एक दिन पागलों की तरह चिल्लाते-दौड़ते, घिघियाते हुए विपिन ने उसी कदम्ब के पेड़ के नीचे गिर कर दम तोड़ दिया।'

'और तभी से शुरू हुआ यह अभिशाप। चम्पा चमेली की अमानुषिक हत्या ने विपिन राय चौधरी का वंश उजाड़ दिया। राय चौधरी खानदान में एक के बाद एक लोग मरते गये। मुझसे पहले जिसने यह हवेली खरीदी थी - उसकी भी मौत उसी प्रकार हुई थी।'

मैंने सोचते हुए पूछा, 'कैसे होती थी मौत ?'

'दो दिन पहले पागलपन के लक्षण प्रकट होते, उसके बाद देह से एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध निकलने लगती और आदमी मर जाता।'

'आपके परिवार के साथ भी ऐसा ही हुआ था ?'

'जी हाँ।'

'आपको यह सारी कथा किससे मालूम हुई ?'

'इस हवेली के चौकीदार से। पिछले महीने उसकी भी मृत्यु हो गयी।'

'उसकी मौत कैसे हुयी ?'

'जैसे इस हवेली में दूसरे लोगों की हुई थी।'

मैं चंपा चमेली और उसके प्रेमी की अतृप्त आत्मा के संबंध में सोचने लगा। रामापद भट्टाचार्य और सदानन्द अवधूत का नाम सुना था। वे बड़े ऊँचे तांत्रिक थे। उन दोनों साधकों में दुर्लभ और विलक्षण तांत्रिक शक्ति थी, फिर भी वे नर्तकी की प्रेतात्मा के अभिशाप से इस हवेली को मुक्त नहीं कर सके और न विपिन को बचा सके - आश्चर्य की बात थी।

दीवानखाने से निकल कर मैं बाहर बरामदे में आ गया। बारिश और भी तेज हो गयी थी। रात खिसकती जा रही थी। चारों ओर फैले अजीब से सन्नाटे में झींगुरों की आवाज गूँज रही थी। तभी मेरी नजर अँधेरे में खड़े कदम्ब के पेड़ की ओर चली गयी। वह अब भी हरा-भरा था। उसी के तले खड़ा होकर उस दिन चम्पा चमेली का प्रेमी इन्तजार करता रहा होगा। अभी मैं सोच ही रहा था कि एकाएक मुझे कदम्ब के आस-पास पायल और

घुँघरुओं की आवाज सुनाई पड़ी। अँधेरे में आँखें गड़ा कर ध्यान से उधर देखने लगा। स्पष्ट रूप से मुझे वहाँ दो काली छायायें खड़ी हुई दिखलायी दीं। सारा शरीर रोमांचित हो उठा। वे दोनों छायायें निश्चित ही चम्पा चमेली और उसके प्रेमी की होंगी - यह समझते देर नहीं लगी मुझे।

मुझे याद नहीं कि मैं कितनी देर तक उन दोनों छायाओं को देखता रहा। कंधे पर परेश बाबू के काँपते हाथ का स्पर्श महसूस हुआ तो ध्यान टूटा। मैंने चौंक कर उनकी ओर देखा। उनका चेहरा भय से सफेद पड़ गया था और वे पत्ते की तरह थर-थर काँप रहे थे।

भर्राये हुये स्वर में मैंने पूछा - 'क्या हुआ, परेश बाबू?' परेश बाबू वैसे ही थर थराते रहे। आँखों में छायी आतंक की छाया और भी अधिक गहरी हो गयी। लड़खड़ाते स्वर में बोले - 'शर्मा... शर्माजी... आपने सुनी वह आवाज... वह हँसी ?' 'कैसी आवाज ? किसकी हँसी ?' स्तब्ध होकर मैंने पूछा। 'आपने नहीं सुना वह सब ?' वैसे ही स्वर में परेश बाबू ने कहा, 'क्या आपको ऐसा नहीं लगा, जैसे खूब जोरों से नूपुर बजाता हुआ कोई फिस्-फिस् हँसता हुआ यहाँ से गुजर गया हो ?'

तरल आग की तरह कोई चीज मेरे गले से होकर नीचे उतर गयी। कुण्ठित होकर मैंने कहा - 'हाँ' मैंने भी सुनी है पायल की आवाज, पर आप कहना क्या चाहते हैं ?"

परेश बाबू कुछ बोल नहीं सके।

मैं फिर दीवानखाने में लौट आया और धम्म से कुर्सी पर बैठ गया। कमरे में अचानक गहरा सन्नाटा छा गया। उसी के साथ मुझे लगा कि जैसे कई छायायें एक साथ दीवानखाने में घूमने लगी हों, जिनकी परछाइयाँ बिल्कुल साफ दीवारों पर पड़ रही थीं। मेरे भीतर न जाने क्या मथने लगा। आँखें फाड़े मैं उन छायाओं को और दीवारों पर पड़ती उनकी परछाइयों को देख रहा था, फिर एकाएक वातावरण बदबू से भर उठा।

परेश बाबू भी बदहवास-से आँखें फाड़े उन परछाइयों को देख रहे थे। अचानक छायायें गायब हो गयीं। दूसरे ही क्षण नूपुरों की मधुर आवाज और घुँघरुओं की झंकार से दीवानखाना गूँजने लगा, फिर अचानक शमादान फर्श पर गिर कर बुझ गया। मुझे समझते देर नहीं लगी कि यह सब प्रेत-लीला है। चिपचिपाहट भरे उस अंधकार में आँखें गड़ा कर मैं देखने की कोशिश कर रहा था, तभी मुझे लगा, मानो नूपुरों और घुँघरुओं के लय पर दो नर-कंकाल नाच-कूद रहे हैं। गहरे अंधकार के बावजूद वे बिल्कुल साफ दिखलायी दे रहे थे। कुछ ही क्षणों के बाद एक विचित्र दृश्य देखने में आया - जब नाचते-कूदते वे दोनों नर-कंकाल आपस में टकराते तो उनमें से लाल-पीली चिनगारियाँ निकलतीं।

लगभग तीन बजे भोर तक यह सब चलता रहा, उसके बाद वे दोनों नर-कंकाल दीवानखाने से निकल कर जीते-जागते इंसानों की तरह चलते हुए कदम्ब के नीचे गये और गायब हो गये।

वे किसके नर-कंकाल थे ? प्रेतों की यह विचित्र लीला किस तथ्य की ओर संकेत कर रही थीं

? इन सब में क्या रहस्य निहित था ? ऐसे और अनेक प्रश्नों के जाल में मेरा मस्तिष्क उलझ गया। उसी स्थिति में कुर्सी पर बैठे ही बैठे न जाने कब मुझको झपकी लग गयी। उसी अर्धनिद्रित अवस्था में देखा- एक युवती मेरे बगल में मुस्कराती हुई खड़ी है। उसके साथ एक युवक भी था। उसका व्यक्तित्व बड़ा रोबीला और आकर्षक था।

युवती ने हँसकर कहा - 'आपने मुझे पहचाना ?'

मैंने ध्यान से उसकी ओर देखा। वह चम्पा चमेली थी और साथ वाला युवक उसका प्रेमी था।

'हाँ, पहचानता हूँ बोलो ! क्या कहना चाहती हो ?'

'मुझे जो कहना था वह पहले ही कह चुकी हूँ आपसे। बस उस घड़ी का इन्तजार है, जब मेरा इस नारकीय प्रेतयोनि से उद्धार होगा। आप ही के द्वारा मेरा उद्धार होगा और शान्ति मिलेगी।'

'इसके लिये मुझे क्या करना चाहिए ?'

चम्पा चमेली कहने लगी, 'वह जो कदम्ब का पेड़ है न, उसी के नीचे मुझे और मेरे प्रेमी को मार कर दफना दिया गया था। वहाँ खुदवाइये तो आपको दो नर-कंकाल मिलेंगे, जिनमें से एक मेरा होगा और दूसरा मेरा प्रेमी लखन सिंह का। कंकालों के साथ आपको एक पोटली में अशर्फियाँ मिलेंगी। उन्हें हाथ मत लगाइयेगा। वे लखन सिंह के हैं। उस रात जब वह मुझे हमेशा के लिये विपिन के चंगुल से मुक्त कराने आया था तो उसके साथ अशर्फियाँ भी थीं। वह मुझे यहाँ से बहुत दूर ले जाना चाहता था, फिर मेरे साथ विवाह कर लेता, पर ऐसा न हो सका'

चम्पा चमेली का गला भर आया। किसी प्रकार अपने को संयत करके वह बोली - 'आप दोनों कंकालों को निकालकर हिन्दू रीति से जला दें और राख को काशी में प्रवाहित कर दें। इसी से मुझे प्रेतयोनि से मुक्ति मिल जायेगी और हमेशा-हमेशा के लिये मेरा उद्धार हो जायेगा।'

'यह सब काम तो तुम और लोगों से भी करा सकती थी।' - मैंने कहा।

'आप ठीक कहते हैं ! किसी से भी करा सकती थी, मगर काशी के बाहर का कोई व्यक्ति मेरी राख या मेरा कंकाल काशी ले जाकर गंगा में प्रवाहित नहीं कर सकता था।'

'क्यों ?'

'इसलिये कि प्रेत की जिस योनि में मैं हूँ, उसके कुछ ऐसे ही नियम हैं। किसी बाहरी व्यक्ति के माध्यम से मैं काशी की सीमा में नहीं प्रवेश कर सकती। आप काशी के हैं इसीलिये मैं आपसे अपने उद्धार की याचना कर रहीं हूँ।'

इसके साथ ही अचानक मेरी नींद टूट गयी। आँखें खुली तो दिन काफी ऊपर चढ़ आया था

। परेश बाबू को बुलाकर मैंने सपने की सारी बातें बतलायीं और कदम्ब के नीचे जमीन खुदवाने की तैयारी में जुट गया।

करीब चार-पाँच फुट खोदते ही दोनों नर-कंकाल मिल गये। एक की उँगली में कीमती अँगूठी थी, जिस पर नाम खुदा हुआ था - चम्पा चमेली। वह अँगूठी उतारकर मैंने जेब में रख ली - न जाने क्यों और किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैंने ऐसा किया था।

कंकालों के नीचे अशर्फियों की पोटली भी मिल गयी। उसमें करीब दो सौ मुगलकालीन अशर्फियाँ थीं। परेश बाबू की नजर से वे छिपी न रह सकीं, सो उनकी आँखें खुशी से फैल गयीं, मगर मैंने उन्हें अशर्फियाँ छूने से मना कर दिया। इस पर वह चिढ़ गये। कहने लगे कि जब दोनों की 'गति' हो जायेगी, तब फिर किस बात का डर... अशर्फियाँ उन्हें मिलनी ही चाहिये। मैंने फिर विशेष विरोध नहीं किया। सोचा- जाने दो, जो होगा, देखा जायेगा। उस समय मुझे भी नहीं मालूम था कि परेश बाबू अपनी मौत को निमंत्रित कर रहे हैं।

मैंने चिता लगवाई और दोनों कंकालों को एक साथ जला दिया। थोड़ी देर बाद वे जलकर राख में बदल गये। मैं इसी दिन दार्जिलिंग मेल से वापस लौटना चाहता था, मगर मेरे स्टेशन पहुँचाने के थोड़ी ही देर बाद परेश बाबू का नौकर घबराया हुआ आया और हाँफता हुआ कहने लगा, 'जल्दी वापस लौट चलिये। परेश बाबू पागलों की तरह चीख-चिल्ला रहे हैं।'

मैं समझ गया - जरूर चम्पा चमेली की आत्मा ने ही कोई उत्पात किया होगा, आखिर लौट पड़ा।

दीवानखाने में प्रवेश करते ही परेश बाबू का चीत्कार सुनाई पड़ा। जैसे कोई उनका गला दबा रहा हो — वह कातर स्वर में चिल्ला रहे थे, 'शर्मा जी... शर्मा जी'

मैं झपट कर कमरे के भीतर पहुँचा। परेश बाबू का सारा शरीर जूड़ी के रोगी जैसा काँप रहा था। वाक्-शक्ति कुण्ठित हो गयी थी और आँखों के सामने जैसे अँधेरा छा गया था। मैंने आशंकित दृष्टि से चारों तरफ देखा तो लगा जैसे मेरे प्राण हिम हो गए हों।

परेश बाबू फर्श पर पड़े छटपटाते हुए जैसे किसी से बचने की कोशिश कर रहे थे। उनकी देह धूल-धूसरित हो गयी थी। चेहरा आतंक से विकृत हो गया था।

'परेश बाबू! परेश बाबू!' भयातुर कण्ठ से मैं चिल्ला पड़ा, ' आप यह क्या कर रहे हैं ?'

परेश बाबू ने निगाह उठाकर मेरी ओर देखा। उफ् ! कैसी दहशत थी उन आँखों में ! फिर वह सिर पटकते हुए चिल्लाने लगे, 'अशर्फी की पोटली कहाँ गयी, शर्मा जी उसे कौन छीन ले गया मुझसे ?'

'अशर्फी की पोटली।' छाती पर जैसे किसी ने घूँसा-सा मारा। परेश बाबू अस्पष्ट स्वर में गों-गों किये जा रहे थे।

उसी समय पैशाचिक चमत्कार-सा हुआ। न जाने किधर से झनझना कर सारी अशर्फियाँ

फर्श पर गिर पड़ीं और देखते ही देखते कोयले के शक्ल में बदल गयीं। मुझे लगा, जैसे पागल हो जाऊँगा। विह्नल स्वर में चिल्ला कर मैंने आवाज दी, 'परेश बाबू !'

मगर परेश बाबू जैसे मेरा स्वर सुन नहीं पाये। दीर्घ नि:श्वास के साथ क्षीण स्वर में उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा - 'देखिये, वह खड़ी है चम्पा चमेली, देखिये, देखिये- उसकी नागिन जैसी आँखें कैसी चमक रही हैं' और अचानक उनका सिर एक ओर लटक गया। उनके चेहरे पर मृत्यु की शीतल छाया लहरा उठी।

आखिर चम्पा चमेली, परेश बाबू को भी ले गयी। काश! उन्होंने अशर्फियों का मोह न किया होता और मेरी बात मान गये होते - अस्तु।

चम्पा चमेली और उसके प्रेमी लखन सिंह की आत्मा तो प्रेतयोनि से मुक्त हो गयीं मगर ध्वस्त परिवेश में खड़ी अतीत की यादों को दुहराती, विपिन राय चौधरी की उस हवेली की जीर्ण-शीर्ण दीवारों पर सिर पटकती हुई परेश बाबू की आत्मा आज भी वहीं भटक रही है। दार्जिलिंग शहर के बाहर सिलीगुड़ी रोड के किनारे सुनसान इलाके में खड़ी उस हवेली की ओर लोग-बाग दिन में भी जाने से कतराते हैं। अब तो वह हवेली 'भुतही कोठी' के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है।

इन सारी घटनाओं को घटे एक लम्बा अरसा गुजर चुका है, मगर चम्पा चमेली की वह कीमती अँगूठी आज भी मेरे पास पड़ी है। मैं उसे बड़े हिफाजत से रखे हुये हूँ। मुझे विश्वास है कि एक न एक दिन उसे लेने के लिये चम्पा चमेली जरूर आयेगी, क्योंकि उसने एक रात मुझसे सपने में कहा था - 'पण्डित जी ! उस अँगूठी को अपने पास रखने के लिए मैंने ही आपको प्रेरणा दी थी। उसे हिफाजत से रखे रहिये, जब कभी फिर जन्म लूँगी तो आकर अपनी अँगूठी वापस ले जाऊँगी।'

मैं जब भी वह अँगूठी देखता हूँ, चम्पा चमेली के वे वाक्य याद हो आते हैं और उसी के साथ मानस-पटल पर उभर आता है चम्पा चमेली का अपरूप रूप भी।

अध्याय ५
यात्रा प्रेत लोक की

प्रेतों की मति-गति और क्रियाकलापों को गहराई से समझने के लिये, परामानसिक जगत का अध्ययन आवश्यक है। सन् १९५० में मैंने परामानसिक जगत का अध्ययन करना शुरू किया और शीघ्र ही मुझे कुछ ऐसे विचित्र अनुभव हुए, जिससे मेरी आत्मा चमत्कृत हो उठी।

हमसे प्राय: हर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की रहस्यमय बातों का जीवन में अनुभव करता है। कोई कहीं जाने पर महसूस करता है कि वह वहाँ पहले भी जा चुका है। सब कुछ जाना-पहचाना सा लग रहा है। कोई सपनों में भविष्य जान लेता है। किसी को भूत-प्रेत दिखलाई देते हैं, तो किसी को जन्मपत्री की भविष्यवाणी सही निकलती है। पर यह

सब होता कैसे ?

इसी प्रश्न से विज्ञान का जन्म होता है। हमारा युग विज्ञान का युग है। आज मनुष्य समूची सृष्टि और ब्रह्माण्ड की खोज में लगा हुआ है तथा उसने प्रकृति के मूल तत्व और उनकी शक्तियों की खोज की है।

विज्ञान के पीछे पागल यह मनुष्य अपने आप में स्वयं एक आश्चर्य है। उसका सामाजिक व्यवहार, उसकी शारीरिक क्रियायें और इन सबसे बढ़कर उसका दिमाग इस सृष्टि की सबसे बढ़कर अधिक अजीबो-गरीब चीज है। संसार के सभी धर्मों ने इसकी रचना और कार्य-प्रणाली पर विस्तार से रोशनी डाली है। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी खोजने की कोशिश की है कि मनुष्य के मस्तिष्क के पीछे संचालक शक्ति कौन सी है और उन्होंने उसे एक नाम दिया है चेतना तथा यह भी कहा है कि मनुष्य की चेतना उसके मस्तिष्क में बन्द एकाकी चेतना नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैली हुयी विराट चेतना का अंग है और हर अवस्था में उससे संबंध बनाये रखती है। यही कारण है कि मनुष्यों के अलावा अन्य प्राणियों में तथा सम्पूर्ण जड़ चेतन जगत में व्याप्त चेतनायें एक दूसरे के साथ जुड़ी रहती हैं, एक दूसरे पर प्रभाव डालती हैं और प्रभावित होती हैं।

रूस के लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के प्रो० लियोनिद ने एक अनूठा प्रयोग किया। उन्होंने मीलों दूर एक प्रयोगशाला में कुछ अनुसंधानकर्ताओं को परामानसिक संचार द्वारा सम्मोहित कर दिया और उनसे उनका प्रयोग छुड़वा कर उन्हें किसी अन्य कार्य में लगा दिया। वे सब अनजाने में ही विवश से लियोनिद के आदेशों का पालन करने लगे। उन्हें यह भान तक नहीं हुआ कि वे किसी अन्य व्यक्ति की शक्ति के अधीन हो गये हैं। इस वैज्ञानिक प्रयोग से यह बात सिद्ध होती है कि एक चेतना दूसरी चेतनाओं को किसी भी भौतिक साधन अथवा माध्यम के बिना संकल्प मात्र से प्रभावित कर सकती है।

मनुष्य की इसी चेतना को आत्मा, सोल, रूह, अथवा परामानसिक चेतना और ब्रह्माण्ड की विराट् चेतना को परम चेतना, अति चेतना, परमात्मा, गॉड या अल्लाह कहा गया है। तांत्रिक लोग परामानसिक चेतना को 'पराशक्ति' और विराट् चेतना अथवा परम चेतना को 'परमशिव' की संज्ञा देते हैं।

ईश्वर को भले ही वैज्ञानिक स्वीकार न करें, लेकिन ब्रह्माण्ड और उसमे फैली हुयी एक ब्रह्माण्डीय ऊर्जा अथवा तत्व की धारणा वैज्ञानिकों ने अवश्य स्वीकार कर ली हैं। उनके सामने इस ब्रह्माण्ड की अनेक गुत्थियों में से एक गुत्थी यह भी है कि मनुष्य की चेतना का मूल स्वरूप क्या है। उसका ब्रह्माण्डीय चेतना से क्या संबंध है ? एक और भी बड़ा प्रश्न है कि क्या प्रकट या व्यक्त चेतना से परे मनुष्य किसी अप्रकट अथवा अव्यक्त चेतना का भी स्वामी है, जो इस पदार्थ जगत के नियमों से ऊपर है तथा जो मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों से परे कहीं अधिक सूक्ष्म, पराभौतिक-शक्तियाँ प्रदान करती हैं जिनके द्वारा वह इस ब्रह्माण्ड में किसी भी स्थान काल के रहस्यों को अपनी जगह बैठा-बैठा ही जान सकता है तथा उसका वर्णन भी कर सकता है ?

वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि धर्म जिसे पराचेतना कहता है, यह सत्य है तथा मनुष्य का जागृत मन इस विराट् मन का एक छोटा सा भाग हैं, जिसका एक बड़ा अंश एक रहस्यमय आवरण के पीछे छिपा रहता है और वह उस आवरण के पीछे से हमारे चेतन मन को कठपुतली की तरह नचाता रहता है। वैज्ञानिकों ने उस उपचेतन मन को परामन अथवा 'परासाइकिक तत्व' कहा है।

मनुष्य की जीवितावस्था में - जीवन का तीन भाग जागृत मन से प्रभावित रहता है और चौथा भाग उपचेतन अथवा परामन के अधीन रहता है। मृत्यु के अनन्तर जागृत मन का अस्तित्व तो समाप्त हो जाता है, लेकिन उसका मौलिक तत्व, जिसमें वासना, संस्कार और तमाम भौतिक वृत्तियाँ रहती हैं, उस उपचेतन मन में चला जाता है। यही कारण है कि मरने के बाद उपचेतन मन की शक्ति और अधिक बढ़ जाती है। इतना ही नहीं, विराट मन अथवा पराचेतना से भी उसका सम्पर्क और अधिक घनिष्ट हो जाता है। परामनोविज्ञान का यह अत्यन्त गम्भीर विषय है, जिस पर प्रेतविद्या के सारे सिद्धान्त निर्भर हैं।

प्रत्येक जीवित मनुष्य का मरने के बाद कुछ समय के लिये प्रेत होना निश्चित है, जिसे जीवात्मा कहा जाता है, उसके तीन योग रूप हैं -

१. मानवात्मा - जब जीवात्मा मानव शरीर यानी पार्थिव शरीर में रहती है, तो उसे 'मानवात्मा' कहते हैं।

२. प्रेतात्मा - मरने के बाद जब जीवात्मा वासनामय शरीर में रहती है, तो उसे 'प्रेतात्मा' कहते हैं।

३. सूक्ष्मात्मा - इसी प्रकार जब वह सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित सूक्ष्म शरीर में रहती है, तो उसे 'सूक्ष्मात्मा' कहते हैं।

इस प्रकार आत्मा की तीन अवस्थायें और तीन भोग शरीर हैं।

वासनामय शरीरधारी प्रेतात्माओं का जो जगत है, उसे हम वासना लोक या प्रेत लोक कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि प्रेत लोक सुदूर कहीं अन्तरिक्ष में विद्यमान है, मगर नहीं, काफी छान-बीन करने के बाद इस संबंध में जो तथ्य सामने आये हैं, उसके अनुसार, प्रेत लोक, अन्तरिक्ष में नहीं बल्कि हमारे इसी धरती में दूध में पानी की तरह मिला हुआ है।

वासना दो प्रकार की होती है, अच्छी भी और बुरी भी। इस दृष्टि से प्रेत लोक को भी हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। अच्छी वासनाओं के भाग को पितृ लोक और बुरी वासनाओं के भाग को प्रेत लोक कहा गया है। पितृ लोक के ऊपर सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं का सूक्ष्म लोक है। उसके बाद मन: लोक है, जिसे देव लोक भी कहा जाता है। यह मन: लोक नक्षत्र मण्डलों की सीमा और गुरुत्वाकर्षण के बाहर सुदूर अन्तरिक्ष में है। उसमें निवास करने वाली देवात्माओं में मन: शक्ति और विचार शक्ति अति प्रबल होती हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मात्माओं में इच्छा शक्ति और प्राण शक्ति प्रबल होती हैं। लेकिन जहाँ तक

प्रेतात्माओं का प्रश्न है, उनमें सिर्फ वासना की प्रबलता रहती है। वासना की शक्ति ही उनकी स्व-शक्ति है।

परामानसिक जगत के विद्वानों का कहना है कि देवात्माओं, सूक्ष्मात्माओं, प्रेतात्माओं में क्रमश: जो मनः शक्ति, विचार शक्ति, इच्छा शक्ति या प्राण शक्ति विद्यमान हैं, वे सभी शक्तियाँ एक साथ मानव शरीर में हैं। इसीलिये मनुष्य को और मानव शरीर को श्रेष्ठ माना गया है।

मस्तिष्क के तीन भाग हैं। वे तीनों भाग, मन: शक्ति, विचार शक्ति और इच्छा शक्ति के केन्द्र हैं। प्राण शक्ति का केन्द्र है नाभि। उन शक्तियों का संबंध प्राण शक्ति से जहाँ स्थापित होता हैं :- वह है हृदय।

विशेष सूक्ष्म शरीर **:** अस्तित्व का प्रश्न

मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व में विश्वास करने वाले लोगों का मति विभ्रम हो गया है — मन की रहस्यमयी शक्तियों के बारे में हमें अभी बहुत कुछ जानना शेष है — शीघ्र ही वह दिन आने वाला है - जब हम मानसिक शक्ति द्वारा सभी पदार्थों का संघटन या विघटन करना सीख जायेंगे — और शरीर का इच्छानुसार स्वरूप परिवर्तन सुगमतापूर्वक कर सकेंगे — मन को पदार्थों के क्षेत्र में आयाती अनाहुत न मानकर उसे पदार्थ का नियन्त्रक और सृजन मानने वाले भारतीय योगी आज भी ऐसा करके दिखा सकते हैं — डा० यू० ई० वर्नाड (प्रख्यात भौतिक वैज्ञानिक)

जैसे, मानव शरीर इन तमाम शक्तियों का केन्द्र है, उसी प्रकार मानव शरीर में मनः शरीर, सूक्ष्म शरीर और वासना शरीर का भी बीज रूप में अस्तित्व है। इस तथ्य को वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर लिया है। इतना ही नहीं, वे इस संबंध में खोज और अनुसंधान भी कर रहे हैं। भौतिक शरीर का निर्माण पंच भौतिक तत्वों के अणुओं के संगठन से होता है, जबकि सूक्ष्म शरीर की रचना सूक्ष्म भौतिक तत्वों के परमाणुओं के संगठन अथवा संयोग से होती है। इसलिये सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीर के सर्वाधिक निकट है। योगी लोग मन: शरीर और वासना शरीर से अधिक महत्त्व इसीलिये सूक्ष्म शरीर को देते हैं कि वे भौतिक शरीर की भाँति उसका उपयोग इच्छानुसार कर सकते हैं।

सूक्ष्म शरीर के संबंध में वैज्ञानिकों ने काफी प्रगति की है। ३०-४० वर्ष पूर्व सो. रूस के एक इलेक्ट्रानिक विशेषज्ञ सेमयोन किलियान ने अपनी वैज्ञानिक पत्नी बेलेण्टिना के सहयोग से फोटोग्राफी की एक विधि का आविष्कार किया था। उस विशेष विधि द्वारा सजीव अंगियों, प्राणियों और पौधों के सान्निध्य में होने वाले सूक्ष्म विद्युत संबंधी कार्य-कलापों का सफल छायांकन किया जा सकता है।

अपने प्रयोग में वैज्ञानिक दम्पति ने अपनी विशेष विधि द्वारा एक मानव शरीर के अत्यन्त निकट से छाया चित्र खींचे। इन छाया चित्रों में गर्दन, हृदय, उदर आदि अवयवों पर विभिन्न रंगों के सूक्ष्म धब्बे दिखाई दिये, जो इन अवयवों से विसर्जित होने वली विद्युत ऊर्जाओं के द्योतक थे और उनके सामर्थ्य को दर्शाते थे। ये असाधारण छाया चित्र गुप्त

विद्याविदों (आंकल्टिस्को) के इस सिद्धान्त की पुष्टि करते प्रतीत होते थे कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं। पहला प्राकृतिक(भौतिक) शरीर और, दूसरा सूक्ष्म शरीर जिसकी सब विशेषताएँ प्राकृतिक शरीर(पार्थिव शरीर) जैसी होती, पर जो दिखलाई नहीं पड़ता। वे वैज्ञानिकों के अनुसार सूक्ष्म शरीर किसी ऐसे सूक्ष्मीकृत पदार्थ के बने होते हैं, जिसके इलेक्ट्रान, पार्थिव शरीर के इलेक्ट्रानों की अपेक्षा अधिक तीव्रगति से चलायमान होते हैं। उनके अनुसार सूक्ष्म शरीर अस्थायी तौर पर भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

यहाँ एक बार फिर समझ लेना चाहिए कि पराचेतना 'आत्मा' है और परम चेतना 'परमात्मा' है। इस आधार पर मन के दो रूप हैं - चेतन और अचेतन। चेतन मन को ही जागृत मन कहते हैं। अचेतन मन, पराचेतना (आत्मा) का एक महत्वपूर्ण अंश है। इसी प्रकार चेतन मन परम चेतना (परमात्मा) का एक मुख्य अंश है —

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, इसी 'चेतन मन' का एक बहुत बड़ा अंश किसी अज्ञात रहस्यमय आवरण में छिपा है। चेतन मन के इस छिपे हुये भाग को 'उपचेतन मन' कहते हैं और यह उपचेतन मन का केन्द्र मस्तिष्क है। मस्तिष्क के जिस भाग में वह केन्द्र है, उसको 'मेडुला आब्लोन्गटा' कहते हैं। 'मेडुला आब्लोन्गटा' का आकार मुर्गी के अण्डे के समान है और उसके भीतर एक अज्ञात तरल पदार्थ भरा हुआ है। जिसका रहस्य आज तक वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आ सका है।

उसी अज्ञात तरल पदार्थ में ज्ञान तन्तुओं का समूह तैरता रहता है। वे ज्ञान तन्तुयें बाल से भी अधिक पतले हैं और छल्ले की तरह आपस में गुथे हुये हैं। उनका एक सिरा मेरुदण्ड के भीतर से आने वाली सुषुम्ना नाड़ी से मिला है और दूसरा सिरा ब्रह्मरन्ध्र से मिला है। सिर पर जहाँ शिखा (चुटिया) रखने की प्रथा है, वहीं सुई की नोक के बराबर छेद है। उसी को ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं।

मेडुला आब्लोन्गटा के रहस्यमय तरल पदार्थ के भीतर तैरते हुए ज्ञान तन्तु समूह में उपचेतन मन और उसकी शक्ति का अस्तित्व है जिसे धनन्जय प्राण संचालित करता है, जिसे वैज्ञानिक 'ईथर' कहते हैं।

धनन्जय प्राण द्वारा संचालित, ब्रह्मरन्ध्र द्वारा एवं उपचेतन मन का सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड और उसमें विद्यमान समस्त लोक-लोकांतरों और जगतों से अदृश्य संबंध है। इसी उपचेतन मन की रहस्यमयी शक्ति के माध्यम से ग्रह-नक्षत्रों और लोक-लोकांतरों में निवास करने वाले प्राणी अपने विचारों, भावनाओं, इच्छाओं और संकल्पमय उद्देश्यों को मानव मस्तिष्क में संप्रेषित करते हैं, जो बाद में मानवीय विचारों, भावनाओं, इच्छाओं आदि में परिवर्तित होकर भौतिक रूप और आकार ग्रहण करते हैं।

उपचेतन मन दो प्रकार का कार्य करता है, जहाँ वह एक ओर अदृश्य लोकों, अदृश्य प्राणियों के विचारों, इच्छाओं आदि को ग्रहण करता है, वहीं दूसरी ओर मानवीय विचारों, भावनाओं, इच्छाओं आदि को प्रसारित भी करता है। .

ग्रहण और प्रसारण की ये दोनों क्रियायें उस समय और अधिक बढ़ जाती हैं, जबकि शरीर रक्त-संचार अपने व्यवस्थित ढंग से होता रहता है, प्राणों की गति समान रहती है और शरीर पूर्ण स्वस्थ रहता है।

जैसा कि ऊपर प्रसंगवश बतलाया गया है कि परामानसिक जगत के अनुसार आत्माओं के तीन प्रकार हैं - दिव्यात्मा, देवात्मा और मनुष्यात्मा। मनुष्यात्मा के तीन भेद हैं - जीवात्मा, सूक्ष्मात्मा और प्रेतात्मा। प्रस्तुत कथा-प्रसंग में मैं सबसे पहले प्रेतात्माओं के विषय में चर्चा करूँगा।

प्रेतात्मायें जिस वातावरण में रहती हैं, उसे वासना लोक या प्रेत लोक कहा जाता है। मनुष्य का जन्म वासना के ही कारण होता है। उसके शरीर की रचना भी वासना से ही होती है और पूरा जीवन वह प्राय: वासना में ही डूबा रहता है। इसलिये उसके 'उपचेतन मन' का संबंध बराबर वासना लोक से बना रहता है।

वासना लोक में प्रेतात्मायें अपने शरीर की रचना स्वयं करती हैं जिसे छाया शरीर भी कहा जाता है। जैसे एक चित्रकार अथवा मूर्तिकार किसी प्राणी का चित्र या प्रतिमा हूबहू बना लेता है, उसी प्रकार प्रेतात्मायें भी अपने पूर्व पार्थिव शरीर के आधार पर वासना लोक में अपना छाया शरीर बना लिया करती हैं। जैसा कि बतलाया गया है कि मृत्यु के बाद कुछ समय के लिये सूक्ष्म शरीर न मिलने की स्थिति में सभी लोगों को प्रेतयोनि स्वीकार करनी पड़ती है। प्रेत शरीर एक प्रकार से स्थूल और सूक्ष्म शरीर के बीच 'नाव' का काम करता है।

इसके अलावा वे लोग भी प्रेतयोनि में जाते हैं, जो आयु रहते हुये भी किसी रोग या व्याधि के कारण मर जाते हैं। ऐसे लोग, तब तक प्रेत लोक में रहते हैं, जब तक कि उनकी शेष आयु समाप्त नहीं हो जाती। यदि जीवन में उनकी आयु दस वर्ष शेष रह गयी है, तो उसका चौगुना यानी चालीस वर्ष वे प्रेत लोक में रहेंगे।

इसी प्रकार जो लोग किसी कारणवश स्वयं आत्म-हत्या कर मृत्यु को गले लगा लेते हैं, वे भी प्रेत लोक जाते हैं और प्रेत शरीर धारण करते हैं। इस प्रकार की प्रेतात्मायें अपने जीवन की शेष आयु का आठ गुना अधिक समय तक प्रेत लोक में रहती हैं।

ऐसे लोग भी प्रेत लोक की यात्रा करते हैं, जिनकी किसी कारणवश हत्या कर दी गयी है अथवा किसी दुर्घटना में मरे हैं। वे लोग अपनी शेष आयु का सोलह गुना अधिक समय प्रेत लोक में व्यतीत करते हैं।

पहले प्रकार के लोग, जो नये शरीर की प्राप्ति की प्रतीक्षा के लिये प्रेत लोक में हैं, उन्हें अधिक कष्टों का सामना नहीं करना पड़ता। उनकी दिनचर्या में भी कोई अन्तर नहीं होता। वे जैसे स्थूल शरीर और स्थूल जगत में रहा करते थे, वैसे ही प्रेत लोक में भी जीवन व्यतीत करते हैं। अपनी वासना के अनुसार अपने वातावरण की सृष्टि कर लेते हैं। साहित्यिक अथवा लेखक, अपने अनुकूल वातावरण का निर्माण कर साहित्य रचना में बराबर डूबा रहेगा। यदि कोई कलाकार अथवा संगीतकार है, तो उसी के अनुकूल

वातावरण की सृष्टि कर अपनी कला और संगीत की साधना करता रहेगा। उपचेतन मन के द्वारा जीवित व्यक्ति का इन सभी प्रकार की प्रेतात्माओं से बराबर सम्पर्क बने रहने के कारण उनके विचारों और भावनाओं का प्रभाव उपचेतन मन पर हर क्षण पड़ता रहता है, किन्तु वे चेतन की परिधि में आने के समय तक काफी क्षीण व दुर्बल हो जाती हैं। प्रेतात्माओं के वे दो विचार और भावनाएँ पूर्ण रूप से चेतन मन में प्रकट हुआ करती हैं, जिनमें वासना का वेग अतिप्रबल होता है। इस प्रकार वे वासनावेग युक्त विचारों, भावनाओं अथवा इच्छाओं को मानसिक जगत में प्रकाशित होते ही मनुष्य तुरन्त उसी के अनुसार काम जाने-अनजाने में कर बैठता है। बाद में मनुष्य स्वयं यह सोच कर आश्चर्य-चकित हो उठता है कि अचानक या अपने आप उससे यह काम हो कैसे गया ? प्रेतात्मायें अच्छी हों, या बुरी, मनुष्य को चेतन-अचेतन या उपचेतन मन पर इसी प्रकार अपना प्रभाव डाल कर अपनी कामना या वासना की पूर्ति कर लिया करती हैं। साहित्यकार, संगीतकार, कलाकार और दार्शनिक, विद्वान्, बुद्धिजीवियों की प्रेतात्मायें, जो अगले शरीर की प्रतीक्षा में हैं, अपने गुण, कला, सिद्धान्त एवं विचारों से संबंधित जीवित व्यक्तियों को, उपचेतन एवं चेतन मन के द्वारा बराबर सहायता करती रहती हैं। उनको उन्नति की दिशा में बराबर प्रेरणा देती रहती हैं। इससे उन्हें सन्तोष एवं शान्ति मिलती है।

इसी प्रकार अन्य प्रकार की अथवा निम्न कोटि की प्रेतात्मायें भी करती हैं। जीवन काल में मनुष्य की जो वासना सबसे अधिक प्रबल और स्थायी होती है - वही वासना मरने के बाद भी प्रबल और स्थायी रहती है और उसी वासना की तृप्ति के लिये प्रेतात्मा बराबर प्रयत्न करती रहती है प्रेतात्माओं की अपनी स्वशक्ति है। प्रेत शरीर केवल भोग शरीर है। मानव शरीर भोग और कर्ममय है। भौतिक शरीर के द्वारा भोग भी किया जाता है और कर्म भी। इसीलिये प्रेतात्माओं जैसी भोग शरीरधारी आत्मायें मनुष्य के शरीर को माध्यम बना कर भोग भोगती हैं और तृप्ति का अनुभव करती हैं। जैसे कोई व्यक्ति शराबी रहा है जीवन में। मरने के बाद पार्थिव शरीर के अभाव में शराब तो पी नहीं सकता - इसलिये जो व्यक्ति शराब पीता होगा उसके अचेतन मन में प्रभाव डालकर उसकी प्रेतात्मा उसे प्रेरित करेगी और जब वह शराब पीने लगेगा, तो वह प्रेतात्मा उस व्यक्ति के शराब के माध्यम से मदिरा के तत्वों और गुणों को ग्रहण कर तृप्ति का अनुभव करेगी। मगर इसका जरा सा भी पता उस शराब पीने वाले व्यक्ति को न लगेगा। लेकिन, हाँ ! उसे शराब का नशा न होगा। इसके लिये वह आश्चर्य भले ही कर सकता है।

इसी प्रकार जो खूनी और डकैत आत्मायें होती हैं वे जीवित व्यक्तियों पर प्रभाव डाल कर उससे खून, कत्ल, और चोरी करवा देती हैं और उसके परिणामों में सुख का अनुभव करती हैं।

इस प्रसंग में यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि आवेशवश और सहसा-बिना किसी पूर्वयोजना अथवा उद्देश्य के कोई भी काम - यदि वह अच्छा हो या बुरा अन-चाहे में किसी व्यक्ति के द्वारा हो जाता है, तो उसकी पृष्ठभूमि में इसी प्रकार की अतृप्त प्रेतात्माओं की वासनायें ही रहती हैं।

जीवन काल में जिस किसी व्यक्ति को कोई अच्छी-बुरी आदत नहीं रहीं है और एकाएक लग जाती है, तो उसके लिये भी प्रेतात्माओं की अदृश्य प्रेरणा ही समझनी चाहिये। एकाएक एक चोर व्यक्ति साधु बन जाता है। कोई अच्छे स्वभाव व विचारों वाला व्यक्ति बन जाता है। कोई-कोई व्यक्ति पूरे जीवन अच्छे और भलाई के काम करते हैं, लेकिन अचानक उनके भी स्वभाव और विचारों में परिवर्तन हो जाता है। इन सबका क्या रहस्य है ?

मैंने प्रत्यक्ष देखा है और अनुभव भी किया है कि जब कभी कोई व्यक्ति किसी विषय के संबंध में गहरायी से विचार करता है अथवा कोई गम्भीर चिन्तन-मनन करता है तो, उस व्यक्ति की भावनाओं के अनुकूल अनेक प्रेतात्मायें उसके चारों ओर अदृश्य रूप से चक्कर काटने लगती हैं। इसी प्रकार जहाँ कोई दुर्घटना होती है, सामूहिक मृत्यु होती है जहाँ कोई व्यक्ति मरणासत्र अवस्था में रहता है। वहाँ उस स्थान पर प्रेतात्मायें सामूहिक रूप से चक्कर काटने लगती हैं। जहाँ पति-पत्नी संभोगरत रहते हैं अथवा जहाँ बच्चा पैदा होने वाला होता है - वहाँ भी प्रेतात्मायें मँडराने लगती हैं।

जहाँ जिस स्थान पर भयंकर दुर्घटना या सामूहिक मृत्यु होने वाली होती हैं - वहाँ उस स्थान पर पहले से ही प्रेतात्मायें उपस्थित हो जाया करती हैं। कभी-कभी तो यह देखने में आता है कि प्रेतात्मायें स्वयं दुर्घटनाओं और सामूहिक मौतों का आयोजन करती हैं मगर ऐसा निकृष्ट आत्मायें ही करती हैं। इससे उनको सुख और आनन्द मिलता है। इस प्रकार जो लोग मरते हैं - उन्हें वे प्रेतात्मायें अपने समाज में मिला लेती हैं।

मरणासत्र व्यक्ति को भी काफी परेशान करती हैं, प्रेतात्मायें। मरने वाला व्यक्ति उन्हें देखकर यह समझता है कि वे यम के दूत हैं। कभी-कभी प्रेतात्मायें, तुरन्त मरे हुए व्यक्ति के शव में भी प्रवेश कर जाती हैं - और हड़कम्प मचाती हैं। इसीलिए परिजन लोग शव के समीप आग रखते हैं, दीप जलाते हैं और शव को अकेला भी नहीं छोड़ते।

पति-पत्नी के संभोग के समय में भी कभी-कदा मौका पाकर उनके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं प्रेतात्मायें और रति का आनन्द लेती हैं। ऐसा भी होता है कि उस समय गर्भ में भी चली जाती हैं। मगर माता-पिता के संस्कार व कर्म के तारतम्य न होने के कारण गर्भस्थ शिशु के शरीर के साथ बाहर निकल आती हैं। इसी अवस्था को गर्भपात कहते हैं। गर्भपात का प्राय: यही कारण होता है।

वास्तव में प्रेतों का जीवन अत्यन्त कष्टमय जीवन है। पार्थिव शरीर के अभाव में वासना वेग कारण असीम यातना सहनी पड़ती है, उन्हें। यही 'नर्क' है। प्रेत लोक अंधकारमय है। 'न' यानी नहीं 'अर्क' अर्थात् सूर्य। जहाँ सूर्य अथवा उसका प्रकाश नहीं है। वही 'नर्क' है। जैसे चन्द्रमा पर पन्द्रह दिन रात्रि और पन्द्रह दिन प्रकाश रहता है - उसी प्रकार वासना लोक यानी प्रेत लोक में साल में ३५० दिन अंधकार रहता है और १५ दिन सूर्य का प्रकाश रहता है। उसी प्रकाशमय दिन को पितृपक्ष कहा जाता है। पितृपक्ष वास्तव में प्रेतात्माओं का सबेरा है।

महाकवि रविन्द्रनाथ टैगोर के घर के लोग एक बार प्लेनचिट पर प्रेतात्माओं को बुला कर बातचीत कर रहे थे — उनकी बात हो रही थी - उन्हीं के एक पड़ोसी से, जिनकी मृत्यु हो चुकी थी और जो काफी मसखरे स्वभाव के थे — लोगों ने उनसे पूछा - हम लोगों को बतलाइये कि इस लोक में और उस लोक में क्या अन्तर हैं ? उन मृतक महाशय ने अपने पूर्वस्वभाव के अनुसार ही उत्तर दिया - बहुत होशियार हो तुम लोग ! जो बात मैं मर कर जान सका, तुम उसे जीते रह कर ही जान लेना चाहते हो ?

देवताओं में भाव प्रधान है। पितरों में मंत्र प्रधान है। मनुष्य में कर्म प्रधान है। उसी प्रकार प्रेतों में वासना की प्रधानता है। प्रेतात्माओं के नाम पर दी गयी वस्तुएँ भौतिक दृष्टि से भले ही न मिलती हों, मगर अपने नाम से किसी व्यक्ति को वह वस्तु देने मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं - यही उनकी तृप्ति है। यहि कोई व्यक्ति जीवन काल में मिठाई अधिक खाता रहा हो और मरने के बाद भी उसके सगे-संबंधी उसके नाम पर मिठाई खिलाते हैं, तो उसकी प्रेतात्मा प्रसन्न होती है और वह खाने वाले व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर मिठाई के तत्वों और गुणों को- जिनकी केवल अनुभूति मात्र की जा सकती है - ग्रहण कर लेती है। यही उसकी तृप्ति और सन्तोष है।

ऊपर प्रसंगवश ब्रह्मरन्ध्र की चर्चा की गयी है। वह जहाँ एक ओर 'उपचेतन मन' का गुप्त केन्द्र है वहीं उसका एक भाग परामानसिक चेतना का भी रहस्यमय केन्द्र है।

प्रेतात्मा, सूक्ष्मात्मा और जीवात्मा को शरीर में प्रवेश करने का एकमात्र मार्ग ब्रह्मरन्ध्र ही है। इसके अलावा एक और मार्ग है - और वह है नाभि।

जिस किसी व्यक्ति से प्रेतात्माओं की वासना, भावना और इच्छा मिल गयी, तुरन्त वे ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से उसके शरीर में प्रवेश कर जाती है। इसी को प्रेत बाधा कहते हैं।

यदि किसी व्यक्ति का किसी प्रेतात्मा से पूर्वजन्म का संबंध है, तो प्रेतात्मा उसे देखते ही अपनी अच्छाई-बुराई का बदला लेने के लिये उसके शरीर में प्रवेश कर जायेगी। यह दूसरे प्रकार की प्रेत बाधा समझी जाती है।

रूप, सौन्दर्य, आदि को महत्त्व देने वाली प्रेतात्मायें अथवा विलासपूर्ण जीवन-यापन की हुयी प्रेतात्मायें जहाँ जिस स्त्री या पुरुष में अपने अनुरूप रूप, सौंन्दर्य और विलासिता देखती हैं - उस स्त्री या पुरुष के शरीर में प्रवेश कर उन सबका उपभोग करने लग जाती हैं। यह तीसरे प्रकार की प्रेत बाधा है।

जीवन काल में जिस स्त्री या पुरुष से सर्वाधिक सहानुभूति, प्रेम, अपनत्व और सहायता मिलनी होती है - प्रेतात्मायें उसकी ओर बराबर आकर्षित रहती हैं। अदृश्य रूप से उसकी सभी प्रकार की सहायता करती हैं। कभी-कभी उसके शरीर में प्रवेश कर अपनी किसी वासना की पूर्ति भी करती हैं। यह चौथे प्रकार की बाधा है।

इसी प्रकार जीवन काल में जिस स्त्री या पुरुष से कपट, तकलीफ, यातना, यंत्रणा और मानसिक क्लेश मिला होता है और मिला होता है धोखा - प्रेतात्मायें उससे बदला लेना

कभी नहीं भूलती। यह पाँचवें प्रकार की प्रेत बाधा है।

इनके अलावा अनेक कारण होते हैं प्रेत बाधा के, जिनकी चर्चा स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं —

प्रेतात्मायें सबसे पहले उपचेतन मन पर आक्रमण करती हैं। इस अवस्था में व्यक्ति की आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन 'मन' की स्थिति विचित्र हो जाती है। व्यक्ति हमेशा अपने आप में खोया हुआ और डूबा हुआ-सा रहता है। वह क्या बोल रहा है ? क्या कर रहा है ? क्या सोच रहा है ? इन सबका उसे जरा सा भी ख्याल नहीं रहता। उसकी अर्धचेतन स्थिति रहती है। मति-गति भी अर्धविक्षिप्तों जैसी रहती है, उस व्यक्ति की। उसे नींद बहुत कम आती है। यदि कभी-कदा नींद आ भी गयी, तो बड़े भयंकर स्वप्न देखता है। मोटा-ताजा, साँवले रंग का आदमी, आग, पानी, खून, कीचड़ आदि के अधिकतर सपने दिखलायी पड़ते हैं। बार-बार रोमांच का होना, अँधेरे में डर लगना एकान्त में अधिक रहना, शरीर से दुर्गन्ध निकलना, उँगलियों के नखों का पीला पड़ जाना, आत्म-हत्या करने का प्रयास करना आदि लक्षण भी इसी अवस्था के अन्तर्गत हैं।

प्रेतात्मायें जब उपचेतन मन से चेतन मन को प्रभावित करती हैं - तो उस समय व्यक्ति को मानसिक यंत्रणा के साथ-साथ शारीरिक यंत्रणा भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब चेतन मन की सीमा को लाँघकर प्रेतात्मायें व्यक्ति की आत्मा पर आक्रमण करती हैं, तो चेतन मन, अचेतन अवस्था में बदल जाता है। परामनोविज्ञान इसी को मन की जड़ावस्था या मूढ़ावस्था कहता है। इस प्रकार मन की अचेतन स्थिति में उपचेतन मन अधिक सक्रिय और शक्तिशाली हो उठता है। मगर दूसरी ओर आत्मा प्रेतात्मा से प्रभावित होकर क्षीण होने लगती है। प्रेत बाधा की इस भयंकर अवस्था में व्यक्ति को जरा-सा भी ज्ञान नहीं रहता। बाह्य चेतना के अलावा उसकी बाह्य प्रज्ञा भी लुप्त हो जाती है। किन्तु उपचेतन मन के सक्रिय रहने के फलस्वरूप उसके मुँह से चमत्कारपूर्ण - भूत, भविष्य और वर्तमान काल से संबंधित बातें भी निकलती हैं। क्योंकि उसके लिए अन्त: प्रज्ञा अथवा विराट् चेतना का द्वार खुल जाता है। जितने प्रकार की प्रेत बाधायें हैं उनमें यह प्रेत बाधा सर्वाधिक भयंकर होती है। इस बाधा में मृत्यु की सम्भावना बनी रहती है। आत्मा की शक्ति क्षीण होने पर प्रेतात्मायें व्यक्ति को अपने समाज में मिला लेती हैं।

इस प्रकार व्यक्ति की आत्मा से संघर्ष करने वाली प्रेतात्मायें अपनी वासना को पूरी करने के लिये चमत्कारपूर्ण बातें तो करती ही हैं इसके अलावा लोगों को प्रभावित करने के लिये अपने आपको दुर्गा, काली, शीतला माई, सन्तोषी माई और हनुमान, भैरव, वीर आदि बतलाती हैं जिसे साधारण लोग सत्य मानकर पूजा करते हैं। चढ़ावा भी चढ़ाते हैं और उसके बदले तरह-तरह की मनौतियाँ मानते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं। हमारे देश में इस प्रकार भ्रम के वशीभूत लाखों लोग हैं। इस सन्दर्भ में जान लेना चाहिये कि कभी किसी अवस्था में मनुष्य के शरीर में किसी भी प्रकार के देवी-देवता का प्रवेश असम्भव है। यदि प्रवेश करती हैं, तो केवल प्रेतात्मायें। भले ही वे अपने को देवी कहे, भवानी कहे या कहे देवता।

जो लोग प्रेत की साधना करते हैं - यदि अज्ञानतावश इस प्रकार की प्रेतात्मा को उन्होंने सिद्ध कर लिया, तो वह प्रेतात्मा साधक के ही शरीर में प्रवेश कर उपयुक्त वातावरण तैयार कर देती है। इसी को है 'आवेश' कहते हैं। प्रेत सिद्ध करने वाला व्यक्ति स्वयं इस भ्रम में पड़ जाता है कि उसके शरीर में कोई उच्चकोटि की दैवी शक्ति प्रविष्ट होकर आश्चर्यजनक और चमत्कारपूर्ण बातें करती है। लोग यही समझते हैं कि उस व्यक्ति पर दुर्गा, काली, भवानी, हनुमान, वीर, वैष्णव देवी आदि देने वाले व्यक्तियों की मनोकामनाएँ पूरी करती हैं। जबकि वास्तविकता कुछ और ही होती है। हाँ, एक बात अवश्य है कि इस प्रकार की छलनामयी प्रेतात्माओं के द्वारा लोगों का कुछ न कुछ और कभी न कभी कल्याण हो ही जाता है।

जिन दिनों मैं परामानसिक जगत के सिद्धातों के आधार पर प्रेतविद्या की इस प्रकार की तमाम सम्भावनाओं पर खोजकार्य कर रहा था, उसी समय मेरी भेंट आसाम के एक प्रेतसिद्ध तांत्रिक से हुयी। नाम था मृणाल सेन। कुछ समय के लिये काशीवास करने आये थे। मृणाल बाबू मानसरोवर मुहल्ले के एक मकान में किराये पर रहते थे।

सेन बाबू को प्रेतात्माओं की मति-गति और क्रिया-कलापों का सिर्फ ज्ञान ही नहीं था- बल्कि उन्होंने कई शक्तिशाली प्रेतात्माओं को भेड़-बकरी की तरह पाल भी रखा था। जिस मकान में सेन बाबू रहते थे- उसी में मेरे एक मित्र किराये पर रहते थे। नाम था लक्खीराम। लक्खीराम ने एक दिन मुझे बतलाया कि रात के समय कभी-कदा किसी युवती स्त्री की प्रेतात्मा सेन बाबू से मिलने के लिए आया करती है। सेन बाबू से मेरा परिचय लक्खीराम ने ही कराया था। एक दिन मैंने अपनी खोज एवं अनुसंधान के विषय की चर्चा करते हुए कहा कि जब तक क्रियात्मक रूप से इस दिशा में कुछ न किया जायेगा तब तक वास्तविकता से परिचित नहीं हुआ जा सकता। सिद्धान्त अपनी जगह पर है तथ्य की वास्तविकता अपनी जगह है। मेरी बात सुनकर सेन बाबू ने एक बार मेरी ओर देखा, फिर बोले - यही मेरा भी विचार है। तुम्हें रिसर्च के अलावा क्रियात्मक रूप से प्रेतात्माओं से सम्पर्क भी करना चाहिए। यदि आप इस दिशा में मेरा मार्गदर्शन करें तो मैं सहर्ष तैयार हूँ। मृणाल सेन ने तुरन्त स्वीकृति दे दी मुझे। प्रसन्न हो उठा मैं। प्रेतात्माओं की 'खोज' के संबंध में मैंने जो कल्पनायें की थीं यह साकार होती-भी प्रतीत हुई।

उच्चकोटि की प्रेतात्मायें एक विशेष सीमा तक प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित कर सकने में समर्थ होती हैं। मृणाल सेन ने आगे बतलाया कि इसी उद्देश्य से सृष्टि के गूढ़ तत्वों से तथा साथ ही जीवन के रहस्यमय तथ्यों से परिचित होने के लिये तांत्रिक साधना के सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में प्रेत साधना प्रचलित है। मगर प्रत्येक सम्प्रदाय के अपने अलग-अलग साधना-नियम, पद्धति और विधियाँ हैं। और किस पद्धति और किस विधि से किस प्रकार की प्रेतात्मायें अधिकार में आती हैं और उनसे कौन-सा काम लिया जा सकता है - इन सब बातों का भी तंत्र साहित्य में पूरा विवरण मिलता है। किस प्रकार की प्रेतात्माओं से कौन-सा कार्य सम्भव है - यह पूछने पर सेन बाबू ने बतलाया कि शक्ति और सामर्थ्य के आधार पर प्रेतात्माओं को तीन कोटि में विभक्त किया जा सकता है। सात्विक वृत्ति की प्रेतात्मायें उच्चकोटि की समझी जाती हैं। इनमें विपुल शक्ति और सामर्थ्य होता है

। इनकी सहायता से धार्मिक-बौद्धिक कार्यों में मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की प्रेतात्मायें मानव के प्रति कल्याणकारी भावनायें रखती हैं। इन्हीं के द्वारा मानव जीवन के रहस्यों और सृष्टि अथवा प्रकृति के गूढ़ तत्वों को भी जाना-समझा जा सकता है।

तामसी वृत्ति की प्रेतात्मायें मध्यम कोटि की होती हैं। तांत्रिक लोग इनको सिद्ध कर इनकी सहायता से मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, आकर्षण आदि कार्य करते हैं। तामसिक वृत्ति की प्रेतात्मायें निम्न कोटि की समझी जाती हैं। निकृष्ट प्रकार के तांत्रिक लोग इस प्रकार की प्रेतात्माओं को अधिकार में कर चमत्कारपूर्ण कार्य करते हैं। जैसे - हाथ को हवा में हिलाकर मिठाई, पान, इलायची आदि मँगाना। प्रेतात्मायें अदृश्य प्राणी हैं मगर वे स्थूल और भौतिक वस्तुओं को इस प्रकार कैसे ले आती हैं ? मेरे इस प्रश्न को सुनकर सेन महाशय एक बार हँसे फिर बोले 'वास्तव में प्रेतात्मायें कहीं से कोई वस्तु ले नहीं आतीं। प्रेतसिद्ध व्यक्ति जिस वस्तु की कल्पना करेगा उसको प्रेतात्मायें मानस पटल पर देख लेती हैं और फिर जहाँ जिस स्थान पर वह वस्तु रहती है वहाँ जाकर देख आती हैं और तुरन्त अपने मनोबल और वासना वेग से उसकी भौतिक सृष्टि कर देती हैं, लेकिन उस वस्तु की सत्ता भौतिक दृष्टि से तभी तक रहती है जब तक प्रेतात्मा का मनोबल बना रहता है और वासना का संबंध उस वस्तु से जुड़ा रहता है। देखने में यह कार्य अवश्य कौतूहलपूर्ण और आश्चर्यजनक लगता है - मगर इससे कोई लाभ नहीं। लोगों को केवल आकर्षित करने के लिये अथवा अपने 'अहं' को तुष्ट करने के उद्देश्य से तांत्रिक लोग यह खेल दिखाते हैं।'

ऐसे तांत्रिक लोगों के प्रति जो व्यक्ति इस रहस्य को नहीं जानता - आकर्षित होकर अपना तन, मन, धन सब कुछ गवाँ बैठता है। बहुत से ऐसे भी तांत्रिक होते हैं जो किये तो रहते हैं इस प्रकार की प्रेतसिद्धि- मगर बतलाते हैं कि उन्हें देवी की सिद्धि है, और वे ही इस प्रकार का चमत्कार करती हैं। ऐसे महापुरुष लोग मदारी की तरह तमाशा दिखाने के सिवा किसी भी प्रकार की न सहायता कर सकते हैं और न तो किसी प्रकार का कल्याण ही कर सकते हैं।

मृणाल सेन जब इस प्रसंग पर बातें कर रहे थे उसी समय कमरे में एक युवती आ गयी। पहले तो वह कुछ क्षण तक दरवाजे के पास निर्विकार भाव से खड़ी रही फिर सेन महाशय के करीब आकर एक ओर बैठ गयी जमीन पर।

निश्चय ही युवती किसी अच्छे कुल और सम्पन्न परिवार की थी। उसकी उम्र रही होगी यही २४-२५ साल के लगभग। लम्बा कद, छरहरा शरीर, चम्पई रंग और आकर्षक व्यक्तित्व — चम्पई रंग के जिस्म पर गुलाबी सिल्क की साड़ी उसे बड़ी अच्छी लग रही थी। कलाइयों में शंख के वलय और साथ ही सोने की चूड़ियाँ भी पड़ी थीं बड़ी-बड़ी और झील जैसी गहरी स्याह आँखें, नुकीली नाक, गुलाब की कलियों जैसी कोमल रक्ताभ होंठ और चमकते हुए शुभ्र ललाट पर कुंकुम की बिंदिया।

युवती को कमरे में प्रवेश करते ही मुझे ऐसा लगा मानो कमरे के वातावरण में कोई अनिवर्चनीय सुगंध तैर गयी हो। कुछ क्षण के लिये मैं मोहाविष्ठ-सा हो गया। एक बात और बतला दूँ - युवती का व्यक्तित्व बड़ा रहस्यमय लग रहा था मुझे। उसने सिर घुमा कर

मेरी ओर गहरी नजरों से एक बार देखा और फिर दृष्टि नीचे कर ली। निश्चय ही उसकी झील जैसी गहरी आँखों में कोई रहस्यमय भाव था जिसे मैं उस समय समझ न सका।

ना जाने क्यों उस रात नींद नहीं आयी मुझे। पूरी रात जागता रहा मैं। रह-रहकर उस युवती का भोला-भाला मासूम चेहरा मेरी आँखों के आमने थिरक उठता था। भोर के समय जरा-सी झपकी लगी मुझे और उसी अर्धतन्द्रिल अवस्था में एक बड़ा विकट स्वप्न देखा मैंने। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि उसी युवती से संबंधित था वह स्वप्न।

मैंने देखा- एक सुनसान वीरान किला है। शायद वह सामंत कालीन था। किले के नीचे काफी लम्बा-चौड़ा तहखाना था और उस तहखाने में जाने के लिए एक सुरंग था। सुरंग काफी सकरा और गन्दा था। सम्मोहित सा मैं उस सुरंग से होकर तहखाने में पहुँचता हूँ। वहाँ काफी उजाला था। काफी लम्बा-चौड़ा था तहखाना। एक ओर तीन-चार कमरे थे। जिसके दरवाजे मज़बूत लोहे के थे। तहखाने के एक ओर एक बहुत बड़ा सिंहासन था - जो सोने का था और जिसमें कीमती जवाहरात जड़े हुए थे और उस सिंहासन पर एक मोटा ताजा आदमी बैठा हुआ था। उसके शरीर का रंग बिल्कुल आबनूस जैसा काला था। सिर मुँड़ा हुआ था। मगर मूँछे काफी घनी और लम्बी थीं। आँखें छोटी-छोटी थीं। मगर उसके भीतर क्रूरता, निष्ठुरता और घृणा का अथाह सागर लहरा रहा था। कानों में कुण्डल और गले में रंग-बिरंगे पत्थरों की मालायें झूल रही थी।

सब कुछ मिलाकर वह काफी भयानक व्यक्ति लग रहा था। वह अपनी लाल-लाल आँखों को चारों ओर घुमा-घुमा कर इस प्रकार देख रहा था - जैसे वह किसी को खोज रहा हो। हाँ, एक बात बतलाना तो मैं भूल ही गया था। दानव-जैसे उस व्यक्ति ने कमर में बाघ की खाल पहन रखा था और हाथ में एक लम्बा-चौड़ा बरछा लिये हुए था। बाद में पता चला कि उस भयानक व्यक्ति का नाम दाड़म्मा था-और वह आदिवासी कबीले का सरदार था।

थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि तहखाने में पाँच-छ: व्यक्ति और आ गये। उन लोगों की भी शक्लें राक्षसों-जैसी ही थीं। गोल चेहरे, मुँड़े हुए सिर, छोटी-छोटी क्रूर आँखें, चिपटी नाक नीचे की ओर झूलते हुए जबड़े और उसके भीतर से झाँकते हुए लम्बे-लम्बे दाँत। उन लोगों के हाथों में भी विचित्र आकार-प्रकार के हथियार थे जिन्हें पहचान न सका मैं। सहसा तहखाने में एक औरत आयी वह भी राक्षसी ही थी। उसके शरीर का भी रंग काला था और बिल्कुल नंगी थी वह। सिर्फ नीचे जंगली पत्ते की चटाई पहने थी। वह ठिगने कद की काफी मोटी-ताजी औरत थी। उसने भी गले में रंग-बिरंगे पत्थरों की मालायें पहन रखी थी जो उसके बड़े-बड़े बेडौल स्तनों पर झूल रहीं थीं।

उस औरत को देखते ही दाड़म्मा प्रसन्न हो उठा। शायद अब तक उसी की प्रतीक्षा कर रहा था वह। हटेवो... ना... फाकंडू कहता हुआ वह सिंहासन से उठा और दोनों हाथों को फैलाकर आगे बढ़ा और फिर उस औरत को अपने आगोश में ले लिया उसने।

उस औरत का नाम था हटेवो और वह आडदाड़म्मा की पत्नी थी। हटेवो का मतलब होता है खिला हुआ गुलाब। दोनों काफी देर तक आलिंगनबद्ध रहे। उसके बाद दाड़म्मा ने अपने

गुलाब के साथ शराब पी और फिर एक साथ सिंहासन पर बैठे। सिंहासन पर बैठते ही दाड़म्मा ने पास में खड़े एक व्यक्ति को उँगली से संकेत किया। मैंने देखा, संकेत पाते ही उस व्यक्ति ने लपक कर तहखाने के एक कमरे का दरवाजा खोल दिया। और जैसे ही लोहे का भारी-भरकम दरवाजा खुला मेरी आँख चौंधिया गयी। कमरे के भीतर बेशुमार दौलत भरी थी। जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। दानव जैसे उस व्यक्ति ने कमरे के भीतर जाकर कोई और गुप्त दरवाजा खोला और जब बाहर निकला तो उसके साथ एक काफी लम्बा-चौड़ा लकड़ी का सन्दूक था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति अपने दोनों हाथों से उतना भारी सन्दूक बड़े आराम से उठाये हुए था। उसने सन्दूक लाकर दाड़म्मा के सामने आहिस्ते से रख दिया। फिर उसका ढक्कन खोला। सन्दूक के भीतर क्या है ? यह देखने के लिये मैं आगे बढ़ा। मगर जब मेरी नजर सन्दूक के भीतर गयी तो एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। आश्चर्य से मेरी आँखें खुली की खुली ही रह गयीं। सारा शरीर सनसना उठा मेरा।

उस आदमकद संदूक के भीतर मखमल की गद्दी पर अर्धचेतन अवस्था में वही युवती लेटी हुई थी जिसे मैंने मृणाल सेन के कमरे में देखा था।

युवती के घने काले बाल खुलकर सन्दूक में बिखरे हुए थे। वह पूर्णतया नग्न थी। उसके मस्तक पर लाल सिन्दूर का लम्बा टीका लगा था और गले में लाल फूलों की माला पड़ी थी। इतना ही नहीं, उसके उभरे हुये सुडौल स्तनों को घेर कर सिन्दूर से सीने पर स्वस्तिक का चिह्न भी बना हुआ था। जब मैं सिर झुकाकर युवती की ओर देख रहा था उसी समय दाड़म्मा अपने स्थान से उठा और सन्दूक के पास आया। फिर दोनों हाथों से युवती को बाहर निकाला उसने और फर्श पर लिटा दिया। युवती ने एक बार अपनी आँखें खोली और पुतलियाँ घुमाकर अपने चारों तरफ देखा फिर पलकें झपका लीं। आँखें बन्द होते ही उसका सिर एक ओर लुढ़क गया। शायद वह बेहोश हो गयी थी।

मुझसे रहा नहीं गया न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं चीख कर बोला - कौन है यह लड़की ? क्या हो गया है इसे... ?

मेरी आवाज सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने एक साथ मेरी ओर घूर कर देखा और एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर मेरी कलाई कसकर पकड़ ली और मुझे घसीटता हुआ तहखाने के बाहर ले गया और ढकेल कर वापस चला गया वह। धड़ाम से फर्श पर गिरते ही मेरी आँखें खुल गयीं। चकमका कर उठा पर बैठ गया मैं बिस्तर पर। सारा शरीर पसीने से भीग उठा था मेरा। जोरों की प्यास लगी थी। है भगवान् कितना विलक्षण, भयानक और सजीव था वह सपना। जागने के बाद भी मेरा सारा शरीर सनसना रहा था।

व्यस्तता के कारण मृणाल महाशय के यहाँ चार-पाँच दिन के बाद ही जा पाया मैं। सोचा, सपने की सारी घटना सुनाऊँगा उन्हें। मगर जब मैं उनके यहाँ पहुँचा तो एक विचित्र ही दृश्य देखने को मिला मुझे।

भीतर वाले कमरे में मृणाल महाशय मृगचर्म के आसन पर बैठे हुये थे ध्यानस्थ — सामने एक ओर थाली में माला-फूल, मिठाई, नारियल आदि रखा हुआ था। उसी के पास शराब

की दो-तीन बोतलें और कटोरी में ताजा गोश्त भी रखा था। एक छोटी सी लकड़ी की चौकी पर लाल रेशमी कपड़ा बिछा था- जिस पर लाल ही रंग के रेशमी कपड़े में एक मानव खोपड़ी रखी हुई थी। उस खोपड़ी के सामने अगरबत्ती और घी का दीप जल रहा था। जिसकी पीली रोशनी उस अँधेरे में काँप रही थी। कमरे में घुसते ही मुझे घुटन-सी महसूस हुई और वातावरण भी बड़ा रहस्यमय लगा। मेरी उपस्थिति का शायद ज्ञान नहीं हुआ था सेन महाशय को। वे पूर्ववत बैठे रहे निर्विकार।

मैं कमरे के दरवाजे के पास खड़ा - आश्चर्य से सब कुछ देख रहा था - तभी मेरी नजर सेन महाशय के बायीं ओर चली गयी। वहाँ मुझे गाढ़ा धुआँ सा उठता हुआ दिखलायी दिया। गाढ़ा होते हुए भी पारदर्शक था वह। दूसरे क्षण मुझे आश्चर्य हुआ कि वहाँ आग नहीं थी, फिर धुआँ कहाँ से आया ? उस धुएँ में एक अजीब सा आकर्षण था। शायद उसी आकर्षण के कारण मैं बराबर उसे देख रहा था। एकाएक धुयें में परिवर्तन होने लगा। और उसमें एक आकृति उभरने लगी धीरे-धीरे। थोड़ी ही देर चाद वह आकृति एक युवती के रूप में बदल गयी। जिसे देखकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। भय और आतंक से मेरी आँखें फैल गयीं। वह युवती वही थी जिसे मैंने सेन महाशय के यहाँ देखा था और देखा था नग्नावस्था में सपने में। पहचानने में कहीं भी मुझसे भूल नहीं हुई थी। जीवन में पहली बार मैंने ऐसा अविश्वसनीय और अलौकिक चमत्कार देखा था।

युवती केवल एक झीनी साड़ी पहने हुए थी, जिसके भीतर से उसके अंग झाँक रहे थे। वह उदास लग रही थी। गुलाब सा चेहरा मुरझाया हुआ था उसका — आँखों के नीचे स्याह धब्बे भी पड़े हुए थे — युवती सूनी आँखों से कभी चौकी पर रखी खोपड़ी की ओर, तो कभी निर्विकार बैठे हुए सेन महाशय की ओर देख रही थी। सहसा सीने पर से आँचल सरक कर नीचे गिर गया - देखा- युवती के दोनों स्तनों को घेरकर स्वस्तिक का चिह्न बना हुआ था वहाँ।

समझते देर न लगी मुझे। निश्चय ही वह युवती प्रेतात्मा थी। लक्खीराम की बात एकाएक स्मरण हो आयी उस समय। मगर वह प्रेतात्मा थी किसकी? वह युवती थी कौन ? सपने से क्या संबंध था उसका? मृणाल सेन के चंगुल में कैसे फँस गयी उसकी आत्मा? और क्यों इस प्रकार साकार होकर प्रकट हुआ करती थी वह उनके सामने ?

ये तमाम प्रश्न मिलकर एक ऐसे रहस्यमय वातावरण की सृष्टि कर रहे थे जिसकी गहरायी में जाने के लिये एकबारगी व्याकुल हो उठा मेरा मन। वहाँ मैं एक पल भी नहीं रुका। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर कर गली में आ गया मैं।

अध्याय ६
मैं एक भटकती हुई आत्मा हूँ

मानव-मन कितना अद्‌भुत और रहस्यमय है। असीम गति, असीम दिशा और असीम रूप। विश्व का कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ उसकी पहुँच न हो, और ऐसा कोई विषय नहीं,

जो उसकी परिधि में न आता हो, न कोई ऐसा समय ही है, जो उसकी गति से परे हो।

मानव-मन की इन समस्त भूमिकाओं को मनोविज्ञान कहा जाता है। इसके मुख्यत: तीन रूप हैं - स्वाभाविक, अस्वाभाविक और परास्वाभाविक। इनमें प्रथम दो को वैज्ञानिक अध्ययन का स्थान प्राप्त है, किन्तु परास्वाभाविक अपने मूल रूप में ही अभी तक वैज्ञानिकों के लिये माथापच्ची का विषय बना हुआ है और यही परामनोविज्ञान का विषय है। मनोविज्ञान जहाँ समाप्त होता है, वहीं परामनोविज्ञान प्रारम्भ होता है।

इस समय विश्व के सभी प्रमुख देशों में परामनोविज्ञान पर अनुसंधान हो रहा है। रूस में सरकारी तौर पर दो सौ वैज्ञानिक इस विषय पर गवेषणा कर रहे हैं। अभी कुछ दिन पूर्व आरटेक्ट विश्वविद्यालय में अंतर्राष्ट्रीय परामनोविज्ञान सभा बुलायी गयी थी। भारत प्राचीन काल से इस पर विश्वास रखता रहा है। यदि यह कहा जाय कि भारतीय संस्कृति और साधना की मूल भित्ति एकमात्र परामनोविज्ञान ही है, तो अतिशयोक्ति न होगी।

इस समय परामनोविज्ञान के तीन मुख्य शोध विषय हैँ - १. इन्द्रियातीत अनुभव (एक्स्ट्रा सेन्सरी पर्सेप्सन), २. मानसिक शक्ति का बाह्य प्रकाश (साइको किनेसिस) और ३. देहहीन व्यक्ति का प्रतिनिधित्व (इन्कॉर्पोरल पर्सनल एजेन्सी)।

देहहीन व्यक्ति से मतलब है - स्थूल शरीररहित व्यक्तित्व — स्थूल शरीर की रचना दो विपरीत मूल प्राकृतिक तत्वों के संयोग से होती है। उन दोनों तत्वों को शुक्रबिन्दु और रजोबिन्दु के नाम से जाना जाता है —। रजोबिन्दु में दो अतिरिक्त भौतिक तत्व भी होते हैं, जो गर्भ में शरीर रचना के साथ-साथ विकसित होते हैं और वासना शरीर और सूक्ष्म शरीर का निर्माण करते हैं। तीनों शरीरों की रचना जब पूरी हो जाती है तब उसमें 'जीवात्मा' प्रवेश करती है। मनुष्य एक साथ इन तीनों शरीरों में जीता है। तीनों शरीर एक समान होते हैं। प्राणों के माध्यम से वे तीनों एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। मृत्यु के समय जीवात्मा स्थूल शरीर को तो यहीं छोड़ जाती है, किन्तु अन्य दोनों को अपने साथ ले जाती है। शरीर आत्मा का वाहक है।

स्थूल शरीर रहित व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है - पहला वासना शरीर का, दूसरा सूक्ष्म शरीर का। वासना अथवा कामना वेग के समाप्त होने पर जीवात्मा स्थूल शरीर की तरह वासना शरीर को भी छोड़ देती है। वासना शरीर को ही प्रेत शरीर कहते हैं और उसमें रहने वाली आत्मा को ही प्रेतात्मा कहा जाता है। प्रेतात्माओं की मति-गति पागलों जैसी होती है। उनको अंधकार में ही शान्ति मिलती है। मरघट, काँटेदार पेड़, अथवा सुनसान खण्डहर उनके प्रिय स्थान हैं। मगर वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकतीं। अपनी वासना को पूरी करने के लिये बराबर इधर-उधर भटकती रहती हैं और जब कभी किसी जीवित व्यक्ति की वासना को अपनी वासना के अनुकूल देखती हैं तो उसके द्वारा अपनी मनमानी पूरी कर लेती हैं।

प्रेतात्माओं को शरीर के प्रति बहुत मोह होता है। अपनी वासना के अनुरूप शरीर देखते ही वे तुरन्त उसमें प्रवेश कर जाती हैं। इसी को 'प्रेत-बाधा' कहते हैं।

सूक्ष्म शरीर में ऐसी बात नहीं है। इसमें निवास करने वाली आत्मा को सूक्ष्मात्मा कहते हैं और वे महत्वपूर्ण संकल्प, कामना और मुख्य अभिलाषाओं को लेकर शरीर में रहती हैं।

सूक्ष्म शरीर में अन्तर्चेतना और अन्तर्मन प्रबल रहता है। उसकी इच्छा शक्ति भी काफी प्रबल होती है। सूक्ष्मात्मायें प्राय: एक ही स्थान पर रहती हैं। अगर स्थूल शरीर पाने में देर अथवा कठिनाई होती है तो वे प्रबल अन्तर्चेतना और अन्तर्मन की सहायता से अपने किसी भी निकट के अथवा प्रिय व्यक्ति के माध्यम से भी अपनी कामना को पूरा कर सकती हैं। इतना ही नहीं, अपनी प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा वे कुछ समय के लिये पार्थिव शरीर की रचना करके प्रकट भी हो सकती हैं।

जिसने योग साधना द्वारा अपने सूक्ष्म शरीर को विकसित कर लिया है, वह सूक्ष्मात्माओं को प्रत्यक्ष देख सकता है और उनसे सम्पर्क स्थापित कर सकता है। सूक्ष्मात्मायें भी उसके प्रति विशेष रूप से आकर्षिक होकर तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं। जिन पशु-पक्षियों की आँखें रात में चमकती हैं वे प्रेतात्माओं को देखते हैं। किसी की मृत्यु होने वाली होती है तो वहाँ एक-एक कर प्रेतात्मायें इकट्ठी होने लगती हैं। कुत्ते-बिल्ली का रोना, मांसखोर पक्षियों का पर फड़-फड़ाना इसी सत्य की ओर संकेत करता है। मरने वाले व्यक्ति को वे प्रेतात्मायें स्पष्ट दिखलायी पड़ती हैं, इन्हीं को भ्रमवश वह यमदूत समझता है।

अपनी विलक्षण कहानी सुनाने के पहले वासना शरीर और सूक्ष्म शरीर के बारे में कुछ और बतला देना जरूरी है। इन दोनों शरीरों में एक-दो विपरीत विषयक तत्व भी काम करते हैं, जैसे वासना शरीर का दूसरा नाम - 'भाव शरीर' भी है। भय, घृणा, क्रोध, हिंसा ये सब भाव शरीर के मुख्य विषय हैं, लेकिन इसके ठीक विपरीत उसमें प्रेम, करुणा, अभय और मैत्री भी हैं।

इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के मुख्य विषय सन्देह और विचार हैं; और इन दोनों के ठीक विपरीत हैं- श्रद्धा और विवेक।

दोनों शरीरों के दोनों विषय एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। दोनों में बराबर संघर्ष होता रहता है, जिसका परिणाम होता है दु:ख और क्लेश। यदि मनुष्य जीवन में भय, घृणा, क्रोध और हिंसा का अधिक प्रयोग करता है तो उसका भाव शरीर उसी दिशा में उन्नति करता जायेगा। यदि वह उनका उपयोग न कर उन पर विजय पाने का प्रयास करता है तो एक न एक दिन उसका जीवन घृणा की जगह प्रेम, भय की जगह करुणा, और हिंसा की जगह अभय तथा मैत्री से भर जायेगा। वही सच्चा मानव होता है। मृत्यु के बाद भी वह लोक कल्याण करेगा।

यही बात सूक्ष्म शरीर के प्रति भी लागू होती है। यहि हम मन में संदेह न आने दें और कुविचारों को स्थान न दें तो एक न एक दिन सन्देह और विचार रूपान्तरित होकर श्रद्धा और विवेक बन जायेंगे। श्रद्धा और विवेक ही सूक्ष्म शरीर द्वारा आत्मा के लिये ज्ञान-विज्ञान ग्रहण करते हैं। अब तक जितने भी ज्ञान-विज्ञान जगत में आये हैं, वे सब इसी

प्रकार आये हैं।

जैसा कि पहले भी बतला चुका हूँ - मैं कोई योगी या साधक नहीं हूँ, किन्तु परा-मनोविज्ञान के तीनों विषयों को पूर्ण श्रद्धा के साथ अपनाया और पूर्ण विवेक के साथ उन पर खोज की और भरपूर अध्ययन एवं चिन्तन-मनन किया है। परिणाम यह हुआ कि मेरा सूक्ष्म शरीर इस दिशा में बराबर उन्नति करता रहा और मुझे अपना शुभचिन्तक समझ कर सूक्ष्मात्मायें मेरी ओर आकर्षित होने लगीं। मैं स्वयं कभी उनकी ओर आकर्षित नहीं हुआ न कभी उनसे सम्पर्क ही स्थापित करने का प्रयास किया। वे स्वयं ही सम्पर्क करके मेरा मार्ग-दर्शन भी करती हैं।

आपने अब तक मेरी जितनी कहानियाँ पढ़ी हैं, वे सब इसी का परिणाम है। सूक्ष्मात्माओं के सम्पर्क काल में मेरी मानसिक स्थिति बहुत नाजुक हो जाती है। चित्त उद्भ्रान्त हो उठता है किन्तु मस्तिष्क सक्रिय रहता है। परिणाम यह होता है कि भूत, भविष्य, वर्तमान- तीनों काल मेरे मानस पर एक साथ उभरने लगते हैं। मनुष्य की सच्चाई और उसका असली रूप भी मेरे सामने बिल्कुल नंगा हो जाता है। यही कारण है कि मैं पूर्ण एकान्तसेवी हो गया हूँ। किसी से अधिक मिलना-जुलना भी पसन्द नहीं करता। जब मन घबराता है तो गंगा तट की ओर घूमने निकल जाता हूँ।

आपके सामने यदि जीवन और जगत का असली रूप यदि अनावृत हो जाय तो आपकी मानसिक स्थिति क्या होगी ? वही स्थिति मेरी है। सूक्ष्मात्माओं द्वारा मैंने जहाँ जीवन-जगत और लोक-परलोक का रहस्य जाना, वहीं मेरा स्वयं का जीवन अभिशप्त भी हो गया। जीवन के प्रारम्भ में मैने भी कितनी ही कल्पनाएँ की थीं रंगीन सपने देखे थे।

और उस समय मैंने जिसको लेकर इतनी कल्पनाएँ की थीं और सपने सँजोए थे वह थी मेरी सहपाठिनी पुष्पा। मँझोला कद, गोरा रंग, सुनहले बाल, झील जैसी गहरी आँखें और गुलाब के फूल जैसे कोमल और रक्ताभ होंठों वाली पुष्पा।

पुष्पा एम० ए० की छात्रा थी। हम दोनों में कब, किस क्षण और कैसे प्रेम हो गया, यह तो बतलाया नहीं जा सकता, किन्तु हम दोनों के प्रेम का एकमात्र मूक साक्षी कदम्ब का वह पेड़ आज भी विश्वविद्यालय में मौजूद है, जिसकी शीतल छाया तले घण्टों बैठे हम दोनों एक दूसरे में खोये रहते थे। दोनों ने शादी करने का निश्चय किया था। मेरी ओर से कोई व्यवधान नहीं था, मगर पुष्पा के सामने रुकावटें थीं। आखिर एक दिन उसी रुकावट ने हम दोनों को हमेशा-हमेशा के लिए एक दूसरे से अलग कर दिया। उसी कदम्ब के तले पुष्पा के आँसुओं को पोंछते हुए मैंने कहा था - 'दुनिया बड़ी विचित्र है पुष्पा। वह न तुम्हारी भावनाओं को समझेगी, न मेरी। उसकी अपनी दृष्टि है, जो हमेशा दोष ही खोजती है ! दोषी मत बनो पुष्पा ! जैसे सब लड़कियाँ रहती हैं - दम-साधे, सब दबाये, छिपाये - उसी तरह तुम भी जिन्दा रहो। मेरे प्रति सारा आकर्षण, प्रेम और भावुकता कहीं मिट्टी में दबा दो और मुझे हमेशा के लिये भूल जाओ।'

पुष्पा ने आँसुओं में डूबी आँखें ऊपर उठा कर मेरी ओर देखा - मानों मूक भाषा में कह रही

हो - 'कोई तो सुनने-समझने वाला नहीं है। अगर तुम भी नहीं सुनोगे तो मैं घुट-घुट कर मर जाऊँगी। क्या तुम इतने निष्ठुर हो ? इतने आत्मलीन हो कि किसी के मन का दर्द भी न सुन सको ? ऐसे निर्दयी न होओ। मेरी पुकार सुन लो।'

इतनी पावन प्रीति और नेहभरी पुकार का तिरस्कार करने की सामर्थ्य मैं अपने में पैदा नहीं कर सका। मन विगलित हो उठा, किन्तु विवश था... समाज के बंधन को भला कैसे तोड़ सकता था ? मेरे कष्ट और व्यथा को उस समय अन्तर्यामी के सिवा भला और कौन समझ सकता था। असीम पीड़ा और अश्रुपूरित दृष्टि से मैंने एक बार पुष्पा की ओर देखा, फिर उसके रास्ते से हमेशा के लिये हट गया।

फिर यह जिन्दगी कैसे कटी - किसी ने नहीं जाना। कभी मैंने किसी से न सहायता माँगी, न करुणा चाही। मेरे जीवन का सफर किसी ने नहीं देखा।

बीच में एक लम्बा अरसा, फिर आज का दिन ! पुष्पा, उसकी पावन प्रीति और उन सबके साक्षी उस कदम्ब के पेड़ को मैं एकदम भूल चुका था।

मगर तीस वर्षों के दीर्घ अन्तराल के बाद जब सहसा पुष्पा का पत्र मिला तो मैं चौंक पड़ा। सारी स्मृति सजीव हो उठी मानसपटल पर।

पत्र डाक से आया था; और उसे भेजा गया था दार्जिलिंग से। कई बार उलट-पलट कर मैंने पत्र को देखा। भ्रम या सन्देह की कहीं कोई गुंजाइश नहीं थी। पुष्पा की ही लिखावट थी। हे भगवान् ! इस उम्र में इस अवस्था में जबकि मैं पके फल जैसा लटकता हुआ हूँ और मौत की पगध्वनि साफ सुनाई पड़ रही है, ऐसे समय में न जाने कब का दफन हुआ यह प्रेम-प्रसंग फिर कहाँ से उभर आया ? पाती के एक-एक शब्द ने मेरे कलेजे को छू लिया। वह पाती मानो किसी अनन्त मरुभूमि के बीच कल-कल बहती निर्झरिणी का संवाद लेकर आयी। वह पाती मानो सकुचा कर बोली - ' कुछ कहना चाहती हूँ! सुनोगे ?, और थका-हारा मैं बोल पड़ा - 'जरूर सुनूँगा। कहो, क्या कहना चाहती हो '

उसी दिन से मैं उद्विग्र रहने लगा। रात को श्रान्त-क्लान्त होकर लेटता तो लगता जैसे पुष्पा सिरहाने आकर खड़ी हो गयी है और मेरे ऊपर झुक कर मोह-भरे स्वर में कह रही हो, 'काफी थक गये हो, लाओ तुम्हारा सिर दबा दूँ। कितना काम करते हो तुम ! देख कर कलेजा फट जाता है मेरा। इतना श्रम मत किया करो। लाओ, तुम्हारे पैर दबा दूँ।'

उस समय अस्फुट स्वर में भावाविष्ट होकर मैं भी उस अदृश्य छाया से कह बैठता, 'तुम आ गयी हो तो जिन्दगी का सारा क्लेश, सारी व्यथा, सारी थकान भूल गया। कितना सन्तुष्ट हूँ, कितना सुखी हूँ मैं तुम्हारे सान्निध्य से। तुम मेरे साथ रहोगी न ?'

छाया भी मानो अस्फुट स्वर में कहती - 'मैं तुम्हारी हूँ। हमेशा तुम्हारी ही रहूँगी।'

एक दिन दूसरा पत्र आया। लिखा था - मैं एक भटकती हुई आत्मा हूँ। मुझे तुम्हारा सहारा चाहिये ! तुम्हारी सहायता चाहिये। तुम्हारे अलावा संसार में और कोई मेरा उद्धार करने वाला नहीं है। एक बार दार्जिलिंग आओ। मुझसे मिलो। मैं अब तुम्हारे ही साथ रहना

चाहती हूँ। मेरे लिये सारा बन्धन टूट चुका है अब । मैं रोज तुम्हारी राह देखूँगी । आओगे न ?

दीर्घ अन्तराल के बाद मिलने वाले इस विश्वास और प्रीति का कैसे तिरस्कार कर पाता । दार्जिलिंग का पता तो था ही मेरे पास । पहले कलकत्ता गया और वहाँ से दार्जिलिंग मेल से रवाना हुआ । रास्ते में अनेक प्रश्न मन में उभरते रहे।। सोचा- हम एक दूसरे को कैसे पहचानेंगे? अब तो वह बूढ़ी हो गयी होगी । बाल सफेद हो गये होंगे । आँखें भी कमजोर हो गयी होंगी । मुझसे दो-तीन साल ही तो छोटी थी पुष्पा ।

इन्हीं बातों के साथ मन में एक विचार यह भी आया कि वह अब विधवा होगी, तभी तो मुझे याद किया है उसने ।

ट्रेन जब दार्जिलिंग स्टेशन पर पहुँची तो धरती और हिमाच्छादित पहाड़ों पर साँझ की स्याह कालिमा फैल चुकी थी । आकाश में काले बादल घिरे हुये थे । हवा में ठण्डक थी । निस्तब्ध वातावरण साँय-साँय कर रहा था । ऐसी स्थिति में दस मील का पहाड़ी रास्ता अकेले पूरा करना निरापद नहीं था, अत: मैंने रात स्टेशन पर ही बिताने का निश्चय कर लिया । तभी किसी ने पीछे से पुकारा, "बाबूजी !'

पलट कर देखा तो एक व्यक्ति लपकता हुआ मेरी ओर बढ़ा आ रहा था । वह भोटिया था और उसके शरीर पर खाकी वर्दी थी । सिर पर पगड़ी बाँधे हुए था ।

पास आकर उसने पूछा, 'आप शर्मा जी हैं न । बनारस से आना हुआ है न !'

मैंने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा तो उसने बतलाया कि वह पुष्पा जी का ड्राइवर है । उन्होंने कार भेजी है।

सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ, पुष्पा को कैसे मालूम हुआ कि मैं आज आने वाला हूँ ?

ड्राइवर का नाम बहादुर सिंह था । वह बड़ी तन्मयता से कार चला रहा था । थोड़ी देर बाद कार एक विशाल फाटक के भीतर घुसी । दूज का चाँद निकल आया था । उसकी पीली रोशनी में चारों ओर आँखे घुमा कर देखा - मकान काफी पुराना, मगर बहुत बड़ा था । वह ऐसी जगह पर बना था, जिसके चारों तरफ सुनसान घाटी थी । आस-पास कोई और दूसरा मकान भी नहीं था । सबसे नजदीक का गाँव भी तीन-चार मील दूर था ।

वातावरण में न जाने कैसी घुटन थी । एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता छाई हुई थी । ऐसा लगा कि मैं अनजाने ही किसी प्रेतपुरी में पहुँच गया हूँ ।

बहादुर सिंह मेरा सामान बरामदे में रख कर न जाने कहाँ गायब हो गया । मकान के भीतर गहरी खामोशी छाई थी । सहसा बगल वाले कमरे में रोशनी हुई । फिर दरवाजा खुला । मेरे सामने एक युवती खड़ी मुस्करा रही थी । उसके शरीर पर कीमती साड़ी और जेवर थे । ऐसा लगा जैसे अभी-अभी श्रृंगार करके चली आ रही है ।

हठात् मेरे मुँह से निकल पड़ा - पुष्पा !

हाँ! वह पुष्पा ही थी। मगर उसमें जरा-सा भी परिवर्तन नहीं हुआ था। तीस वर्ष पहले ही जैसी पुष्पा मेरे सामने खड़ी मुस्करा रही थी। वह मुझे एक कमरे में ले जाकर पलंग पर बैठती हुई बोली, 'सफर में थक गये हो न ? पहले नाश्ता कर लो और थोड़ा आराम भी कर लो, तब बातें होंगी।'

कमरा काफी आलीशान था। मैं सोचने लगा कि अजमेर की रहने वाली साधारण परिवार की पुष्पा दार्जिलिंग कैसे पहुँच गयी ? फिर वह इतने ऐश्वर्य की स्वामिनी कैसे बन गयी ? मेरे मन में उथल-पुथल मची हुई थी। मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। तभी चाँदी के गिलास में दूध और चाँदी की ही तश्तरी में नमकीन और मिठाई लेकर पुष्पा आ गयी। टेबल पर नाश्ता रखती हुई बोली, 'कितने साल बाद हम लोग मिले हैं तुमने शादी नहीं की न ?'

बर्फी का टुकड़ा मुँह में रखते हुए मैंने कहा - 'नहीं ! प्यार तुमसे किया और शादी किसी दूसरे से करूँ - यह कैसे हो सकता है !'

'मैंने भी नहीं की।' - एक दीर्घ निःश्वास लेकर पुष्पा ने कहा।

'तुमने भी नहीं की ? क्यों ?'

'यदि यही प्रश्न मैं तुमसे करूँ तो ?'

मैं मौन साध गया। कुछ बोला ही नहीं गया मुझसे।

थोड़ी देर बाद पुष्पा स्वयं कहने लगी, 'हिंदू नारी एक बार जिसे अपना देवता मान लेती है जिसे एक बार अपना सर्वस्व मान लेती है तो भला उसके जीवन में दूसरा व्यक्ति कैसे आ सकता है ! मैंने शादी के लिये साफ इन्कार कर दिया। मैं अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती थी। संयोग से मुझे स्कूल में नौकरी मिल गयी। अकेली जिन्दगी गुजारने के लिये वह नौकरी मेरे लिये काफी थी। मगर अचानक एक दिन मेरी शान्त-सरल जिन्दगी में जहर घुल गया। जिस मकान में मैं रहती थी, वह मेरी दूर के रिश्ते के भाई का मकान था। उसी ने मुझे नौकरी दिलवाई थी। एक रात शराब के नशे में मेरे साथ उसने जबरदस्ती अपना मुँह काला कर लिया। मैं बहुत रोई-गिड़गिड़ाई, पर वह नराधम मेरा सर्वस्व लूट कर ही माना। मैं लाचार थी। भला क्या कर सकती थी। उसने मेरी विवशता का नाजायज फायदा उठाया। फिर तो वह रोज ही मेरे साथ वासना का खेल खेलने लगा। पाप के परिणाम को सामने आते देर नहीं लगी...मैं गर्भवती हो गयी। मेरे सामने अंधकार छा गया। समाज और परिवार के सामने मुँह दिखाने लायक भी नहीं थी मैं। आखिर मैंने आत्महत्या करने का निश्चय किया और एक रात मैं अपनी पाप की गठरी लिये नदी की ओर चल पड़ी। मगर मौत ने भी मुझे सहारा नहीं दिया। पाप से तो छुटकारा मिल गया, मगर जिन्दगी से मुक्ति नहीं मिली।'

इतना कहते-कहते पुष्पा का गला भर आया और उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया। मेरा भी मन न जाने कैसा हो गया उस समय।

थोड़ी देर बाद स्वस्थ होने पर विगलित स्वर में पुष्पा ने आगे कहना शुरू किया - 'मुझे एक सज्जन ने बचा लिया था। वही अपने साथ मुझे यहाँ ले आये। परिवार में उनके अलावा और कोई नहीं था। चाय बागान और इस मकान के अलावा भी उनके पास काफी सम्पत्ति थी। वे मुझे अपनी पुत्री के समान मानते थे और मैं भी उनको पितातुल्य समझती थी। मेरे लिये यही सब कुछ थे - माता, पिता, भाई-बन्धु हितैषी। मगर उनकी शीतल छत्रच्छाया अधिक दिन तक नहीं रह सकी मुझ पर। दो वर्ष बाद उनका हार्ट फेल हो गया। मृत्यु के बाद पता चला कि वे अपनी सारी सम्पत्ति मेरे नाम लिख गये हैं। मगर सम्पत्ति से मेरा एकाकीपन भला जा सकता था ? आज तीस वर्षों से उसी शून्य में मेरी आत्मा भटक रही है। मगर अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं किसी कोमल शीतल छाया तले खड़ी हूँ। अब अपनी कोई चिन्ता नहीं रही। अब तुम आ गये हो न। मेरे सारे क्लेश दूर हो जायेंगे... सारी व्यथा दूर हो जायेगी।'

बोलते-बोलते पुष्पा ने मेरे हाथों को अपने हाथों में ले लिया और आँखों में आँखें डाल कर कहने लगी - 'अब तो कोई व्यवधान नहीं है कोई रुकावट नहीं है। आज इस सूनी माँग में तुम सिन्दूर भर दो... इन सूनी कलाइयों में सुहाग की चूड़ियाँ पहना दो, मेरे देवता, मैं तुम्हारी हूँ... और हमेशा तुम्हारी ही रहूँगी, मेरे आराध्य।'

कहते-कहते पुष्पा मुझसे लिपट गयी और फफक-फफक कर रोने लगी। किसी प्रकार पुष्पा को अपने से अलग करके मैं धीरे-धीरे जाकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। सारी सृष्टि जैसे गहन निस्तब्ध अंधकार में डूबी हुई थी। बादलों से ढके आकाश में जब-तब बिजली चमक उठती थी।

सहसा कमरे का बन्द दरवाजा फटाक् से खुला और कन्धे पर बन्दूक लटकाये कई आदमी कमरे में घुस आये। मैं कुछ समझूँ, इसके पहले ही एक लम्बा तगड़ा आदमी लपक कर पुष्पा के नजदीक पहुँचा और बन्दूक की नली उसके सीने पर सटाता हुआ कर्कश स्वर में बोला, 'आज तुम नहीं बच सकती, बतलाओ माल कहाँ है ?

उसी समय न जाने कहाँ से बहादुर सिंह आ गया। वह हाथ में राड लिए हुए था, मगर अकेला बेचारा क्या कर सकता था? अपनी मालकिन को कोई सहायता करता, इसके पहले ही धांय की आवाज हुई और एक गोली सनसनाती हुई उसकी छाती चीरती हुई उस पर निकल गयी। दूसरे ही क्षण उसका निर्जीव शरीर लड़खड़ा कर गिर पड़ा।

पुष्पा के सामने यमराज जैसा वह व्यक्ति अभी भी बन्दूक ताने खड़ा था। पुष्पा भय और आतंक से बुरी तरह काँप रही थी। अन्य आततायी सारे मकान में घूम रहे थे। समझते देर नहीं लगी - वे सब पहाड़ी डाकू थे। मगर आश्चर्य की बात यह थी कि मुझ पर किसी की नजर नहीं पड़ी। मैं खिड़की के पास दुबका खड़ा काँप रहा था।

अचानक फिर गोली छूटने की आवाज हुई और वातावरण में एक मर्मभेदी चीत्कार गूँज उठा। मैंने देखा- पुष्पा दोनों हाथों से छाती दबाये जमीन पर छटपटा रही थी। उसका सारा शरीर खून से लथपथ था। कुछ क्षण बाद उसने भी दम तोड़ दिया।

हत्या और लूट-पाट करके डाकू चले गये, तब मेरी चेतना लौटी। मेरे सामने दो-दो लाशें पड़ी थीं - खून में डूबी हुई। भगवान् यह सब क्या है ? कहाँ आकर फँस गया मैं। इसके बाद मैं अपने पर नियन्त्रण नहीं रख सका। आप ही अनुमान लगाइये, उस समय यदि आप होते तो कैसी स्थिति होती आपकी ? इतनी दूर से क्या सोच-समझ कर आया था और क्या हो गया ?

मैं बेतहाशा भागता हुआ सड़क पर आया। धीरे-धीरे अँधेरा सिमटने लगा था और पूरब का आसमान सफेद हो चला था। सबेरा होने ही वाला था। भागता हुआ पूछता-पूछता पुलिस स्टेशन पहुँचा और एक ही साँस में रात की सारी घटना मैंने इंस्पेक्टर को सुना दी। मगर उस पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह बस मेरी ओर अपलक देखता रहा। मैंने सोचा - शायद मेरी बातों पर उसे यकीन नहीं हो रहा है। मैंने दृढ़ स्वर में पूछा, 'जो कुछ मैंने बतलाया है इंस्पेक्टर, क्या आपको उस पर विश्वास नहीं हो रहा है ?'

'विश्वास है।' इंस्पेक्टर बोला - 'लेकिन जिस घटना को आप सुना रहे हैं, वह कल नहीं, बल्कि इसी महीने में और इसी तारीख को आज से तीस वर्ष पहले घटी थी।'

'आप क्या कह रहे हैं ?' -व्यग्र होकर मैं बोला - 'अपनी आँखों से मैंने सब कुछ देखा है।'

'मैं कब कह रहा हूँ कि आपने नहीं देखा, पर जो कुछ देखा, वह सब भयंकर प्रेतलीला थी।'

'प्रेत-लीला ?' 'जी हाँ, प्रेतलीला। काफी लम्बे अरसे से वह मकान वीरान पड़ा है। आज भी कभी-कभी काली, अँधेरी रात में लोगों को पुष्पा देवी की करुण चीख सुनाई पड़ जाती है। बहादुर सिंह और पुष्पा देवी की आत्मा उस मकान में न जाने कब तक भटकती रहेगी ?'

मेरी अटैची उसी कमरे में थी, मगर अब वहाँ अकेले जाने का साहस नहीं हुआ मुझे। अत: मैंने इंस्पेक्टर को भी साथ ले लिया। जब मैं मकान के भीतर घुसा तो एक अजीब सी दुर्गन्ध भर गयी नाक में। भीतर कब्रिस्तान जैसी खामोशी छायी हुई थी। मेरी अटैची एक टूटी हुई मेज पर पड़ी थी।

पास ही टूटा हुआ पलंग भी पड़ा था। जब मैं अटैची उठाकर चलने लगा तो अचानक मेरी नजर पलंग पर रखे हुये एक पैकेट पर पड़ी। लाल रेशमी कपड़े में लिपटा हुआ था वह। जब मैंने उसे खोलकर देखा तो दंग रह गया। पैकेट में सिन्दूर की डिबिया और काँच की लाल चूडियाँ थीं।

मुझे याद आया - रात में मैंने उसी पैकेट को पुष्पा के हाथों में देखा था। उसी को लिये हुए वह मुझसे विगलित स्वर में कह रही थी, 'आज इसी सूनी माँग में तुम सिन्दूर भर दो इन सूनी कलाइयों में सुहाग की चूड़ियाँ पहना दो '

कुछ क्षण तक मैं किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा खड़ा न जाने क्या सोचता रहा, फिर भारी कदमों से मकान के बाहर निकल आया।

इस घटना को हुये दो साल से ऊपर गुजर गये, मगर सिन्दूर की वही डिबिया और काँच की वे लाल चूडियाँ आज भी मेरे पास सुरक्षित पड़ी हुई हैं।

अध्याय ७
जिन्नात का प्रतिशोध

रोज की तरह उस रात भी उषा का कमरा फूलों, इत्र और धूपबत्ती की मिली-जुली सुगंध से भर उठा। उस समय रात के दो बजे थे। मैं और अवधबिहारी शर्मा साँझ से इसी समय की प्रतीक्षा में थे। सुगंध मिलते ही हम उषा के कमरे के सामने जाकर खड़े हो गये। दरवाजा भीतर से बन्द था। फाँकों में से झाँककर देखा मैंने। हल्के हरे रंग के बल्ब की मद्धिम रोशनी में मुझे एक धूम्राकृति दिखलायी पड़ी। वह एक लम्बे-चौड़े व्यक्ति की आकृति थी। कभी वह उषा के पलंग पर बैठ जाती तो कभी कमरे में टहलने लगती।

सहसा सोयी हुई उषा की आँखें खुल गयीं। उसने हल्के से मुस्करा कर कहा - 'आप आ गये ? आपकी ही प्रतीक्षा करते-करते झपकी लग गयी थी मुझे। सोचा, शायद आज आप न आयें।

अब तक धूम्राकृति पलंग पर उषा के करीब बैठ चुकी थी फिर हम लोगों ने किसी को कोमल स्वर में कहते सुना - ' भला क्यों नहीं आता मैं ? तुम्हारे बिना एक पल भी रहना मेरे लिए मुश्किल है।'

फिर वही खिलखिलाहट, वही हँसी-मजाक और वही रतिक्रिया।

स्तब्ध रह गया मैं। जब मुझे शर्माजी ने सारी बातें बतलायी थीं तो सहसा मुझे विश्वास नहीं हुआ था।

शर्माजी की इकलौती लड़की थी उषा। सुन्दर, आकर्षक और मृदुभाषिणी तो वह थी ही, इसके अलावा प्रथम श्रेणी में एम० ए० भी पास थी वह। उम्र यही लगभग बाईस-तेइस वर्ष रही होगी।

शर्मा जी सूचना विभाग में अधिकारी थे। मेरे परम मित्र थे। वाराणसी में पद सँभालने के बाद उन्होंने पहला काम किया था - उषा की शादी। इकलौती लड़की होने के करण काफी धूमधाम से उसकी शादी की थी शर्मा जी ने। दिल खोलकर खर्च किया था। उषा के पति का नाम सुरेन्द्रकुमार पाण्डेय था। वह बम्बई विश्वविद्यालय में लेक्चरर था। शादी के तीसरे ही दिन वह वापस बम्बई चला गया था। उसने कहा था कि फ्लैट मिलते ही आकर पत्नी को भी ले जाएगा, मगर शादी के एक साल बीत जाने पर भी न फ्लैट मिला और न वह वाराणसी ही आया। फिर भी वह उषा से बराबर पत्र-व्यवहार करता रहा और सान्त्वना देता रहा कि फ्लैट मिलते ही बम्बई ले जायेगा उसको।

एक दिन अचानक एक घटना घट गयी। अगर वह घटना न हुई होती तो शायद एक बहुत

भयानक रहस्य पर से पर्दा भी न उठता ।

उषा एकाएक बीमार हो गयी । तेज बुखार हो आया उसे। ज्वर के ताप में वह बड़बड़ाने लगी । शाम को दवा लेने पर थोड़ा आराम मिला तो वह सो गयी ।

रात के समय उषा की माँ लीलावती देवी उसके कमरे में यह देखने के लिये गयी थीं कि अब उसकी तबीयत कैसी है ? जब वह कमरे के सामने पहुँची तो दरवाजा बन्द था । पहले कभी उषा दरवाजा बन्द करके नहीं सोती थी, इसलिये थोड़ा आश्चर्य हुआ लीलावती देवी को ।

फिर सहसा किसी के साथ उषा के हँसने-बोलने की आवाज सुनायी पड़ी तो लीलावती देवी एकदम चौंक पड़ी । इतनी रात को भला कौन है उषा के कमरे में ? वह किसके साथ हँस बोल रही है ?

'उषा ! उषा ! दरवाजा खोलो ! किससे बातें कर रही है तू?' - दरवाजा भड़भड़ाती हुई लीलावती देवी फुसफुसाहट भरे कठोर स्वर में बोल उठी ।

थोड़ी देर बाद कमरे में बत्ती जली, फिर दरवाजा खुल गया । सामने अलसायी हुई उषा खड़ी थी । उसके बाल बिखरे थे और साड़ी अस्त-व्यस्त थी ।

लीलावती देवी कमरे में गयीं तो सहसा उनकी नाक में फूलों, इत्र और धूपबत्ती की मिली-जुली सुगन्ध भर गयी । आश्चर्य से उन्होंने नजरें घुमाकर चारों ओर देखा, फिर उषा से पूछने लगीं, 'तू किसके साथ बातें कर रहीं थी ? कौन था तेरे कमरे में? बोल जल्दी, कौन था ? '

लीलावती देवी को अपनी बेटी और उसके चरित्र पर पूरा भरोसा एवं विश्वास था, फिर भी उस समय उन्होंने जो कुछ सुना था, उससे सन्देह होना स्वाभाविक ही था ।

उषा ने कोई जवाब नहीं दिया । उसने एक बार रहस्यमयी दृष्टि से माँ की ओर देखा फिर धम्म् से पलंग पर बैठ गयी ।

लीलावती देवी का सन्देह और पक्का हो गया । उन्होंने सोचा - दाल में जरूर कुछ काला है । उस समय तो नहीं, लेकिन दूसरे दिन उषा से काफी पूछताछ की गयी, फिर भी एक मौन तो हजार मौन । उषा ने कुछ नहीं बताया । बस, वह माँ-बाप की ओर अपलक निहारती रही । सभी हैरान थे । सयानी, विवाहिता और पढ़ी-लिखी लड़की को मार-पीटकर या धमकाकर भी तो कुछ नहीं पूछा जा सकता था ।

उस रात के बाद तो रोज ही रात में उषा के कमरे का दरवाजा बन्द मिलने लगा । उस समय कमरे का वातावरण सुगन्धमय हो उठता। कभी-कभी किसी के साथ उषा के हँसने-बोलने की भी आवाज सुनाई पड़ने लगी, लेकिन लाख पूछने पर भी वह किसी से कुछ नहीं बताया करती ।

दिन-पर-दिन उसकी कंचन जैसी देह पीली पड़ती जा रही थी । आँखें धँसती जा रहीं थीं । खिले हुए गुलाब के फूल जैसा उसका सुन्दर चेहरा मुरझाने लगा था । आँखें हर समय लाल

रहने लगी। बोलना और लोगों से मिलना-जुलना भी बहुत कम होने लगा। उषा हर समय अपने कमरे में ही पलंग पर पड़ी रहती।

एक दिन शर्मा जी ने ये सारी बातें मुझे बताई तो सुनकर मुझे भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। आखिर मैंने उषा को अपने यहाँ लाने के लिये कह दिया। एकान्त में काफी घुमा-फिराकर पूछने पर उषा ने संकोच-भरे स्वर में मुझे जो कुछ बतलाया- उसे सुनकर मेरा मन अविश्वास और आश्चर्य के मिले-जुले भाव से भर गया।

एक महीने से रोज रात दो बजे उषा से मिलने सुरेन्द्र आया करता था; भला यह कैसे सम्भव है ? अगर वह एक महीने से वाराणसी में ही है, तो सास-ससुर से मिलने क्यों नहीं आया ? इस तरह लुक-छिपकर आधी रात को पत्नी से मिलने की क्या जरूरत थी ? जबकि उसके लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं था; इतने दिन हो गये, उस पर घरवालों की नजर क्यों नहीं पड़ी ? किस रास्ते से आता है वह ?

ये सारे प्रश्न मेरे मन में एक-एक उभरने लगे। उषा से पूछना बेकार था, क्योंकि इन सभी प्रश्नों के उत्तर में उसके पास सिर्फ 'मौन' था।

अवधबिहारी शर्मा को मैंने ये बातें नहीं बतलायीं। मैं स्वयं सब कुछ अपनी आँखों से देखना चाहता था और जब मैंने देखा तो एकदम हतप्रभ रह गया। समझते देर नहीं लगी कि उषा किसी जिन्न के कब्जे में फँस गई है। वही जिन्न सुरेन्द्र के रूप में रोज रात में उससे मिलने आता था, लेकिन उषा को क्या मालूम कि पति के वेश में कोई शैतान उसके युवा शरीर और मादक सौन्दर्य का उपभोग कर रहा है।

मैं अभी सोच ही रहा था कि वह धूम्राकृति सहसा पार्थिव शरीर में बदल गयी। अब वह जिन्न एकदम सुरेन्द्र के रूप में मेरी आँखों के सामने था। फिर उसने जो लीला शुरू की, वह मुझसे नहीं देखी गयी।

जब मैंने शर्मा जी को सारी बातें बतलायीं और कहा कि सुरेन्द्र की शक्ल में कोई जिन्न उषा के पीछे लगा है तो सहसा उन्हें भी विश्वास नहीं हुआ, लेकिन लीलावती देवी को इस बात का पता चला तो वह रोने ही लगी।

उषा की हालत दिनों-दिन बिगड़ती ही जा रही थी। लगता था, मानो कोई पिचकारी से उसके शरीर का सारा खून चूस ले रहा है।

मैं तांत्रिक नहीं हूँ, मगर उस समय तंत्रशास्त्र मेरे अध्ययन का रुचिकर विषय अवश्य था। इस दिशा में मेरे गुरु थे उस समय वाराणसी के प्रसिद्ध साधक भवानीशंकर भादुड़ी। वह वाराणसी के नारद घाट मुहल्ले में रहते थे। जब मैंने यह सारी घटना उन्हें सुनाई तो वह भी गम्भीर हो गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने भारी स्वर में बतलाया, 'पुनर्जन्म को न मानने के कारण मुसलमानों की प्रेतात्मायें अतृप्त वासना और कामना के लिये इधर-उधर भटकती रहती हैं। प्रेत-योनि की एक खास अवधि पूरी होने के बाद उनमें अदम्य शक्ति आ जाती है। उसी शक्ति के कारण उन्हें जिन्नात कहा जाता है। हम जिसे प्रेत कहते हैं उसी को उर्दू

अथवा अरबी भाषा में 'जिन्न' कहते हैं। उनकी आयु हजारों वर्ष की होती है। आयु के अनुसार उनकी अपनी शक्ति भी बढ़ती जाती है। जिन्नात की इच्छाशक्ति बड़ी प्रबल होती है। गति-मति भी विलक्षण होती है। वे अपने असीम मनोबल और अपनी इच्छाशक्ति से असम्भव-से-असम्भव कार्य कर सकने में समर्थ होते हैं। सुरेन्द्र का रूप धारण कर लेना तो कोई बड़ी बात नहीं है उनके लिये, मगर इसके पीछे अवश्य कोई गम्भीर रहस्य है। बिना किसी खास कारण के जिन्नात किसी इन्सान का रूप धारण करके किसी औरत का उपभोग नहीं कर सकते।

भादुड़ी महाशय से जब मैंने उषा की बाधा दूर करने की याचना की तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि वह तंत्र मार्ग के साधक उपासक हैं इसलिये असमर्थ हैं।

मगर मैंने हार नहीं मानी। प्रयत्न में लगा रहा। अन्त में एक दिन भादुड़ी महाशय ने मुझे एक अरबी मंत्र दिया और उसकी क्रिया एवं विधि भी समझा दी। उसी के अनुसार मैं काम करने लगा। एक बृहस्पतिवार और शुक्रवार निकल गया। कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। लेकिन दूसरे गुरुवार की रात में एक विचित्र घटना घटी। उस समय मैं भादुड़ी महाशय की बतायी हुई विधि के अनुसार क्रिया कर रहा था, तभी अचानक कमरे का वातावरण फूल, इत्र और सुगन्ध से भर उठा। सुगन्ध बिल्कुल वैसी ही थी, जैसी मैंने उषा के कमरे के समीप अनुभव की थी।

अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि दूसरे ही क्षण भीतर से बन्द कमरे का दरवाजा अपने आप फटाक् से खुल गया। चौंककर जब मैंने उस ओर देखा तो एकदम स्तब्ध रह गया - मेरे सामने उषा खड़ी थी। उसकी आँखें गूलर के फूल की तरह लाल थीं और चेहरा सुर्ख था।

पहले तो उसे देखकर सहम गया मैं, फिर संभलकर मैंने पूछा- 'इस वक्त तुम यहाँ कैसे आयी अकेली।'

'तुमने बुलाया तो आना पड़ा। क्या चाहते हो, बोलो? किसलिये बुलाया है ?'

हे भगवान् ! उषा का स्वर नहीं था वह। बोलने का ढंग भी उसका नहीं था। वह किसी मर्द का स्वर था। उषा मुझे चाचाजी कहती थी। मेरे लिए 'तुम' शब्द का प्रयोग उसके लिये सर्वथा असम्भव था। दूसरे ही क्षण मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध गया- निश्चय ही उषा पर सवार जिन्न का स्वर था वह !

तुरन्त नौकर भेजकर मैंने अवधबिहारी शर्मा को बुलवाया। वह भागे-भागे आये तो मालूम हुआ कि उषा शाम से ही घर से गायब थी। खाजते-खाजते लोग परेशान हो गये थे।

मैं वस्तुस्थिति समझ गया। मंत्र-शक्ति से आकर्षित होकर जिन्न खिंचा हुआ मेरे पास चला आया था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उषा ने मेरा मकान भी पहले कभी नहीं देखा था। वह मेरे यहाँ कभी आयी भी नहीं थी।

कुछ देर तक तो वह मेरी ओर घूरती रही फिर एकाएक पलटी और कमरे से बाहर आने लगी। उसके कदम बड़ी तेजी से उठ रहे थे। मैं और शर्मा जी भी उसके पीछे लपक पड़े।

रात को दस बजे थे इस समय। दिसम्बर का महीना था। कुहरे से आच्छन्न सुनसान सड़क...आगे-आगे उषा और उसके पीछे-पीछे लपके जा रहे हमलोग — अजीब स्थिति थी। मैंने शर्मा जी से कहा, 'देखना है कि यह कहाँ जाती है। जरूर कोई रहस्य है इसमें।'

मेरा अनुमान सही निकला। उषा शहर के बाहर जाकर एक खण्डहरनुमा मकान के सामने एक टूटी-फूटी कब्र से लिपट गयी। उस समय वह बिलख-बिलख कर बड़े करुण स्वर में रो रही थे। निर्जन, सुनसान इलाका। चारों ओर मरघट जैसी उदासी छायी हुई थी।

तो यही था रहस्य ?

मगर कब्र से लिपट कर रोने की बात हम दोनों की समझ में नहीं आयी। उसी समय निकट ही स्थित कब्रिस्तान का बूढ़ा चौकीदार अब्दुल मजीद हाथ में लालटेन लिये हुए सामने से आता हुआ दिखलायी पड़ा। वह मुझे पहचानता था। सलाम करके बोला, - 'क्या माजरा है, पण्डितजी ?'

मैंने शुरू से लेकर अन्त तक की सारी कथा सुना दी मजीद को। सुनकर वह भी एकदम सन्न रह गया, फिर खाँसते हुए उसने फुसफुसाकर जैसे अपने-आपसे कहा, 'या खुदा ! क्या फिर कमाल मियाँ की रूह जाग गयी ?'

'कमाल मियाँ कौन हैं?' - मैंने पूछा।

लेकिन उस वक्त मजीद ने कुछ नहीं बतलाया, सिर्फ इतना ही कहा, 'बहुत ज्यादा रात हो गयी है। अभी आप लोग बिटिया को ले जाइए। कल किसी वक्त आप तशरीफ ले आयें तो सब बतला दूँगा।'

दूसरे दिन अब्दुल मजीद ने जो कहानी सुनायी, वह अजीबोगरीब तो थी ही एक हद तक अविश्वसनीय भी थी। संक्षेप में ही सुनाऊँगा मैं इसे।

अब्दुल मजीद ने बतलाया कि यह कब्र कमाल साहब की है। सौ साल पहले इसी जगह वह हजरत दफन हुए थे। अपने जमाने के बड़े शौकीन मिजाज और ऐय्याश तबीयत के थे कमाल साहब ! चार अदद बीबियाँ तो थीं ही, इनके अलावा कई रखैलें भी थीं। अपने वालिद के इकलौते बेटे थे। काफी दौलत थी। बाप के मरने के बाद दोनों हाथों से ऐय्याशी में रुपये खर्च करने लगे। कोई रोकने-टोकने वाला भी नहीं था।

जवानी की ढलान पर कमाल मियाँ एक नाचने वाली पर फिदा हो गये। उस नाचने वली का नाम था चमेलीबाई। सचमुच चमेली का फूल ही थी वह। क्या गजब का हुस्न था। इतनी हसीन कि जन्नत की परियाँ भी उसके सामने पानी भरती हुई लगें।

जमीन पर साँझ की स्याह उतरते ही दालमण्डी में उसका कोठा बनारस के रईसजादों से भर जाता था। घुँघरुओं की झंकार के साथ तबले ठनकने लगते। बेला-चमेली-जूही के फूलों और इत्रों की खुशबुओं से रंगीन रात महक उठती थी। चाँदी के गिलास में सुरा ढालकर जब अपने मेंहदी लगे हाथों से वह पेश करती, तो रईसजादे अपने को खुशकिस्मत समझते

।

न जाने कैसे कमाल साहब को भी भनक मिल गयी चमेलीबाई के हुस्न की, फिर उन्होंने देर नहीं की। फौरन चाँदी की थाली में एक हजार गंगा-जमुनी सिक्के रेशमी रूमाल से ढककर नजराने के रूप में चमेलीबाई के पास भेज दिया।

'गंगा-जमुनी सिक्कों से क्या मतलब ?' मैंने बीच में टोंककर पूछा।

मजीद मियाँ ने बताया, 'सोने-चाँदी के मिले-जुले सिक्कों को उन दिनों 'गंगा-जमुनी' कहते थे। उसे खास-मौकों पर नजराने के रूप में पेश किया जाता था।' फिर पल भर रुककर मजीद ने कमाल साहब की कहानी आगे बढ़ाई थी फिर भी उसने मुस्कराकर नजराना कबूल कर लिया। इसके बाद एक दिन वह कमाल साहब के गले का हार भी बनकर झूल गयी।

कमाल साहब के अधेड़ बदन में सिहरन-सी दौड़ गयी। चमेलीबाई के अनार के फूल जैसे कोमल और लाल होंठों को उन्होंने चूम लिया था।

दिन बीतने लगे। रोज साँझ होते ही चमेलीबाई की सजी हुई पालकी कमाल साहब की कोठी के फाटक पर उतरने लगी। फिर रातें रंगीन हो उठतीं। नशे में धुत् कमाल साहब पूरी-पूरी रात सुरा और सुन्दरी के नशे में डूबे चमेलीबाई की गोद में पड़े रहते।

धीरे-धीरे कमाल साहब तो बर्बाद होने लगे, मगर हुस्न की मलिका चमेलीबाई आबाद होने लगी।

जब दौलत खत्म हो गयी, तो जमीन-जायदाद बिकने लगी। फिर एक ऐसा भी वक्त आ गया कि आप सामने जो कोठी का खण्डहर देख रहे हैं न, उसे छोड़कर कमाल साहब का सब कुछ बिक गया। ऐसे मामलों में जैसा अक्सर हुआ करता है - वही हुआ। कमाल साहब समझते थे कि चमेलीबाई दिलोजान से उन्हें प्यार करती है और उनसे कभी अलग न होगी, मगर राजा और रंडी भला किसी के हुए हैं आज तक? ठूँठ पेड़ देखकर एक दिन कमाल साहब की डाल से भी चिड़ियाँ उड़ गयी।

कमाल साहब बूढ़े तो हो चले थे। अत्यधिक सुरा-सुन्दरी के सेवन से शरीर और जर्जर हो चुका था। आखिर चमेलीबाई की बेवफाई के सदमे को बरदाश्त नहीं कर सके और एक रात इसी कोठी में दम तोड़ दिया उन्होंने।

मरते वक्त उनके पास न एक फूटी कौड़ी थी न अपना कोई नाते-रिश्तेदार था। चमेलीबाई के कारण उनकी बीवियाँ और रखैलें पहले ही उन्हें छोड़कर चली गयी थी। औलाद कोई हुई ही नहीं थी। उनकी यादगार के रूप में बस कमाल साहब की ऐय्याशी और जिन्दादिली के साथ-साथ चमेलीबाई की बेवफाई की कहानी सुनाने वाला यह खण्डहर भर रह गया है अब।

पूरी कहानी सुनाकर मजीद उदास नजरों से कमाल साहब की कब्र की ओर देखने लगा,

फिर जैसे अपने आप से बोला, 'मगर पण्डितजी! कमाल साहब की रूह को जन्नत में भी शान्ति नहीं मिली। कभी-कभी उनकी रूह कब्र में जाग जाती है फिर कई-कई दिनों तक भटकती रहती है कोठी के खण्डहरों में।'

साँझ की स्याह कालिमा कोठी के सिसकते हुए खण्डहरों और टूटी-फूटी कब्र पर फैल चुकी थी। मेरा मन न जाने कैसा हो गया था, लेकिन सोच रहा था कि इस करुण कहानी से उषा का क्या सम्बन्ध है ? क्या कमाल साहब की ही रूह उसे परेशान कर रही है ? फिर मेरे सामने एक प्रश्न उभरा - आखिर क्यों ?

सहसा उसी समय मुझे एक विचित्र आवाज सुनायी दी। लगा जैसे कोई मरता हुआ व्यक्ति कराह रहा हो। धीरे-धीरे वह आवाज ऊँची होती गयी। मैंने बूढ़े मजीद मियाँ की ओर प्रश्नसूचक नजरों से देखा, पर वह कुछ नहीं बोला।

फिर अकस्मात् वह आवाज आनी बन्द हो गयी और एक भयंकर नीरवता छा गयी, उस समय आकाश में बादल घिरे हुए थे। सर्दी बढ़ने लगी थी। सहसा वातावरण में एक चीख उभरी और फिर रोने की आवाज सुनाई दी। मैं टार्च जलाकर खण्डहर की ओर लपक पड़ा। रोने की आवाज उधर से ही आ रही थी।

'रुक जाइए, पण्डितजी!' मजीद मियाँ की आवाज सुनाई दी, 'इस वक्त उधर जाना खतरे से खाली नहीं है। कमाल साहब की रूह भटक रही है।'

मगर मैं रुका नहीं। न जाने कौन-सी शक्ति खींच रहीं थी मुझे उधर! खण्डहर के भीतर पहुँचने पर मुझे महसूस हुआ जैसे कोई जोर-जोर से साँस ले रहा है। मैंने चारों तरफ टार्च की रोशनी फेंकी, लेकिन कोई नहीं दिखा।

फिर सहसा एक चीख गूँज उठी। टार्च की तेज रोशनी के साथ ही मेरी नजर भी उस ओर घूम गयी। इसके साथ ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मैंने देखा - सामने एक लम्बा-चौड़ा व्यक्ति खण्डहर की धूल से अटी टूटी-फूटी सीढ़ियाँ उतर रहा था। वह तंजेब का कुर्ता पहने हुए था। सिर पर ईरानी टोपी और हाथ में चाँदी की मूठ वाली छड़ी थी। मैंने रोशनी में चेहरा साफ-साफ देखा - खूब रोबदार था बड़ी-बड़ी आँखें, घनी और नुकीली मूँछें, नीचे का जबड़ा लटका हुआ...

एकाएक निस्तब्ध वातावरण में फूलों और इत्रों की मिली-जुली भीनी-भीनी सुगन्ध तैर गयी। फिर मैं एक क्षण भी वहाँ नहीं रुका। तुरन्त ही वापस लौट आया। उस वक्त मजीद अफीम की गोली जमाकर हुक्का पी रहा था। मुझे देखते ही बोला, 'अब आप एक लम्हा भी यहाँ मत ठहरिए वर्ना भारी मुसीबत में फँस जायेंगे। जिन्नत बहुत बुरी तरह बदला लेते हैं पण्डितजी !'

'मगर मजीद मियाँ, मैं और भी बहुत कुछ जानना चाहता हूँ — यह लड़की बड़ी खतरनाक हालात से गुजर रही है।'

'इस मामले में मैं आपकी कोई और मदद नहीं कर सकता।'- टका-सा जवाब देते हुए

मजीद ने कहा।

मगर मुझे ऐसा लगा मानो उस वक्त मजीद कुछ छिपा रहा है। शुरू से ही मेरी खोजी प्रवृत्ति रही है। ऐसे रहस्य जब तक अनावृत नहीं हो जाते तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलती। मैं जी-जान से जुट गया। भादुड़ी महाशय ने एक ताबीज दे दी थी, जिससे काफी राहत थी उषा को।

आखिर मेरा प्रयत्न सफल हुआ, मजीद के भी खानदान का एक व्यक्ति चमेलीबाई पर आशिक था। बाद में उसी से चमेलीबाई ने शादी कर ली थी — उस व्यक्ति के साथ चमेलीबाई की शादी के बाद एक बड़ा-सा फोटो था, जो मुझे मिल गया। फोटो देखते ही मैं चौक पड़ा।

चमेलीबाई की शक्ल हू-ब-हू उषा से मिलती-जुलती थी। कहीं कोई फर्क नहीं था। ऐसा लगता था मानों उस व्यक्ति के साथ उषा ही बैठी हो। तो क्या चमेलीबाई की ही आत्मा ने उषा के रूप में जन्म लिया है ? क्या यह सम्भव है ?

जब मैंने भादुड़ी महाशय को वह फोटो दिखाकर अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने स्वीकारोक्ति में सिर हिलाकर कहा, 'हाँ, यह सम्भव है; और यह भी सम्भव है कि शायद इसी कारण कमाल साहब की अतृप्त आत्मा सुरेन्द्र के रूप में उषा को परेशान कर रही हो।'

'मगर इन सारी समस्याओं का समाधान कैसे होगा ?' - मैंने पूछा।

'आवाहन से !' भादुड़ी महाशय बोले, 'आवाहन करने पर सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा। तभी कमाल साहब की भटकती हुई रूह से उषा को मुक्ति भी मिलेगी !'

निश्चित दिन और समय पर भादुड़ी महाशय ने मुझे आवाहन का एक मंत्र दिया और उसकी विधि बतला दी। जब मैंने आवाहन किया तो कमाल साहब की रूह फौरन आ गयी उषा पर।

उस समय रूह ने जो कुछ बताया - उसको सुनकर दंग रह गया मैं। सचमुच चमेलीबाई की आत्मा ने ही उषा के रूप में जन्म लिया था। जिन्न-जिन्नात का अपना दायरा होता है। उषा वाराणसी आते ही कमाल साहब की भटकती रूह के दायरे में फँस गयी। उसका जिस्म भले ही उषा का था, मगर आत्मा तो चमेलीबाई की ही थी, जिसे कमाल साहब की रूह ने पहचान लिया। उषा के रूप में लगभग सौ वर्ष बाद मिली थी चमेलीबाई। उसकी बेवफाई के कारण कमाल साहब की अतृप्त रूह में एकदम प्रतिशोध की आग धधक उठी। इसी बीच उषा की शादी हो गयी। इस शादी ने प्रतिशोध की आग में घी का काम किया। मंत्र पूरित जल का छींटा पड़ते ही कमाल साहब की रूह तिलमिला उठी। चीखकर बोली - 'इस हरामजादी को कभी नहीं छोड़ूँगा। मैं... इसने मेरी जिन्दगी बर्बाद कर दी...इसने धोखा दिया है मुझे...अब इसे मारकर अपने साथ ले जाऊँगा मैं ताकि यह भी मरने के बाद मेरी तरह बेपनाह भटके और रूहानी दुनिया की यातनाओं को महसूस कर सके।'

मैं घबरा गया। शर्माजी भी चिन्तित हो उठे, लेकिन उसी समय एक आश्चर्यजनक घटना हो

गयी जिसकी कल्पना भी नहीं की गयी थी।

सहसा दरवाजे पर एक टैक्सी आ खड़ी हुई; उसमें से सुरेन्द्र उतरा। बिना किसी पूर्वसूचना के एकाएक उसे आया देखकर सभी आश्चर्यचकित हो उठे। सुरेन्द्र को फ्लैट मिल गया था और वह उषा को लेने आया था। मगर मैंने महसूस किया कि सुरेन्द्र की मति-गति और उसका स्वभाव पहले जैसा नहीं था। कमरे में उसके प्रवेश करते ही पूर्वपरिचित फूलों और इत्र की मिली-जुली सुगन्ध तैर गयी थी। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि सुरेन्द्र के आते ही उषा भी स्वस्थ हो गयी।

एक हफ्ते बद उषा सुरेन्द्र के साथ बम्बई चली गयी, मगर अपने पीछे कई रहस्यमय प्रश्न छोड़ गयी थी वह, मैं उन प्रश्नों के जाल में उलझ गया। अभी मेरा समाधान हुआ भी नहीं था कि एक वज्रपात हुआ। एक दिन ट्रंककाल से खबर मिली कि एक कार-दुर्घटना में सुरेन्द्र और उषा - दोनों की मृत्यु हो गयी।

रहस्य और भी गहरा हो गया। जब मैंने ये सारी बातें भवानीशंकर भादुड़ी को बताई तो सुनकर वह भी एकबारगी स्तब्ध रह गये, फिर बोले, 'हे माँ! आखिर उस कामुक पिशाच ने प्रतिशोध ले ही लिया।'

बाद में भादुड़ी महाशय ने ही रहस्यों पर से काला पर्दा हटाया। उन्होंने बताया कि उस समय सुरेन्द्र वाराणसी न आया होता तो मृत्युजन्य घटना न घटती दोनों की इस तरह दारुण मृत्यु कदापि न होती। कमाल साहब की रूह बदला लेने के चक्कर में थी ही, सुरेन्द्र के वाराणसी आते ही उनकी रूह उस पर आक्रमण कर बैठी। अब तक तो वह सुरेन्द्र के रूप में उषा से मिलती थी, मगर जब उस समय सुरेन्द्र स्वयं आ गया तो कमाल साहब की रूह उसके शरीर में प्रवेश कर गयी। तभी तो सुरेन्द्र अस्वाभाविक लगा था। भीनी-भीनी सुगन्ध भी फैल गयी थी।

फिर भादुड़ी महाशय ने जब यह बताया कि कार-दुर्घटना भी उस रूह ने ही करवाई है, तो मैं स्तब्ध रह गया।

उषा की कहानी तो खत्म हो गयी, मगर कमाल साहब की कोठी के खण्डहर से अब भी अक्सर रात के सन्नाटे में मर्दानी आवाज के साथ एक औरत के चीखने और रोने की आवाज सुनायी पड़ जाया करती है।

अध्याय ८
हम सब भावी प्रेत हैं

आत्मा और शरीर का संबंध दो सगे भाइयों की तरह है। बिना शरीर के आत्मा एक क्षण भी नहीं रह सकती। जिस प्रकार परमात्मा का एक महत्वपूर्ण भाग 'आत्मा' है, उसी प्रकार आत्मा का भी एक महत्वपूर्ण भाग है 'मन'। मन में दो तत्व हैं - बुद्धि तत्व और अहं तत्व।

मन, बुद्धि और अहंकार ये तीनों मिलकर वासना को उत्पन्न करते हैं और उसी के अनुसार मन सृष्टि करता है। सृष्टि के मूल में वासना और है वासना के मूल में मन, बुद्धि और अहंकार।

वासना से अभिभूत होकर मन सृष्टि करता, मगर उस सृष्टि का संस्कार आत्मा पर पड़ता है। जन्म-जन्म के तमाम संस्कारों को आत्मा अपने आप में समेटे काल के प्रवाह में बहती रहती है। ऐसी ही आत्मा को 'जीवात्मा' कहते हैं।

यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि स्थूल, पार्थिव शरीर ही सब कुछ नहीं है। इसके अलावा पाँच शरीर और हैं। ये पाँचों शरीर एक-दूसरे से सूक्ष्म हैं। सच तो यह है कि 'आत्मा' वाहक है और ये सारे शरीर उसके वाहन हैं। एक समय और एक अवस्था में 'आत्मा' एक ही शरीर में रहती है। स्थूल शरीर के बाद सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर परमाणुओं के संगठन से बने होने के कारण आँखों से दिखलाई नहीं पड़ता। स्थूल शरीर का अपना विशेष महत्त्व है, इसलिये कि शेष सभी शरीरों का बीज इसमें विद्यमान है। स्थूल शरीर में अन्य शरीरों के बीज पड़े होते हैं। उन्हें 'कोश' कहते हैं।

स्थूल शरीर जीवात्मा का सबसे प्रिय और मूल्यवान वाहन है। यह अधिक-से-अधिक समय तक इस शरीर में रहना चाहती है। मगर स्थूल शरीर की अपनी मर्यादा और सीमा है और जब वह अपनी मर्यादा का पालन करते हुए अपनी सीमा पर पहुँच जाता है, तो विवश होकर जीवात्मा को उसका साथ छोड़ना पड़ जाता है — इसी का नाम मृत्यु है।

प्राकृतिक नियम के अनुसार मृत्यु के बाद तुरन्त जीवात्मा को सूक्ष्म शरीर मिलना चाहिये। अगर किसी कारणवश ऐसा तत्काल सम्भव न हो सका, तो जीवात्मा संस्कारजन्य वासना के आधार पर कुछ समय के लिये एक ऐसे शरीर का निर्माण कर लेती है, जिसे हम वासना शरीर अथवा प्रेत शरीर कहते हैं। इस शरीर की रचना के मूल में आकाश तत्व रहता है, इसलिये इसे आकाशीय शरीर अथवा, इथरिक बॉडी भी कहते हैं। वास्तव में यही एक ऐसा शरीर है जिसका निर्माण स्वतन्त्र रूप से जीवात्मा कर सकती है, मगर उसे ग्रहण कर लेने के बाद जीवात्मा की संज्ञा बदल जाती है। तब हम उसे 'प्रेतात्मा' कहते हैं।

प्रेतात्मा तब तक प्रेत शरीर में रहती है, जब तक वासना का वेग कमजोर नहीं पड़ जाता और सूक्ष्म शरीर उसे नहीं मिल जाता। प्रेत शरीर में वासना का वेग प्रबल हो उठता है। मन, बुद्धि और अहंकार - इन तीनों की भी शक्ति प्रबल हो जाती है, मगर उस शक्ति के अनुसार वासनाओं को भोगने के लिये प्रेतात्माओं के पास कोई साधन नहीं होता। वासना की प्रबलता और साधन के अभाव में वे असीम कष्ट का अनुभव करती है। यही प्रेतात्माओं का अपना कष्ट और क्लेश है। इसी कारण वे बराबर अशांत रहती है। पागलों की तरह इधर-उधर भटकती रहती है। वासनाओं, कामनाओं और इच्छाओं का ये छय भोग हैं और भोग के लिये कर्म की जरूरत है। जितने प्रकार के शरीर हैं उनमें सिर्फ स्थूल शरीर ही एकमात्र ऐसा शरीर है, जिसमें कार्य की प्रधानता है। बाकी सभी शरीर भोग शरीर हैं। केवल भोग के लिये वे प्राप्त होते हैं। देवताओं का भी शरीर भोग शरीर है। जिस प्रकार प्रेतात्मायें वासनाओं और इच्छाओं की पूर्ति न होने के कारण व्याकुल रहती हैं, उसी प्रकार

देवता भी सुखों के कारण ऊबे रहते हैं। दुःख में व्याकुलता है, घबराहट है। सुख में ऊब है। अपनी इसी ऊब के कारण देवता, मानव शरीर पाने के लिये बराबर चेष्टा करते रहते हैं।

मनुष्य देवयोनि प्राप्त करना चाहता है और देवता, मानवयोनि के लिये तरसते रहते हैं। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में मानव शरीर काफी महत्वपूर्ण है। दृश्यमान जगत में कुल चौरासी लाख योनियाँ हैं, जिनमें भटकने के बाद जीवात्मा को बड़े ही पुण्य से चौरासी अंगुल का यह मानव शरीर मिलता है। एक ओर चौरासी लाख योनियाँ हैं और दूसरी ओर चौरासी अंगुल का मानव शरीर। शरीर के प्रत्येक अंगुल पर एक लाख योनियों के संस्कार एक साथ केन्द्रीभूत हैं। चौरासी लाख योनियों के संस्कारों को लेकर जीवात्मा मानव शरीर में प्रवेश करती है और जब तक वे संस्कार खत्म नहीं हो जाते, तब तक मानव योनि में बराबर आवागमन लगा रहता है। इन्हीं तमाम संस्कारों को खत्म करने के लिये और उनके द्वारा आवागमन और जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होने के लिये योगशास्त्र में चौरासी योगासनों और उनसे संबंधित चौरासी योग मुद्राओं की व्यवस्था है। प्रत्येक आसन और उससे संबंधित योग मुद्रा के संयोग से शरीर में एक विशेष प्रकार की ऊर्जा जन्म लेती है। वे ऊर्जायें एक ही प्रकार की नहीं होती। उनमें भिन्नता होती हैं। प्रत्येक आसन और प्रत्येक मुद्रा के संयोग से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकार की होती है।

प्रत्येक ऊर्जा से एक कारण योनियों के संस्कार नष्ट होते हैं। उन ऊर्जाओं को प्राप्त करना ही 'योगसिद्धि' है। इस प्रकार सिद्धियों की सभी संख्या चौरासी है। अलग-अलग इन चौरासी सिद्धियों को प्राप्त करने वाले चौरासी सिद्धों की नामावली आज भी प्रसिद्ध है।

साधारण लोगों के लिये शरीर का महत्त्व भौतिक सीमा तक ही है। वे इसके आगे कुछ सोच-समझ ही नहीं सकते। वे यही जानते हैं कि बस शरीर ही सब कुछ है। आत्मा का अस्तित्व उनके लिये न कोई महत्त्व रखता है न कोई मूल्य। जहाँ आत्मा की बात आयेगी, वहाँ अध्यात्म जन्म लेगा और अध्यात्म की दृष्टि से मानव शरीर का अपना अलग ही महत्व है। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की नियंत्रणाकारिणी पराशक्ति वैसे तो सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है, मगर वह अपनी सर्वश्रेष्ठ लीलायें मानव शरीर के आश्रय और माध्यम से प्रकट करती हैं। यदि देखा जाये तो भगवान् विष्णु के कई अवतार हुये, मगर जो अवतार सबसे महत्वपूर्ण और मानवीय हैं, वे हैं रामकृष्ण, बुद्ध -जिनका आश्रय लेकर इस काल की सारी धर्म-साधना और काव्य-साधना विकसित हुई। इससे यही समझा जा सकता है कि परमेश्वर के लिये भी मानव शरीर मूल्यवान है।

मैं पिछले पैंतीस साल से आत्मविद्या पर शोध कर रहा हूँ। इस दीर्घ काल में मेरे सम्पर्क में सैकड़ों की संख्या में निम्न से निम्न और उच्च से उच्च कोटि की आत्मायें आयीं। मैंने देखा कि वे सभी मानव शरीर पाने के लिये लालायित थे।

अभी-अभी इस प्रसंग को लिखते समय एक आत्मा से मेरा सम्पर्क हुआ है। पिछले चौदह साल से वह प्रेतयोनि में भटक रही है। भावावेश में उसने आत्म-हत्या कर ली थी। जैसी कि उसकी धारणा थी, मरने के बाद उसे शांति मिलनी चाहिये थी। मगर उसे शांति कहाँ मिली। जिस कारण उसने आत्म-हत्या की थी, उसी को लेकर अशान्त है। उसका कहना है

कि शरीर का मूल्य और महत्त्व अब उसकी समझ में आया है।

मेरे कहने का मतलब है कि मानव शरीर एक ऐसा चौराहा है, जहाँ से चारों दिशाओं में जाया जा सकता है। मगर मनुष्य के ज्ञान और कर्म पर निर्भर है। अपने ज्ञान, अपने कर्म और अपने विचार के अनुसार वह प्रेतयोनि भी प्राप्त कर सकता है और देवयोनि भी। पुन: मानव शरीर में भी आ सकता है और हमेशा के लिये उससे छुटकारा भी पा सकता है।

पैंतीस साल पहले आत्मविद्या का मेरे लिये कोई महत्त्व नहीं था। प्रेतात्माओं के अस्तित्व को मैं मन का भ्रम, मन का विकार और कल्पना समझता था। अगर वह अविश्वसनीय घटना मेरे साथ न घटी होती, तो शायद आज भी मेरी यही धारणा होती और मैं आत्मविद्या पर शोध और खोज भी न करता।

उस समय मेरी अवस्था बीस-बाईस साल से अधिक न थी। खून में गर्मी थी और शरीर में जोश था और उसी गर्मी और जोश के वशीभूत होकर कभी न कभी किसी लम्बी यात्रा पर निकल पड़ता था।

एक बार मैंने नर्मदा की परिक्रमा करने का निश्चय किया और अमरकण्टक जा पहुँचा। आज अमरकण्टक जैसा है, वैसा उस समय नहीं था। ऊँचे-ऊँचे पर्वत-शिखरों और घने जंगलों से घिरे अमरकण्टक में सिर्फ कुछ साधु-संतों के झोपड़े भर थे। पेडरू रोड से अमरकण्टक के लिये पैदल ही जाना पड़ता था। रास्ता ऊबड़-खाबड़ और पथरीला था। आज जैसी न सड़कें थीं और न तो बस का साधन ही। किसी प्रकार मैं अमरकण्टक पहुँच गया। कार्तिक का महीना था। हल्की गुलाबी ठण्ड पड़ने लगी थी। ब्रिटिश काल में अंग्रेज अफसर प्राय: शिकार खेलने के लिये कभी-कदा उधर जाया करते थे। उन्हीं के लिये वहाँ एक 'रेस्ट हाउस' बना था। अब वह रेस्ट हाउस है कि नहीं- यह तो मैं नहीं बतला सकता, क्योंकि उसी समय उसकी हालत शोचनीय थी। धीरे-धीरे एक प्रकार से वह खण्डहर में बदल चुका था। मैंने उसी खंडहरनुमा 'रेस्ट हाउस' के एक टूटे-फूटे कचरे में अपना आसन जमाया। खाना बनाने और दूसरे काम करने के लिये मैंने एक आदिवासी को कुछ दिन के लिये रख लिया। उसका नाम था- कैटा। कैटा वैसे तो था अधेड़ उम्र का, मगर शरीर में अभी भी भरपूर ताकत थी।

उस दिन कैटा ने और दिनों से अधिक जल्दी मेरा खाना बनाया। बिस्तर लगाया और बिना मुझे कुछ बतलाये बाहर निकल गया। मेरी समझ में नहीं आया कि उसे जल्दी किस बात की थी और बिना मुझे कुछ बतलाये रात के समय वह बाहर क्यों गया। मैंने चुपचाप खाना खाया और बिस्तर पर लेट गया। मगर नींद नहीं आयी। तन्द्रिल अवस्था में काफी देर तक मैं बिस्तर पर पड़ा रहा और उसी अवस्था में मुझे ऐसा लगा कि कोई मेरे कमरे में आया है। मैंने तेजी से पलटकर देखा - एक मझोले कद की साँवली युवती की पीठ मेरी ओर थी। सस्ती सी पीले रंग की सूती साड़ी उसने पहनी हुई थी। एक बार पूरे कमरे का चक्कर लगाने के बाद नदी की ओर खुलने खाली खिड़की के सामने जाकर वह खड़ी हो गयी। शायद रात का दूसरा प्रहर था। चतुर्दशी का चाँद पहाड़ों के पीछे से झाँकने लगा था। चारों ओर वातावरण में साँय-साँय हो रहा था। किसी के चेतन होने का कोई संकेत नहीं। कौन थी

वह लड़की ? इतनी रात को उस खामोशी में क्यों और किस लिये आयी थी ? मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मेरी नजर उसकी नंगी स्याह पीठ पर टिकी हुई थी। एकाएक पलटकर उसने मेरी ओर देखा। चमकता हुआ साँवला चेहरा, उभरा हुआ वक्ष, नुकीली नाक, मन-प्राण को एकबारगी सम्मोहित कर लेने वाली बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें। एक गहरी साँस ली उसने, जिससे उभरा हुआ वक्ष ऊपर उठ गया। फिर उसके होंठों पर एक मुस्कराहट बिखर गयी। मेरी आँखों से उतरती हुई वह मुस्कराहट मेरे रग-रग में फैलती चली गयी। एक अजीब-सा तनाव और एक अजीब-सी बेचैनी से दिल-दिमाग भर गया। सारा शरीर सनसनाने लगा। जी में आया कि बिस्तर से उठकर उस मूक निमन्त्रण को स्वीकार कर लूँ। मेरे इरादे को शायद वह भाँप गयी। कुछ ऐसा लगा कि सम्मोहन से भरी उसकी आँखें सहम-सी गयीं। पर उनमें अस्वीकृति का कोई संकेत नहीं उभरा था और भय की कोई छाया भी नहीं फैली थी —

भरे-भरे वक्ष, सम्मोहन आँखें, कामुकता भरी मुस्कराहट प्रतिपल मेरी उत्तेजना को बढ़ाती जा रही थीं। मैं अपने आपको कुछ संयत करने की चेष्टा की और माथे पर उभर आये पानी की बूँदों को चादर से पोंछकर उठ बैठा। वह प्रतीक्षारत पीठ अभी भी निश्चेष्ट-सी मेरी ओर थी। पीठ के नीचे उठे हुये पुष्ट नितम्बों में हल्की सी सिहरन हुई। मैंने कुछ बोलना चाहा, कुछ कहना चाहा, पर फिर न जाने क्यों मौन रह गया। मेरी नज़रें उस सोलह-सत्रह वर्षीया युवती की पीठ पर अभी स्थित थीं। निश्चय ही किसी का इन्तजार कर रही थी वह खिड़की के पास खड़ी होकर।

मेरा अनुमान सही निकला। चन्द मिनटों के बाद देखा कि एक लम्बी-चौड़ी काठी के व्यक्ति ने धीरे-धीरे चलकर कमरे में प्रवेश किया। उसका रंग गोरा था और आयु यही रही होगी बीस के आस-पास। उसके सिर पर बड़े-बड़े बाल थे, मगर मूँछ-दाढ़ी सफाचट थी। शरीर पर गेरुये रंग की चादर और लुंगी थी। वेश-भूषा से वह कोई साधु लग रहा था। उसने कमरे में घुसते-ही हौले से पुकारा 'देवली !'

अपना नाम सुनकर युवती ने पलटकर देखा और फिर लपककर उस व्यक्ति की चौड़ी छाती से लिपट गयी। काफी देर तक दोनों एक दूसरे के आलिंगन में बँधे रहे और फिर शुरू हो गयी वासना की आदम युगीय लीला। मेरा सिर झनझना उठा। मुँह दूसरी ओर फेर लिया। शायद वह कामलीला पूरी रात चलती, मगर नहीं- आर्तनाद करती हुई चीख की आवाज में वह लीला खत्म हो गयी। दूसरे क्षण फिर एक उसी तरह चीख गूँजी और शांत हो गयी। हड़बड़ाकर मैं उठ बैठा। मेरी आँखों के सामने बड़ा ही रोमांचकारी और भयानक दृश्य था। फर्श पर चारों ओर खून-ही-खून फैला था और उस खून में लिपटे हुए उस व्यक्ति के और उस युवती के शरीर छटपटा रहे थे। दोनों के सीने में चौड़े फाल का लम्बा छुरा घुसा हुआ था। देखते-देखते दोनों ने कुछ क्षण बाद दम तोड़ दिया।

दोनों को किसने मारा ? और क्यों मारा ? कुछ समझ न सका।

मैं एक पल भी वहाँ न ठहरा। तीर की तरह बाहर भागा। मगर जैसे ही 'रेस्ट हाउस' की सीढ़ी के करीब पहुँचा कि एकबारगी एक व्यक्ति से टकरा गया। वह एक लम्बा-चौड़ा

युवक था। हाथों में लगे हुए खून को गमछे से साफ कर रहा था। निस्सन्देह उसी ने कत्ल किया था उन दोनों का। मैं उससे टकराकर सीधे मुँह गिर पड़ा। और फिर कब चेतनाशून्य हो गया, पता नहीं। जब होश आया तो देखा सबेरा होने वाला था और कैटा मेरे करीब खड़ा था। होश में आते ही एकबारगी मैं चीख पड़ा - 'खून... खून...'

'खून' कहाँ बाबूजी ? कैटा बोला।

'भीतर कमरे में ! दो-दो खून एक साथ हो गया है।' भय से मैंने काँपते हुए कहा।'

'नहीं, कहीं नहीं खून हुआ है बाबूजी ! आप चलिये उठिये !' कैटा मेरी बाँह पकड़कर उठाते हुए बोला।

बड़ी ही आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय बात थी। सचमुच कमरे में रात को घटना का कहीं कोई चिन्ह नहीं था। रात मैंने जो कुछ देखा था, वह सब मेरे मन का भ्रम था, मेरे मन का विकार था या कोई दुःस्वप्न ? मैं सिर थामे काफी देर तक बैठा रहा। न वह भ्रम था, न वह विकार था और न था कोई दुःस्वप्न। सारी घटना सत्य थी। मगर वह घटी थी छह साल पहले। बाद में कैटा ने ही सारी बातें मुझे विस्तार से बतलाई।

देवली कैटा की एकमात्र इकलौती बेटी थी। देवली जब बारह साल की थी तभी उसकी शादी चेट्या से कर दी गयी थी। देवली और चेट्या बचपन से एक दूसरे को जानते थे। यह पहचान बाद में प्रेम में बदल गई थी। शादी के बाद दोनों खुलकर अवश्य मिलते थे, मगर गौना न होने के कारण देवली ससुराल अभी नहीं गयी थी। इसी बीच जबलपुर में चेट्या की नौकरी लग गयी और वह चला गया। दो-तीन महीने पर कभी घर आता और देवली से मिलता। देवली खुश थी। खुश होती क्यों न? चेट्या जब भी आता तो कभी रुपया देता तो कभी साड़ी-ब्लाऊज और श्रृंगार का सामान दे जाता। देवली चहककर उसके गले से लिपट जाती और फिर दोनों डूब जाते एक दूसरे के प्यार के सागर में।

उन्हीं दिनों एक विचित्र घटना घट गयी।

देवली पर किसी देवी की सवारी आने लगी। सोती तो खूब सोती, खाने लगती तो खूब खाती। सोने के बाद जब उठती तो उसका सिर झूमने लगता और उस स्थिति में जो कुछ वह बड़बड़ाती वह किसी की समझ में न आता। कैटा ने काफी इलाज कराया। ओझा और गुनियों को भी दिखाया मगर फायदा कुछ नहीं हुआ। आखिर थककर चुपचाप बैठ गया वह — उसी समय एक युवा संन्यासी जिसका नाम महेश गिरी था - गिरिनार से घूमता-घामता अमरकण्टक आया और एक झोपड़ी डालकर रहने लगा। उसने कुछ ऐसा अपना प्रभाव जमाया कि आस-पास के गाँव वाले उसके परम भक्त बन गये।

महेश गिरी इकहरे बदन का सजीला, सुन्दर और आकर्षक युवक था। उसकी आयु तीस साल से ज्यादा न थी। लोगों का कहना था कि वह युवा संन्यासी तांत्रिक भी था। नर-बलि देकर उसने कई तांत्रिक सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं। कैटा ने देवली को उसे भी दिखलाया था और जब उस तांत्रिक संन्यासी ने देवली को देखा तो देखता ही रह गया। हठात् उसके मुँह

से निकल पड़ा - ऐसी ही भैरवी की खोज में वह था और फिर उसने झूमती और बलखाती देवली का सिर अपनी गोद में रख लिया। उसके आदेश पर कमरे में कण्डे की आग सुलगायी गयी और फिर बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया गया। करीब दो घण्टे बाद जब दरवाजा खुला तो देवली बिल्कुल स्वस्थ और प्रसन्न थी। ऐसा लगा मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं था। चेहरा गुलाब की तरह खिला था और आँखों में एक खास चमक थी, जो किसी अभाव की पूर्ति के बाद ही आँखों में पैदा होती है।

संन्यासी महेश गिरि ने दरवाजा बन्द कर देवली के किस अभाव की पूरी की थी - यह तो किसी को मालूम न हो सका, मगर उसी दिन से देवली उस संन्यासी के पीछे दीवानी अवश्य हो गयी। पूरी-पूरी रात वह संन्यासी की बाँहों में पड़ी रहती और संन्यासी उसके रूप का, उसके सौन्दर्य का और उसके यौवन का छक कर रसपान करता।

कैटा ने काफी समझाने-बुझाने की चेष्टा की मगर उसका कोई प्रभाव देवली पर नहीं पड़ा, बल्कि उल्टे उसी को जली-कटी सुनने को मिली। देवली चमककर बोली, ‘ जिससे तू मेरी शादी की है, उसके पास भला मेरे लिये है क्या ? जो मुझे चाहिये वह दे सकेगा जिन्दगी भर छोकड़ा ?’

बात अपनी जगह सही थी। चेट्या शरीर से स्वस्थ अवश्य था मगर औरत की जवानी से भरी देह की भूख मिटा सकने में बिल्कुल असमर्थ था। देवली की देह की भूख उम्र के साथ बढ़ती ही जा रही थी और जब तन की ज्वाला को शान्त करने वाला वह युवा संन्यासी उसे मिल गया, तो फिर उसी की बाँहों में समाकर हमेशा के लिये उसी की हो गयी वह।

जब चेट्या को ये सारी बातें मालूम हुई तो पौरुष न रहने पर भी स्वाभिमान से उसका काला चेहरा तमतमा उठा और क्रोध से भर उठा। अपने अपमान का बदला लेने के लिये वह व्याकुल हो उठा। और फिर जो घटना घटी- उसे प्रेत-लीला के रूप में मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। एक साथ दो-दो कत्ल करने के जुर्म में चेट्या को फाँसी की सजा हुई और उसे एक दिन फाँसी पर लटका दिया गया।

एक प्रकार से यह कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। मगर उसने मेरे सामने कई प्रश्नचिन्हों को खड़ा कर दिया था। छह वर्ष पहले की घटी उस घटना को कैसे देखा मैंने उस रात ? घटना अपनी जगह बिल्कुल सत्य थी। मैंने जो कुछ देखा था वह भी सत्य था मगर यह सम्भव कैसे हुआ ?

इन तमाम प्रश्नों को लेकर मैं पूरे चार साल तक रहस्यवाद से संबंधित पुस्तकों का अध्ययन करता रहा, मगर समाधान नहीं हुआ मेरा। उन्हीं दिनों मेरी भेंट एक तांत्रिक संन्यासी से हो गयी। उसका नाम था - भुवनेश्वर बाबा। वे सितलाघाट मुहल्ले में एक मकान किराये पर लेकर रहते थे। तंत्र-मंत्र में उन दिनों विशेष रुचि नहीं थी मेरी, पर हाँ, जिज्ञासा और कौतूहल अवश्य था। उसी जिज्ञासा और कौतूहलवश कभी-कदा चला जाया करता था बाबा के पास।

एक दिन बातों के मध्य मैंने वह घटना सुनायी और उसका समाधान चाहा, तो बाबा पहले

थोड़े गम्भीर हो गये। फिर बोले, 'यह कोई आश्चर्यजनक अथवा असम्भव बात नहीं है। जहाँ जो घटना अचानक घटती है वहाँ उस स्थान पर दीर्घकाल तक के लिये अपना अमिट छाप छोड़ देती है, जिसे विशेष साधनों द्वारा पुन: देखा जा सकता है।

'क्या यह सम्भव है ?'

'हाँ बिल्कुल सम्भव हाँ ! जो इसके विज्ञान को जानते-समझते हैं - वे भूतकाल में घटी हुई किसी भी घटना को वर्तमान में प्रत्यक्ष कर सकते हैं।'

'वह विज्ञान क्या है ?'

'वह वियोग-तंत्र के अन्तर्गत एक विशिष्ट विज्ञान है, जिसका नाम है - 'क्षण विज्ञान'। उसके सिद्धान्त के अनुसार, जिस वायवीय वातावरण में मनुष्य रहता है - उसमें एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा घनीभूत है। वह 'ईथर' से भी सूक्ष्म और अधिक शक्तिशाली है। उसके परमाणु दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के परमाणु ध्वनि को ग्रहण करते हैं और दूसरे प्रकार के परमाणु दृश्य को। दोनों का ग्रहण होता है तो एक ही साथ, मगर उसके प्राकट्य में अन्तर हो जाता है समय का। प्रकाश की गति में और ध्वनि की गति में एक मील प्रति सेकेण्ड का अन्तर समझना चाहिये। जितनी तेजी से घटना घटती है उसी तेजी से वे परमाणु दृश्य और ध्वनि को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार के दृश्य और इस प्रकार की ध्वनियाँ वातावरण में काफी दिनों तक रहती हैं।'

बाबा की ये सारी सैद्धांतिक बातें मेरे गले के नीचे नहीं उतरीं। शायद बाबा मेरे भाव को समझ गये। 'बोले, इसी मकान में और इसी कमरे में दस वर्ष पूर्व एक नवयुवती की हत्या कर दी गयी थी।'

'अच्छा।' मैं आश्चर्य से बोला, 'मगर मैं इसी मुहल्ले के करीब रहता हूँ। मुझे इस हत्या का पता नहीं चला।'

'चलता भी कैसे ? मारकर लोगों ने इसी मकान में लाश दफना दी और सबेरा होने पर यह अफवाह उड़ा दी गयी थी कि वह युवती मालमत्ता लेकर कहीं भाग गयी।'

'हाँ आपने ठीक कहा- मैंने भी ऐसा ही सुना था। मगर आप कहना क्या चाहते हैं ?'

'क्या तुम दस वर्ष पूर्व के उस मरण-दृश्य को देखोगे ?'

'क्या आप उसे दिखा सकते हैं ?'

'क्यों नहीं ?' बाबा हँसकर बोले, 'अभी दिखा सकता हूँ।'

बाबा का इतना कहना था कि मैंने देखा - कमरे के एक कोने में दो व्यक्ति बैठे शराब पी रहे हैं। थोड़ी देर बाद एक युवती कमरे में आयी और वह भी बैठ कर उन लोगों के साथ शराब पीने लगी। बाद में तीनों नशे में बहकने लगे। एक युवती की ओर मुँह करके बोला, 'क्यों री, पियरिया ! तू मेवा का साथ छोड़ेगी या नहीं, बोल, आज साफ-साफ मुझे बता दे।'

नशे में झूमती हुई युवती ने जवाब दिया, 'नहीं, कभी नहीं मैं मेवा का साथ नहीं छोड़ूँगी। वह मेरा ब्याहता है। ब्याहता का साथ कैसे छोड़ दूँ, मुझसे... ऐसा...।'

युवती का वाक्य अभी पूरा नहीं हुआ था कि वह व्यक्ति अपनी जगह से उठा और उछलकर युवती की छाती पर चढ़ बैठा और दोनों हाथों से उसका गला दबाने लगा। दूसरे क्षण, गों-गों की आवाज से वातावरण गूँज उठा। थोड़ी ही देर बाद युवती का सिर एक ओर लटक गया। वह मर चुकी थी। अचानक सारा दृश्य मेरे सामने से गायब हो गया। वातावरण भी पहले जैसा हो गया।

जैसे 'क्षण विज्ञान' के सिद्धान्त के अनुसार बाबा ने पूर्व घटना को वर्तमान में परिवर्तित कर दिखलाया था उसी प्रकार उस विज्ञान के आधार पर किसी भी घटना को वर्तमान में प्रत्यक्ष किया जा सकता है। यहाँ यह बतला देना जरूरी है कि वायवीय वातावरण में विद्यमान वह विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा का उद्गम विचारों की तरंगें भी है। विचारों के घनीभूत होने पर उनकी तरंगों से पैदा होकर वह ऊर्जा की कर्णिका द्वारा बाहर बिखर जाती है और बाह्म ऊर्जा नेत्रों से मिलकर विचारों को सूक्ष्म आकार अथवा रूप भी दे देती है। इस तथ्य का पता आपके वैज्ञानिकों को लग चुका है। इस पर प्रयोग भी किये जा चुके हैं और सफलता भी मिली है।

१५ अगस्त, १९६३ को अमेरिका के टोरेंटो टेलीविजन स्टूडियो में एक ट्रक ड्राइवर को लाया गया, जिसका नाम था थियोडर सेरीओस। अनेक वैज्ञानिकों और गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में उसके हाथ में एक बिल्कुल नया पोलारायड कैमरा दिया गया। सेरीओस ने कैमरे के लेंस को अपनी आँखों के सामने रखकर एकाध मिनट तक उसको घूरा और फिर शटर दबा दिया। भौतिक नियमों के अनुसार फोटो आना चाहिए था सेरीओस के नेत्रों का। पर फोटो आया - एक किलेनुमा इमारत का। कैमरे के सामने घूरते समय सेरीओस ने इसी इमारत की कल्पना की थी।

इस सन्दर्भ में यह भी जान लेना चाहिये कि वह ऊर्जा मस्तिष्क में बराबर केन्द्रीभूत होती रहती है और वहाँ से बराबर विकीर्ण भी होती रहती है।

'क्षण विज्ञान' के सिद्धान्तों के आधार पर देहातीत अवस्था का अध्ययन करने पर पता चलता है कि आँखों में दिखलाई पड़ने वाली प्रेत-लीला के मूल में बाह्म ऊर्जा ही एकमात्र है। किसी भी घटना के मूल में भय, क्रोध, घृणा, आवेश, उत्तेजना, स्नेह, प्रेम तथा करुणा आदि मनोवृत्तियाँ रहती हैं। इन्हीं मनोवृत्तियों के अनुसार विचारों का निर्णय होता है। जिस समय विचारों में जैसी वृत्तियाँ रहेंगी उसी के अनुसार विचार तरंगों में वे ऊर्जा पैदा होंगी और पैदा होकर अदृश्य रूप से वातावरण में आकार का निर्माण भी करेंगी। घनीभूत विचारों में ही विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा का आविर्भाव होता है। यदि घनीभूत विचारों में हमारे संस्कार और हमारी अच्छी-बुरी वासनायें भी रहती हैं, यदि ऐसे विचारों में संकल्प की दृढ़ता है, तो वे ऊर्जा की सहायता से ईथर में बराबर तब तक बने रहेंगे जब तक हमारी मृत्यु नहीं हो जायेगी।

मृत्यु के बाद ऐसे विचार ही हमारे लिये वातावरण का निर्माण करते हैं। शास्त्रों के अनुसार वे स्वर्ग नर्क की रचना करते हैं हमारे लिये। वास्तविकता तो यह है कि न कहीं स्वर्ग है और न तो कहीं है नर्क का अस्तित्व। जो कुछ भी हैं वे हमारे अच्छे-बुरे कर्म और अच्छे-बुरे संस्कार — स्वर्ग-नर्क की कल्पना इसलिए की गयी है कि हम बुरे विचारों, कर्मों और संस्कारों से बचें और अच्छे विचारों, कार्यों और संस्कारों का निर्माण करें।

मरने के कुछ समय पूर्व, मरने के क्षण और मरने के बाद प्राणों की सहायता से हमारे तात्कालिक विचारों, भावनाओं, संस्कारों और मन: स्थितियों को अदृश्य रूप से विद्यमान वे घनीभूत विचार पकड़ लेते हैं और उसी स्थान पर ईथर में तुरन्त हमारे लिये वातावरण का निर्माण करने लग जाते हैं। यदि हमारे संस्कार, विचार और कार्य बुरे हैं, तो निस्सन्देह वे हमारे लिये 'नर्क' के वातावरण का निर्माण करेंगे। यदि इनके विपरीत हमारे संस्कार, हमारे कार्य और विचार अच्छे हैं, तो हमारे लिये वे 'स्वर्ग' की रचना करेंगे। जब तक वे क्षय नहीं हो जायेंगे तब तक वैसा ही वातावरण हमारे लिये बना रहेगा। इन दोनों स्थितियों में और इन दोनों प्रकार के वातावरण में आत्मा जिस शरीर में रहती है, उसे वासना शरीर अथवा प्रेत शरीर कहते हैं। कर्म, विचार, संस्कार अच्छे हों या बुरे - हमारी वासना के अनुसार ही पैदा हुये हैं। वासना हर जगह है और हरेक अच्छी-बुरी मनोवृत्तियों के मूल में है। कामनाओं का भी जन्म वासना के अनुसार होता हैं। यदि हमें स्वर्ग की या मोक्ष की कामना है, तो वह भी वासना ही समझी जायेगी। मरने के बाद हमें वासना और कामना के अनुरूप ही प्रेत शरीर मिलेगा और उस प्रेत शरीर में हमें तब तक रहना पड़ेगा जब तक हमारी अच्छी या बुरी वासनायें शिथिल न पड़ जायें, और जब तक हमारी आत्मा के लिये सूक्ष्म शरीर की उपलब्धि न हो जाये। इसीलिये हम सब भावी प्रेत हैं। चाहे हम अच्छे हों या बुरे। चाहे धर्मात्मा हों या पापात्मा। चाहे हम योगी हों या भोगी। शरीर छूटने पर हमें प्रेतयोनि स्वीकार करने के लिये वासनावश बाध्य होना ही पड़ेगा। भले ही उसकी अवधि कम हो।

यदि हमारे विचार, कर्म और संस्कार सुन्दर हैं तो प्रेतयोनि में हम वैसे ही सुन्दर-सुखद वातावरण में रहेंगे और अवधि समाप्त हो जाने पर सूक्ष्म शरीर स्वीकार कर अपने संस्कार से संबंधित किसी भी लोक-लोकांतर में चले जायेंगे और वहाँ रहने के बार फिर मानव-शरीर में जन्म ले लेंगे। यदि हमारे विचार, संस्कार और कर्म अच्छे नहीं हैं तो प्रेतयोनि में हमें काफी क्लेश और यातना सहनी पड़ेगी और जब हमारी असद् वासनायें क्षीण हो जायेंगी, तब हमारी आत्मा प्रेतयोनि त्यागकर सूक्ष्म शरीर को स्वीकार कर लेगी और उसमें रहने के बाद मानव शरीर में जन्म लेगी। मगर हमारा वह जन्म निम्न कुल और कुत्सित वातावरण में होगा और जीवन भर मानसिक यंत्रणा और शारीरिक क्लेश भोगना पड़ेगा।

इन दोनों स्थितियों के अलावा आत्मा की एक और स्थिति है। यदि मरने के बाद हमारी वासना का वेग अति प्रबल है तो प्रेतयोनि से सूक्ष्म शरीर में न जाकर पुन: हम मानव-शरीर को ग्रहण कर अच्छे-बुरे कुल, परिवार और अच्छे-बुरे वातावरण में जन्म ले लेंगे। मगर दोनों अवस्थाओं में हमारी आयु कम होगी। अल्पावस्था में ही हम फिर शरीर छोड़ देंगे।

देहातीत अवस्था का अध्ययन करने के बाद मुझे एक बात और मालूम हुई - वह यह कि यदि हमारी मृत्यु विष खाने, पानी में डूबने, फाँसी लगने से होती हैं अथवा किसी के द्वारा हमारी हत्या होती है अथवा इसी प्रकार की किसी दुर्घटना में मृत्यु होती है तो हमारी आत्मा बराबर उसी स्थान पर रहेगी, जहाँ हमारा शरीर हमसे अलग हुआ होगा। और हम बराबर वही यातना भोगते रहेंगे - जो हमें मृत्यु के समय हुई थी। अगर हमारे संस्कार, विचार और हमारी भावना, कामना, वासना से मिलता-जुलता कोई व्यक्ति उस स्थान पर आयेगा, तो उसे प्रेतलीला के रूप में - वही दृश्य, वही रूप दिखलायी पड़ेगी, जो हमारी मृत्यु के समय वातावरण में थे और वे आवाजें भी सुनायी पड़ेंगी, जो उस स्थिति में पैदा हुई होंगी।

कहने की जरूरत नहीं - इस प्रकार की प्रेतात्मायें भयंकर मानसिक यंत्रणायें भोगती हैं। अकाल मृत्यु के कारण वासना के वशीभूत होकर वे बराबर ऐसे व्यक्ति की खोज में रहती हैं, जिसकी वासना उससे मिलती-जुलती हो। यदि ऐसा अभागा व्यक्ति उन्हें मिल गया संयोगवश तो वे तुरन्त उसमें प्रवेश कर जाती हैं। इससे उनको दो लाभ होते हैं - पहला यह कि वे उस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर अपनी सीमा से बाहर आ जाती हैं और उसी प्रकार स्वतन्त्रता का अनुभव करती हैं, जिस प्रकार जेल से निकला हुआ कैदी करता है। दूसरा यह कि उस व्यक्ति के माध्यम से अपनी वासनाओं एवं इच्छाओं को पूर्ण करती हैं। इसी को कहते हैं - 'प्रेत-बाधा।' अब यह कथा-प्रसंग यहीं खत्म होता है। मगर हाँ, खत्म करने के बाद मैं आपसे निवेदन करूँगा कि इसे पढ़ने के बाद आपके मस्तिष्क में तर्कों का तूफान उठ खड़ा हुआ होगा और उस तूफान ने अनेक प्रश्नों को भी जन्म दिया होगा और प्रश्नों का जवाब पाने के लिये आप बेचैन भी हो गये होंगे। मगर बन्धु, मुझे इस संबंध में पत्र लिखने की जरूरत नहीं। आप रचनायें इसी प्रकार बराबर पढ़ते रहिये, किसी न किसी रचना में आपको अपना जवाब मिल ही जायेगा।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से मृतात्माओं से सम्पर्क करने की सहज वैदिक विधि को प्राप्त किया, जिसका विस्तृत विवरण भविष्य में एक ग्रन्थ रूप में साधकों के लिए उपलब्ध होगा।

अध्याय ९
एक तांत्रिक की अतृप्त आत्मा

सोवियत संघ के एक इलेक्ट्रानिक-विशेषज्ञ वैज्ञानिक सेमयोन किर्लियान ने फोटोग्राफी की एक विशेष विधि का आविष्कार कर प्राणियों और पौधों के सान्निध्य में होने वाले सूक्ष्म विद्युत संबंधी कार्य-कलापों का सफल छायांकन किया है। यह इस बात की पुष्टि करता है कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं। पहला - भौतिक शरीर, जो आँखों से दिखलायी देता है, और दूसरा - सूक्ष्म शरीर, जिसकी सारी विशेषतायें प्राकृतिक शरीर जैसी होती हैं, पर

आँखों से नहीं दिखायी देता। वैज्ञानिकों के अनुसार सूक्ष्म शरीर किसी ऐसे सूक्ष्मीकृत पदार्थ का बना होता है, जिसके इलेक्ट्रान ठोस शरीर के इलेक्ट्रानों की अपेक्षा अधिक तीव्रगति से चलायमान होते हैं। उनके अनुसार सूक्ष्म शरीर अस्थायी तौर पर भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

भूत-प्रेत का मतलब है - सूक्ष्म शरीरधारी आत्मा। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि भूत-प्रेत के बारे में जिन नयी-नयी बातों का पता वैज्ञानिकों को नये सिरे से लग रहा है, वे हमारे पूर्वजों को हजारों साल पहले ही ज्ञात थीं। जीवित मनुष्य और मृत मनुष्य में सिर्फ शरीर की दृष्टि से अन्तर होता है। पहला स्थूल शरीरधारी है, दूसरा सूक्ष्म शरीरधारी। अपने तीस वर्ष के परामनोवैज्ञानिक खोज-काल में मुझसे लगभग चार सौ विभिन्न प्रेतात्माओं तथा सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं का सम्पर्क हुआ है। मैंने विशेष रूप से इस बात का अनुभव किया है कि जीवित और मृत व्यक्ति में बुनियादी तौर पर कोई अन्तर नहीं होता। अपने खोज के ही सिलसिले में मुझे एक महत्वपूर्ण बात यह ज्ञात हुई कि पृथ्वी के कक्ष के बाहर एक प्रभा-मण्डल है। सम्भवत: जिसकी रचना सूक्ष्मतम विद्युत चुम्बकीय कणों से हुई है।

वह प्रभा-मण्डल बुद्धिजीवी आत्माओं का केन्द्र है। वे अपने विचारों, भावों और सिद्धान्तों को अपने अनुरूप माध्यमों से भूलोक में प्रकट किया करती है। कभी-कभी तो माध्यमों के द्वारा वे लेखन-कार्य भी कराती है।

अंग्रेजी कथा साहित्य में 'टेल्का' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास काफी प्रसिद्ध है। उस उपन्यास की लेखिका हैं - श्रीमती कूरन। उन्होंने अपने उपन्यास को भूतों के निर्देशानुसार लिखा है।

श्रीनगर निवासी पं० गोपीकृष्ण 'कुण्डलिनी योग' के विशिष्ट विद्वान् हैं। इस गम्भीर विषय पर उन्होंने जो कुछ भी लिखा है - अशरीरी आत्माओं की प्रेरणा से लिखा है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि काशी की प्रसिद्ध माँ आनन्दमयी भी किसी अशरीरी आत्मा की प्रेरणा से अरबी तथा अन्य भाषाओं में लिखे गये ग्रंथों के उद्धरण श्रोताओं को सुनाया करती थीं। वे स्वयं इन भाषाओं से अपरिचित थीं।

इस शताब्दी की सर्वाधिक विख्यात माध्यम है 'श्रीमती रूथ मांट गुमरी' जिन्होंने अमेरिका के दो राष्ट्रपतियों- रूजवेल्ट और कैनेडी के अन्त की भविष्यवाणी - 'भूत' जगत् से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर काफी पहले कर दी थी। श्रीमती रूथ ने स्व० आर्थर फोर्ड के भूत द्वारा लिखायी गयी एक पुस्तक 'ए वर्ल्ड बियाँड' का सम्पादन किया है।

कहने की जरूरत नहीं कि मेरे पास ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं, जिनका उल्लेख मैं अन्य किसी कथा में करूँगा। आगे लिखने से पहले मैं आपको यह भी बतला दूँ कि मेरी कथा जिस आत्मा के संबंध में होती है, मैं उसी की प्रेरणा से रात ग्यारह बजे से दो बजे के बीच उस कथा को लिखता हूँ। तीन घण्टे तक बराबर अबाध गति से मेरी कलम चलती रहती है। यदि उस समय कोई मेरे अध्ययन कक्ष में आ जाता है, तो उसे विद्युत-आघात जैसा अनुभव

होता है। आधुनिक परलोकवाद का जन्म १९वीं सदी के मध्य में अमेरिका में हुआ था। आज विश्व के सैकड़ों केंद्रों में परलोक विद्या का अध्ययन होता है और परलोक आत्माओं से सम्पर्क किया जाता है। इसमें सर्वाधिक विख्यात और विशाल केन्द्र है, अमेरिकी परलोक समिति का लिलिडेल स्थित केन्द्र। यहाँ विशेष विधि से प्रेतात्माओं के छायाचित्र भी खींचे जाते हैं।

प्रेतात्माओं के छायाचित्र खींचे जा सकते हैं इसके सबसे बड़े साक्षी हैं विश्व-विख्यात वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक्स और सर आलिवर लाज — सर क्रुक्स को प्रेत-जगत् से अपनी मृत पत्नी के छायाचित्र प्राप्त हुए थे।

विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिकों और परामनोवैज्ञानिकों का एक दल अमेरिका के 'साइकिक रिसर्च फाउण्डेशन' के तत्वावधान में प्रेतात्माओं के अध्ययन में व्यस्त हैं। उनका कहना है कि प्रेतात्मायें हमारी भावनाओं से प्रभावित होती हैं। वे प्रभावित व्यक्ति के मन में ही जन्म लेती हैं और उनके सारे कार्य-कलाप उस व्यक्ति की भावनाओं के अनुरूप ही होते हैं। बाह्य जगत् की किसी घटना के फलस्वरूप न भूतों का जन्म होता है और न ही उससे वे प्रभावित ही होते हैं।

वैज्ञानिक यह मानते हैं कि मानव एक वैद्युद्वैगिक प्राणी है। वह सदा अदृश्य ऊर्जाओं के सागर में तैरता रहता है। प्रत्येक मानव अपने विचारों के अनुसार अपनी इन्द्रियों द्वारा इन ऊर्जाओं को ग्रहण करता है और उनमें इच्छानुसार परिवर्तन करके बाह्य जगत् पर उनका प्रक्षेपण करता रहता है। भूतों और प्रेतों का जन्म ऐसे ही प्रक्षेपणों के अनुसार होता है। वैज्ञानिक इस चौंका देने वाले निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इस प्रकार के प्रक्षेपणों के दौरान प्रेत-बाधित व्यक्ति के शरीर से जो अदृश्य ऊर्जा विसर्जित होती है वह परमाणवीय विस्फोट से विसर्जित ऊर्जा के समान प्रचण्ड और विनाशकारी होती है। मैंने जब इस तथ्य पर खोज की, तो मेरे सामने एक बहुत बड़ा रहस्य खुला। वह यह कि अधिकांश प्रेतात्मायें शायद इसी कारण विनाशकारी कार्यों में ही अधिक रुचि लेती है। प्रेतों के प्रत्येक कौतुक के पीछे एक और भी शक्ति है, जो चेतोपशीय केन्द्रों को कोशिकाओं से प्राप्त कर शरीर के ताप को विद्युत् शक्ति में परिवर्तन कर देती है। जब इस मानसिक शक्ति के सहारे बाह्य जगत् पर कोई प्रक्षेपण किया जाता है, तो मस्तिष्क इलेक्ट्रानिक कंप्यूटरिंग यंत्र के समान सक्रिय हो जाता है।

सन् १९४४ में विश्वविख्यात अमेरिकी भौतिकशास्त्री जार्ज गैमो ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। जिसके अनुसार यह सम्भव है कि परमाणुओं के कोई वर्ग के समाघात में अन्तर्वर्तित प्रतिरूप धारण करने पर सारी शक्ति एक ही स्थल पर केंद्रित हो जाये। ऐसी स्थिति में कौतुक होंगे। जैसे - अंगीठी के कोयले अपने आप जलने लगे, गिलास का पानी अपने आप उबलने लगे, एकाएक ईंट-पत्थरों की बारिश होने लगे, मल-मूत्र गिरने लगे, कपड़ों में आग लग जाये। वे सब प्रेतात्माओं के कौतुक जैसे ही होंगे। मगर मात्र संयोग से परमाणुओं की ऐसी सक्रियता की सम्भावना बहुत कम है। पर इरादी कोशिशों में से ऐसा कभी भी किया जा सकता है। इस संदर्भ में मैं आपको यह भी बतला दूँ कि प्रेतों के

कारण हुई अलौकिक और असामान्य घटनायें चंचल मन के व्यक्ति की ऐसी ही इरादी कोशिशों के परिणामस्वरूप होती हैं। प्रेतलीला और प्रेतों के कौतुकों की यही वैज्ञानिक व्याख्या है।

ऊपर जिस प्रभामण्डल की चर्चा की गयी है उसमें ऐसी भी प्रबुद्ध बुद्धिजीवी प्रेतात्मायें रहती हैं, जो अपने अधूरे छोड़े गये महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिए अपने अनुकूल माध्यम के सामने सशरीर प्रकट हो जाया करती हैं। मगर ऐसा बहुत कम ही होता है, क्योंकि पार्थिव शरीर का अस्थायी निर्माण, वही प्रेतात्मा कर सकती है, जो वातावरण में विकीर्ण विद्युत् ऊर्जाओं में बिखरे पंचभौतिक तत्वों के अणु-परमाणुओं को एकत्र अथवा संघटित करने में समर्थ है। लगभग १५-१६ वर्ष पहले मेरे जीवन में एक ऐसी ही रोमांचकारी और अविश्वसनीय घटना घटी थी। एक तांत्रिक की भटकती हुई प्रेतात्मा ने अपने पार्थिव शरीर में प्रकट होकर मेरे द्वारा अपने एक अधूरे महत्वपूर्ण कार्य को पूरा कराया था।

कथा इस प्रकार है -

उन दिनों मैं तंत्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तंत्रालोक' का संस्कृत से हिन्दी अनुवाद कर रहा था। इस दिशा में मेरे सहायक थे - बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् चारुचन्द्र मुखोपाध्याय। तंत्रालोक, तंत्रशास्त्र का अत्यधिक कठिन और जटिल ग्रन्थ माना जाता है। इसलिए तीसरे खण्ड के अनुवाद में रुकावट पैदा हो गयी। चारु बाबू भी विषय को न समझ सके और न मुझे ही समझा सके।

एक दिन चारु बाबू ने एक तांत्रिक विद्वान् की चर्चा मुझसे की। उनका नाम था दुर्गाप्रपन्न भट्टाचार्य। चारु बाबू ने बतलाया कि वे ही तंत्र के इस गम्भीर विषय को समझाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

मैं दुर्गाप्रपन्न महाशय से मिलने के लिए आतुर हो उठा। चारु बाबू से पता-ठिकाना लेकर दूसरे ही दिन मैं उनके दर्शन के लिए कलकत्ता से रवाना हो गया। चलते समय चारु बाबू ने उनके नाम एक पत्र भी लिख कर मुझे दे दिया था। नैहाटी स्टेशन पर उतरकर नाव से एक बरसाती नदी पार करनी थी। नैहाटी नदी पार करने के बाद लगभग डेढ़-दो मील पैदल चलना था। जब मैं नदी के किनारे पहुँचा, उस समय शाम के ५ बने थे। देखते ही देखते साँझ की स्याह कालिमा घिर आयी। नदी के उस पार नैहाटी का श्मशान था। वहीं से पगडण्डीनुमा रास्ता - घने जंगलों के बीच से होकर उस गाँव की ओर जाता था, जहाँ दुर्गाप्रपन्न रहते थे। रास्ते तक पहुँचते ही साँझ की स्याही रात के अंधकार में बदल गयी। चारों ओर गहरी निस्तब्धता थी। नजर उठाकर एक बार चारों ओर काफी दूर तक देखा। कोई नजर नहीं आया। थोड़ा भय लगा, मगर फिर साहस कर जल्दी-जल्दी पैर उठाता हुआ चल पड़ा। सोचा, आधे घण्टे में सोनापुकुर पहुँच जाऊँगा, फिर भट्टाचार्य का मकान खोजते देर न लगेगी। परन्तु लगातार दो घण्टे तक चलने पर भी न रास्ता खत्म हुआ और न सोनापुकुर गाँव ही दिखलायी पड़ा। क्या रास्ता भूल गया... एकबारगी सिहर उठा मन। क्या करूँ अब... ? 'कहिये ! रास्ता भूल गये क्या ? कहाँ जाना है आपको ?' यह आवाज

सुनकर मैं चौंक पड़ा। कोई उस स्याह अँधेरे में चुपचाप आकर मेरे पीछे खड़ा हो गया था। मुझे हिम्मत ही नहीं पड़ी कि गर्दन तक घुमाकर पीछे की ओर देख सकूँ। आखिर मैंने डरते-डरते पीछे घूम कर देखा। वहाँ एक लम्बा-चौड़ा, काठी का गौरांग व्यक्ति मौजूद था, जिसके गर्दन तक बिखरे काले-घुँघराले बाल, कमर में पीले रंग की रेशमी धोती के साथ उसके हुलिये को भयानक बना रहे थे। धोती का दूसरा छोर पीठ पर लपेट लिया गया था। गले में रुद्राक्ष की माला थी एवं मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका। घनी भौंहों के नीचे गढ़े में धँसी हुई आँखों की पैनी दृष्टि मेरी ओर इस तरह केंद्रित थी, मानो वह मेरा पिछला सारा इतिहास अपनी आँखों से पढ़ लेना चाहता हो।

'ओह ! अब मैंने समझा ! आप कलकत्ता से आये हैं। दुर्गा भट्टाचार्य से मिलना है। है ... न ?' मेरे कुछ पूछने के पहले ही वह व्यक्ति बोल पड़ा। मैं हैरान था कि उसे कैसे यह सब मालूम हुआ ? ' घबराइये नहीं ! जिससे मिलने आये हैं, वह आपके सामने खड़ा है।'

' ऐं... आप... आप ही दुर्गाप्रपन्न जी हैं ?' मैं आश्चर्यचकित होकर हकलाते हुए बोला।

'हाँ भाई ! मैं ही हूँ।'

अँधेरे में ही झुक कर मैंने चरण-स्पर्श किया।

'ठीक है, ठीक है, आओ चलो मेरे साथ।' स्वर में कोमलता और अपनापन था।

रास्ते में फिर उन्होंने अपने आप ही बोलना शुरू किया - 'तंत्रालोक समझ में नहीं आया न ? ...बड़ा कठिन है उसका विषय। जल्दी अर्थ नहीं लगता। ...मेरी भी कभी इच्छा थी कि उसका सरल बँगला या हिन्दी में अनुवाद करूँ, परन्तु यह इच्छा पूरी न हो सकी।'

हे भगवान्! कैसे सारी बातें मालूम हो गयीं इन महाशय को ? मैं आश्चर्य में पड़ गया, फिर सोचा तांत्रिक है, किसी चमत्कारी तंत्रविद्या के जरिये मालूम कर लिया होगा।

करीब दस मिनट ही चलने के बाद सामने केले का एक सुन्दर बगान दिखलायी पड़ा। उस घने बगान के पीछे पीले रंग का एक छोटा-सा एक मंजिला मकान था। भट्टाचार्य महाशय का निवास-स्थान वही था। मकान के सामने फूलों की क्यारियाँ थीं। आकाश में शुक्लपक्ष का चाँद निकल आया था। उसकी रुपहली चाँदनी में क्यारियों में खिले हुए फूल बड़े मोहक और सुन्दर लग रहे थे। वातावरण में सिहरन और एक विचित्र-सी खिन्नताभरी उदासी थी। मकान में छोटे-बड़े चार कमरे थे। एक कमरे में ठसाठस पुस्तकें भरी पड़ी थीं। दूसरे कमरे में काली की मूर्ति स्थापित थी। देखा- मूर्ति के सामने शराब की दो-तीन खाली बोतलें पड़ी थीं। कुछ सूखे-मुरझाये फूल भी बिखरे थे।

भीतर घुसते ही भट्टाचार्य महाशय ने आवाज दी - 'श्यामला ...ओ श्यामला।'

दूसरे ही क्षण १८-२० वर्षीया एक नवयुवती सामने वाले कमरे से निकलकर आ खड़ी हुई। बड़ी सुन्दर और आकर्षक थी वह। बंगाल का सारा सौन्दर्य जैसे उसमें भरा था।

'यह मेरी भैरवी है, श्यामला। तंत्र की दीक्षा लेकर विधिवत् साधना कर रही है।' -

भट्टाचार्य ने बतलाया।

मैंने श्यामला की ओर देखा। साधना के दिव्य तेज से उसका चेहरा दप-दपा रहा था। आँखों की ज्योति में प्रखरता थी। भट्टाचार्य जी ने इशारे से कुछ कहा —

कुछ ही देर बाद श्यामला हाथ में भोजन की थाली लिये आ गयी। उस समय मुझे बड़ी जोर की भूख लगी थी। भोजन में सभी कुछ था। पूड़ी-कचौड़ी, दो सब्जियाँ, रायता, अचार, दही, संदेश और एक कटोरी में खीर भी। इतनी जल्दी इतना व्यंजन कैसे तैयार हो गया ? आश्चर्य हुआ। भोजन के बाद मैंने जान-बूझकर 'तंत्रालोक' की चर्चा छेड़ दी। फिर तो दुर्गाप्रपन्न भट्टाचार्य उसके जटिल विषय पर धाराप्रवाह बोलने लगे। उनकी भाषा बड़ी ही सरल थी जिसे समझने में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं था। मैंने कलाई घड़ी की ओर देखा, एक बजने वाला था। तीन घण्टे के भीतर ही सब कुछ समझा दिया, उस महान् तांत्रिक ने। 'तंत्रालोक' की सारी जटिलता दूर हो गयी थी। विषय सरल हो गया था। इसके बाद साधना-प्रसंग उठा। मैंने जान-बूझकर उक्त प्रसंग छेड़ दिया था।

भट्टाचार्य जी का चेहरा विकृत हो गया। थोड़ी देर चुप रहे, फिर कहने लगे- 'तुम मिल गये, बड़ा अच्छा हुआ ! अवसर भी अनुकूल है। तुमको साधना की कथा सुनाकर इस भटकते हुए जीवन से मुक्ति पा लूँगा। पिछले दस साल से इसी श्मशान में भटक रहा हूँ मैं। समझे न ?'

फिर दीर्घ श्वास लेते हुए आगे बोले - 'तांत्रिक पुस्तकों के बराबर अध्ययन से तांत्रिक साधना की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। सोचा, साधना कर सिद्ध बनूँगा और फिर जी-भर कर संसार के सारे ऐश्वर्य का भोग करूँगा। उस समय मेरी बराबरी कौन करेगा ? मेरी बेचैनी बढ़ती ही गयी। मगर उस समय मुझे क्या पता था कि भोग की लालसा से तांत्रिक साधना करने के फेर में सिद्धि मिलनी तो दूर रही, धीरे-धीरे मुझे अपना सर्वस्व गँवा देना पड़ा।'

आखिर एक दिन घर-बार छोड़कर निकल पड़ा गुरु की खोज में। बिना गुरु की तांत्रिक साधना कभी भी सफल नहीं होती। सुना था कि वक्रेश्वर के श्मशान में एक साधु रहते हैं। वे श्मशान में नंगे लेटे रहते हैं। कभी किसी ने भोजन दे दिया तो खा लिया अन्यथा वैसे ही रह गये। मुर्दे का मांस, लता-पत्र तथा विष्ठा तक खाने में उन्हें एतराज नहीं था। कोई अरुचि नहीं थी। वह इतने वीतराग थे। पहले तो दर्शन ही नहीं हुए मुझको। लगातार पन्द्रह दिन धरना देने के बाद तब जाकर दर्शन मिला। विशाल शरीर, पैनी दृष्टि, पागलों जैसी हरकतें - मगर पागल नहीं थे वे। मेरी ही आँखों के सामने एक दिन वे सियार का रूप धारण कर जंगल में घुस गये। आखिर में जिसकी तलाश में था वह अचानक मुझे मिल गये थे। किन्तु समस्या यह थी कि उन्हें गुरु बनाया कैसे जाये ? वे महाशय किसी भी तरह हत्थे पर चढ़ते ही नहीं थे। कुछ कहते ही वे श्मशान की लकड़ी उठाकर मुझे मारने दौड़ते थे। एक दिन खूब रोने-गिड़गिड़ने पर उन्होंने मेरी पूरी कथा सुनी किन्तु कथा पूरी होते ही उन्होंने मुझे वह डाँट पिलाई कि बस।

मुझसे बोले - 'भला चाहता है तो सीधे घर लौट जा ! यह सब चक्कर छोड़ ! दो अंगुल की

छाती लेकर साधना करने चला है, स्साला ! यह तेरा काम नहीं ! समझा ! जान चली जायेगी। फिर भोग की लालसा से जो लोग साधना करने जाते हैं, उनका लोक-परलोक दोनों खराब हो जाता है। तूने रामकृष्ण परमहंस की कथा नहीं पढ़ी ? उन्होंने 'माँ' से कहा 'माँ मुझे अष्टसिद्धि दे। मैं अष्टसिद्धि चाहता हूँ।' माँ ने कहा - 'कल सवेरे तुझे इसका उत्तर मिल जायेगा।' दूसरे ही दिन सवेरे दरवाजा खोलते ही उन्होंने देखा कि एक लड़की उधर ही मुँह कर शौच करने बैठी है। परमहंस बौखला उठे। लौटकर उन्होंने अपने मन को खूब मारा। आया समझ में ? साधना कोई ऐसी छोटी-मोटी चीज नहीं है। घर लौट जा, शादी-ब्याह कर भगवान् को याद कर, या फिर कुलगुरु से ही दीक्षा ले ले।'

'मैं बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, पर बाबा को फिर मुझ पर दया नहीं आयी। लेकिन बन्धु ! मैंने भी पीछा नहीं छोड़ा। वहीं खड़ा रहा, बिना कुछ खाये-पिये। बस, गुप्त रूप से उन पर नजर रखे रहा। इसलिए कि शायद असली क्रिया का कोई सुराग मिल जाये। समझा आपने ? आखिर इतने दिन से इस चक्कर में मैं भाड़ थोड़े ही झोंक रहा था। एक दिन की बात है। एक साधक और भैरवी वहाँ पर बाबा से मिलने आये। आये तो सब चुपके से ही, लेकिन मेरी नजर से बचना मुश्किल था। उन लोगों की कई बार मण्डली बैठी। मैं मौन साधे चुपचाप सब कुछ देखता रहा। बस, फिर क्या था ? मुझे लगा कि मैं सब कुछ सीख गया हूँ। लौट कर घर नहीं गया। साधना के लिए अनुकूल और शान्त-एकान्त श्मशान को तलाश करते-करते मैं यहाँ आ पहुँचा। पूरे ग्यारह साल साधना की इसी श्मशान में। आखिर सिद्धि प्राप्त करके ही छोड़ा। फिर तो उसकी सुगन्ध फैलते देर न लगी। नाम, यश, प्रतिष्ठा तो पायी ही, रुपया भी काफी कमाया — बाद में मुझे भैरवी की जरूरत पड़ी। बिना भैरवी के सिद्धि ज्यादा दिन ठहर नहीं पाती। मेरे एक शिष्य थे, नाम था वीरेन्द्र कुमार घोष। उन्होंने अपनी बहन को इसके लिए सहर्ष दे दिया। श्यामला में भैरवी के सभी लक्षण थे, मगर उसे भैरवी बनाने के बावजूद भी सिद्धि मेरे हाथ से एक दिन निकल ही गयी।'

'वह कैसे ?' मैंने सहज भाव से पूछा।

भट्टाचार्य महाशय कुछ देर के लिए रुके, फिर लम्बी साँस लेते हुए आगे कहने लगे - 'दीपावली की काली-अंधेरी रात थी। मैं इसी श्मशान में शव पर बैठ कर साधना कर रहा था। एकाएक जमीन फोड़ कर एक नर-कंकाल बाहर निकला और मेरे बिल्कुल करीब आकर बोला 'दूर हो, दूर हो।'

मैं बेहद डर गया। किन्तु यह भी जानता था कि एक बार विचलित होते ही जान की खैर नहीं। हमेशा के लिए छुट्टी हो जायेगी। मैं प्राणपण से चिल्ला उठा, 'नहीं जाऊँगा ! नहीं जाऊँगा! नहीं उठूँगा !'

बस, फिर क्या था ? उस कंकाल ने आगे बढ़कर अपनी अस्थिमय उँगलियों से मेरी गर्दन कसकर पकड़ ली। 'उफ्' ! कितनी भयंकर थी वह पकड़। मानो लोहे की सँड़सी से मेरी गर्दन दबा दी गयी हो। मैंने छूटने की काफी कोशिश की, किन्तु उस वज्र जैसे हाथ से छूट पाना मुमकिन न था। मेरी साँस बंद हो गयी। छाती असहनीय पीड़ा से कड़कड़ा उठी।

ऐसा लगा मानो मेरी नस-नस फटती जा रही हो ...मैं बूँद भर हवा के लिए तड़फड़ाने लगा । हवा मेरे चारों ओर थी, किन्तु मैं एक बार भी साँस नहीं ले पाया । यहीं नहीं, सँड़सी जैसी वह पकड़ मेरी गर्दन पर और भी मजबूत होती गयी ।'

'फिर ?' मैंने साँस रोक कर पूछा ।

'फिर ? हो-हो कर हँस पड़े भट्टाचार्य महोदय । फिर क्या, मुक्ति ! तभी से मैं यहाँ घूमता रहता हूँ । न कोई काम और न कोई झंझट । मुझे इस जगह से काफी मोह हो गया है और इसे मैं छोड़ नहीं पा रहा हूँ । सबसे बड़ा एक दारुण कष्ट था, वह आज दूर हो गया ।'

'कौन-सा कष्ट था वह ?'

'तंत्रालोक का सरल हिन्दी अनुवाद करने का विचार । वह तुम्हारे द्वारा पूरा हो गया । शायद इसीलिए...'

'म... मगर...' बोलते हुए एक अज्ञात आशंका से मेरी आवाज जैसे काँप उठी... 'आपको मुक्ति कैसे मिली ?'

मुझे यह नहीं मालूम । मेरी आँख खुली तो मैंने देखा कि मैं अपने आसन यानी मुर्दे के पास खड़ा हूँ। नर-कंकाल भी मुझे कहीं दिखलायी नहीं पड़ा । शायद उसका काम पूरा हो चुका था । संक्षेप में कहा जा सकता है कि सब कुछ शांत हो चुका था ।

तब भी मुझको सब कुछ समझने में दो-एक मिनट की देर लगी । बोलते समय मेरी जीभ लटपटा गयी - 'इसका मतलब क्या है ? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आप उस समय मर चुके थे ?'

'आ ..... आ ..... आप क्या मृतक हैं ?'

प्रश्न का शेष अंश एक आकस्मिक आर्तनाद के रूप में बदल गया । यह प्रश्न मैं किससे पूछ रहा हूँ? कोई तो नहीं है मेरे सामने । बस, अकेला ही मैं बैठा हुआ था कमरे में । कमरे में सभी चीजें उसी तरह रखी हुई थीं । लालटेन भी उसी तरह जल रही थी । सिर्फ अभी तक पलथी मार कर सामने बैठे हुए दुर्गाप्रपन्न भट्टाचार्य महोदय, जो अपनी कथा सुना रहे थे - नहीं थे ।

मैं व्याकुल होकर बार-बार यही सोचता रहा कि यह सब क्या था ? मगर मेरी बात का जवाब भला देता कौन ?

कुछ क्षण बाद मूल प्रश्न पुन: प्रबल हो उठा - तो क्या भट्टाचार्य महाशय मनुष्य नहीं थे ? एक अशरीरी देहरहित उनकी आत्मा मौजूद थी, जो अपनी एक प्रबल इच्छा को पूरी करने के लिए श्मशान में भटक रही थी । क्या उसे उस दारुण कष्ट से मुक्ति मिल गयी, जिसकी चर्चा अभी-अभी उसने की थी ?

अचानक मुर्दे के सड़ान्ध से नासापुट भर उठा और उसी के साथ मेरे चारों ओर हुआँ-हुआँ

करते हुए कई सियार आकर खड़े हो गये।

मेरा मन भय और आश्चर्य के मिले-जुले भाव से आसन्न हो गया। सिर घुमाकर चारों ओर देखा - हे भगवान्! मैं तो श्मशान के किनारे एक पत्थर पर बैठा था। दुर्गाप्रपन्न महाशय के मकान का अस्तित्व भी गायब हो गया था।'

कलकत्ता लौटकर जब सारी कथा चारु बाबू को सुनायी तो वे एकबारगी स्तब्ध रह गये। पहले उनको विश्वास ही नहीं हुआ। वे अभी तक यही समझ रहे थे कि भट्टाचार्य जीवित हैं। तभी तो उन्होंने मुझे नैहाटी भेजा था।

उसी रात सपने में चारु बाबू को भट्टाचार्य दिखलायी पड़े। उन्होंने चारु बाबू को बतलाया कि उनकी 'टीका' करने की जो अभिलाषा थी वह पूरी हो चुकी है। अब वे पृथ्वी के आकर्षण से मुक्त हैं। किन्तु उनकी भैरवी अभी भी उसी श्मशान में है। कालीघाट में ग्यारह कुमारियों को भोजन कराने से उसे भी प्रेतकष्ट से मुक्ति मिल जायेगी। यदि चारु बाबू यह काम कर दें, तो श्यामला की आत्मा उनकी सन्तान के रूप में अवश्य जन्म ले लेगी।

चारु बाबू निस्संतान थे। दूसरे ही दिन उन्होंने ऐसा ही किया। ग्यारह कुमारियों को भोजन कराया। साड़ी दी और ५-५ रुपये दक्षिणा भी दी।

सपने की बात सच निकली।

एक साल के अन्दर ही चारु बाबू की पत्नी ने एक सुन्दर सी कन्या को जन्म दिया। उसका नाम श्यामला ही रखा गया। वही रूप, वही रंग और वही सौन्दर्य। कहीं भी कोई वैषम्य नहीं था।

इस घटना को घटित हुए करीब पच्चीस वर्ष हो गये। जब कभी 'तंत्रालोक' की टीका किये पाण्डुलिपि पर नजर पड़ती है, तो बरबस सारा दृश्य मानस-पटल पर एकबारगी घूम जाता है।

कहानी तो यहीं खत्म हो जाती है, मगर एक बात बतलाना भूल गया। श्यामला ने शादी नहीं की। पिछली पूर्णिमा को उसने तंत्रमार्ग से संन्यास ले लिया। इस समय वह संन्यासिनी के भेष में काशी में ही साधनारत है। इस कहानी में श्यामला का चित्र देने का मेरा विचार था, परन्तु उसने साफ इनकार कर दिया। बोली, 'योगी और साधकों को प्रचार-प्रसार से हमेशा दूर रहना चाहिए।'

अध्याय १०
ज्योतिष का अभिशाप

अद्भुत भविष्यवक्ता थे स्मृतिरत्न महाशय — उन्होंने अपने बेटे की मृत्यु की भविष्यवाणी तीन महीने पहले ही कर दी थी — फिर उसी के विछोह में साल भर के

भीतर ही वह स्वयं, पत्नी, पुत्रवधू, सब मर गये — लेकिन उसके आठ वर्ष बाद वह मुझसे बातें कैसे कर रहे थे ?

भारतीय संस्कृति में 'ज्योतिष' को पंचम वेद माना गया है। ज्योतिष के दो बहुश्रुत पक्ष हैं - फलित और गणित। मगर इसका एक और पक्ष भी है, जिससे बहुत कम लोग परिचित हैं - तांत्रिक पक्ष। ज्योतिष-तंत्र का मूल आधार है - समय अर्थात् काल। जो लोग 'काल' के रहस्य से परिचित हैं, वे ही ज्योतिष-तंत्र से लाभ उठा सकते हैं। यह विद्या अत्यन्त रहस्यमयी है। इसके जानकार लोग 'वर्तमान काल' के पटल पर भूत और भविष्य को इच्छानुसार स्पष्ट देख सकते हैं। भविष्य में घटने वाली कोई भी घटना उनके लिए वर्तमान काल के पटल पर तत्काल साकार एवं सजीव हो उठती हैं। बड़े दुःख की बात है कि ज्योतिष की इस विलक्षण विद्या के पण्डित अब हमारे देश में कम ही हैं।

यह अविश्वसनीय किन्तु सत्यकथा उन दिनों की है जब मैं ज्योतिष का ही अध्ययन कर रहा था। मेरे गुरू थे काशी के निष्णात् ज्योतिषी पण्डित सीताराम झा। एक दिन ज्योतिष रुप तंत्र की चर्चा चल पड़ी। झा जी ने बताया कि इस विद्या के मर्मज्ञ अब श्री भवतोष स्मृतिरत्न महाशय मात्र रह गये हैं। उनके बाद तो यह विद्या निश्चय ही भारत से लुप्त हो जायेगी।

मेरे हृदय में भवतोष स्मृतिरत्न महोदय से मिलने की प्रबल कामना जाग्रत हो गयी।

स्मृतिरत्न महोदय कलकत्ता स्थित हाजरा रोड की एक गली में रहते थे। टैक्सी से उतर कर जब मैं गली में घुसा, उस समय साँझ में रात की कालिमा घुल चुकी थी। गली में काफी दूर जाकर बायें हाथ की ओर था पीला रंग का दोमंजिला मकान। लोहे का छोटा-सा फाटक भीतर से बन्द था। आवाज नहीं देनी पड़ी। लाल पाट की सफेद रंग की साड़ी पहने एक वृद्धा स्त्री धीरे-धीरे चल कर सामने आ खड़ी हुई। माँग में सिन्दूर था और कलाइयों में शंख की चूड़ियाँ। उसने सूखी-सूखी नजरों से एक बार मेरी ओर देखा, फिर पूछा, 'किससे मिलना है, आपको, ?'

'स्मृतिरत्न महोदय से। बनारस से चलकर आया हूँ। क्या दर्शन देंगे ¿ एक ही साँस में बोल गया मैं। वृद्धा ने कोई उत्तर नहीं दिया। फाटक खोलकर सामने के कमरे की ओर इशारा भर कर दिया।

मकान के सामने छोटा-सा मैदान था, जिसमें रातरानी, केतकी, कृष्णचूड़ और जवा के पेड़ लगे थे। एक ओर तुलसी का पौधा भी था। भीतर घुसते ही एक विचित्र-सी खिन्नताभरी उदासी का एहसास हुआ। साँय-साँय हो रही थी। कमरे में भी जड़ता-सी छायी हुई थी। जमीन में चटाई बिछी थी। एक ओर तख्ता लगा था जिस पर एक वृद्ध सज्जन सिर झुकाये चिन्तन-मनन की मुद्रा में बैठे थे। समझते देर न लगी। यही थे भवतोष स्मृतिरत्न महाशय-ज्योतिष तंत्र के धुरंधर विद्वान्।

अँधेरा फैल चुका था। मैं चरण-स्पर्श करके चटाई पर बैठ गया। तभी एक युवती ने कमरे में प्रवेश किया। पहले उसने बिजली का स्विच दबाया। जब प्रकाश हो गया तो उसने

स्मृतिरत्न महाशय का चरण-स्पर्श किया।

युवती की वय रही होगी अट्ठाईस-तीस के लगभग — गौर वर्ण, इकहरा बदन, लम्बा कद, सुन्दर आकर्षण चेहरा - मगर विषाद में डूबा हुआ। जाते समय दरवाजे पर ठिठक कर उसने एक बार गहरी नजरों से देखा मेरी ओर। निश्चय ही उसकी आँखों में कुछ ऐसा था जिसे समझ न सका मैं।

कौन थी वह युवती- स्मृतिरत्न महाशय की लड़की अथवा पुत्रवधू ?

मौन भंग हुआ। चिन्तन-मनन की धारा टूटी। स्मृतिरत्न महाशय ने पहले दोनों हाथों से चेहरे को रगड़ा, फिर तीक्ष्ण दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा। उसके बाद शुष्क कण्ठ से बोले, 'कहिए कैसे आना हुआ ?' जब मैंने आने का मन्तव्य बताया तो वे हँसने लगे। बड़ी कौतुक भरी विलक्षण हँसी थी उनकी।

कमरे की दीवार पर भिन्न-भिन्न प्रकार की करीब दो दर्जन घड़ियाँ टँगी थीं। इसके अलावा कुछ घड़ियाँ अलमारी और टेबुल पर भी रखी थीं। सभी 'चल' रही थीं मगर सभी के समय अलग-अलग थे। किसी में बारह बजा था तो किसी में चार। इसी प्रकार किसी में छः बजा था तो किसी में ग्यारह।

स्मृतिरत्न महाशय ने एक बार सिर घुमा कर घड़ियों की ओर देखा, फिर उँगलियों पर कुछ गणना की। थोड़ी देर तक न जाने क्या सोचते-विचारते रहें। उसके बाद अचानक बोले, "तुमने क्रान्तिकारी जीवन भी व्यतीत किया है न ?"

'जी हाँ।' मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

'१८ नवम्बर, १९४४ को दोपहर के समय पुलिस की गोली से तुम घायल हो गये थे न ?'

'हाँ।' आश्चर्य से बोला मैं।

इसके बाद फिर घड़ियों की ओर देखते हुए स्मृतिरत्न महाशय बोले, 'दो दिन पूर्व सायंकाल के समय गंगा-तट पर सीताराम झा से मेरे संबंध में बातें हुई थीं न ?' इस बार मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मुँहबाये उनकी ओर देखता रह गया। उन्होंने भूत और वर्तमान काल की जो दो घटनायें बतलायी थीं, उसने मुझे चमत्कृत कर दिया था।

अब भविष्य काल सुनो - शुष्क कण्ठ से बोले वह, 'सन् १९७० से १९७९ तक तुम दमा के भयंकर कष्ट से पीड़ित रहोगे। १९७८ के अक्टूबर में तुम रोग से घबरा कर आत्महत्या के उद्देश्य से गंगा-तट पर जाओगे। किन्तु तुम आत्महत्या नहीं करोगे।' एक महात्मा तुम्हारी प्राण-रक्षा करेंगे और रोग से भी तुमको मुक्त करायेंगे। अब थोड़ा और आगे का भविष्य सुनो। २१ जनवरी को प्रातः छ बजे तुम संसार से यह पार्थिव शरीर छोड़कर चल दोगे।'

'ऐं' भौंचक्का-सा मैं स्मृतिरत्न महाशय की ओर देखने लगा। 'हाँ हाँ मैं ठीक ही कहता हूँ, मेरी बात, मेरी भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हैं। कोई उसे बदल नहीं सकता।' वह निर्विकार भाव से बोले। देखा, उनका चेहरा कठोर हो गया था, आँखें बड़ी हो गयीं, गले

की नसें तन गयीं। थोड़ी देर बाद सहज स्वर में कहने लगे - 'ज्योतिष-तंत्र की इसी भविष्यवाणी ने एक पिता से उसका युवा पुत्र छीन लिया। माँ की गोद सूनी कर दी और एक अबला का सिन्दूर पोंछ दिया। यह विद्या मेरे लिए घोर अभिशाप ही सिद्ध हुई।'

इसके बाद भवतोष स्मृतिरत्न महाशय ने ज्योतिष के अभिशाप की जो कथा सुनायी उसे मैं अपने शब्दों में प्रस्तुत कर रहा हूँ। यदि मैं जानता होता कि सारी कथा सुनने के बाद अन्त में एक विकट स्थिति का सामना करना पड़ेगा, तो पहले ही उठकर बाहर चला आता, अस्तु।

स्मृतिरत्न महाशय पृथ्वी और प्रकृति की दैनिक गति के साथ काल की गति का क्या संबंध हैं, इसका पता वह घड़ियों को देखकर लगा लेते थे। उनकी हर घड़ी किसी न किसी देश का निश्चित समय बताती थी। किन्तु जन-साधारण के लिये उनका यह सिद्धान्त नितान्त दुर्बोध था। उनका कहना था कि मानव की दृष्टि-शक्ति निरवच्छिन्न हैं। उसके बीच-बीच में अन्तर होता है। उसी की सहायता लेकर बाजीगर इन्द्रजाल की सृष्टि किया करते हैं। निश्चय ही स्मृतिरत्न महोदय एकान्त साधना और गम्भीर गवेषणा के फलस्वरूप विश्व-नीति के जो तत्व जान गये थे, वे जनसाधारण के ज्ञान के सर्वथा परे था।

स्मृतिरत्न महाशय के लड़के का नाम था शेखर। इकलौता ही लड़का था वह। कलकत्ता मेडिकल कालेज से एम०बी० करने के बाद उसे स्मृतिरत्न महोदय ने इंगलैण्ड भेज दिया। शेखर जब वापस लौटा तो उसके पास डाक्टरी की बहुत बड़ी डिग्री थी। जिस दिन शेखर ने घर में प्रवेश किया, उसी समय से स्मृतिरत्न महाशय अष्टधातु के एक विलक्षण शक्तिसम्पन्न यन्त्र के निर्माण में जुट गये। एक दिन वह बेटे के कमरे में गये। पिता को देखते ही शेखर उठ खड़ा हुआ।

स्मृतिरत्न महोदय ने रामनामी के भीतर से यन्त्र निकालकर उसे दिया और कहा, 'एक विशेष कारण से यह यन्त्र तुम्हें हमेशा अपनी बायीं भुजा में धारण किये रहना होगा। इसे कभी उतारना मत।' और उन्होंने स्वयं उसकी भुजा में यन्त्र बाँध दिया।

कुछ दिन बाद एक दिन स्मृतिरत्न महाशय ने देखा कि शेखर की भुजा में यन्त्र नहीं हैं। पूछने पर उसने बताया कि उतार कर रख दिया है।

'क्यों ?'

'दिन-रात बाँधे रहने से असुविधा होती थी।'

स्मृतिरत्न महोदय गम्भीर हो गये। बोले, 'पर मैंने तो वह यन्त्र तुमसे दिन-रात बाँधे रहने को कहा था !'

स्मृतिरत्न जी और कुछ भी बोले बिना वहाँ से हट आये। किन्तु वहाँ से हट आने से ही क्या होता था ? काल के अप्रतिहत प्रभाव का अनुभव उन्हें अंग-प्रत्यंग में होने लगा। उनकी समझ में आ गया कि मानव के प्रयत्न ग्रह-नक्षत्रों की शान्ति के आगे कितने तुच्छ से थे ! अस्थिर मन से वह पत्नी के पास पहुँचे और बोले - 'मैंने शेखर को एक यन्त्र हमेशा पहनने

के लिये दिया था, किन्तु उसने उतारकर उसे रख दिया है। तुम जाकर उसे समझा दो कि वह उस यन्त्र को हर समय पहने रखे, नहीं तो घोर अमंगल की आशंका है।'

उनकी पत्नी श्रीमती सर्वमंगला अवाक् होकर उनके चेहरे की ओर ताकती रह गयी। जीवन में पहली बार उन्होंने पति को इस सीमा तक विचलित देखा था।

फिर जब सर्वमंगला ने शेखर को समझाया तो उसने कहा कि 'तुम चिन्ता मत करो माँ, मेरा कोई अमंगल नहीं हो सकता। पिताजी भ्रमवश घबरा गये हैं। पर तुम देखती जाओ, मुझे कुछ भी नहीं होगा!'

सर्वमंगला ने फिर भी आग्रह भरे स्वर में कहा, 'मैं तो कुछ जानती-समझती नहीं, पर तुम्हारे पिता जब ऐसा कह रहे हैं तो उनकी बात मान कर चलना ही उचित है। जैसा कहते हैं, वैसा ही करो न!'

माँ की जिद पर शेखर ने फिर यन्त्र धारण कर लिया। पर एक सप्ताह बाद फिर उसे खोल कर रख दिया।

स्मृतिरत्न को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने इस बार अपनी पुत्र-वधू शशि को भी सतर्क कर दिया।

शशि रोकर पति से बोली, 'क्यों जी, तुम्हारी कैसी मति मारी गयी है? तुम पिताजी की बात क्यों नहीं मानते! ऐसे तो तुम पहले नहीं थे! विदेश जाकर ही तुम्हारी मति-गति का यह हाल हुआ है, पर मैं भी कहे देती हूँ कि तुमने अब यन्त्र उतारा तो अन्न-जल त्याग दूँगी।' पत्नी की जिद पर शेखर ने फिर यन्त्र पहन लिया।

कुछ दिन बीत गये। सब ठीक रहा। किन्तु हमेशा दूसरे के मन की बात नहीं रख सकता कोई। फिर एक दिन यन्त्र उतार डाला शेखर ने।

इस बार स्मृतित्र महाशय ने शेखर के मित्रों से अनुरोध कराया। बार-बार के अनुरोध-उपरोध से हुआ यह कि मन ही मन विद्रोही हो उठा शेखर, सो मित्रों की एक न सुनी उसने, उलटे उनका मजाक ही उड़ाया।

स्मृतिरत्न महाशय ने आखिरी कोशिश कर देखी। शेखर को बुलाकर उन्होंने पूछा, 'तो यन्त्र नहीं ही पहनोगे तुम?'

शेखर चुप खड़ा रहा।

'पहन लेते तो अच्छा था! इसमें तुमको असुविधा ही क्या है?'

'कपडे-वपड़े पहनने में दिक्कत होती है, और भारी-भारी सा भी लगता रहता है।'

स्मृतिरत्न जी के चेहरे की मांसपेशियाँ सिकुड़ उठी। उनके चेहरे पर कठोरता आ गया। जरा देर चुप रहकर वह बोले, 'अब समझ में आ गया कि शास्त्रों में क्यों कहा गया है कि 'नियति के विधान को भला कोई रोक सका है?' तो अब इस दीवार पर तुम यह भी लिख

कर रख लो कि आज से ठीक तीन मास बाद, रात के ठीक चार बजे तुम इस संसार से कूच कर जाओगे।'

और स्मृतिरत्न महाशय स्वयं वहाँ से हट आये। खिड़की के उस पार खड़ी शशि भी ससुर की बातें सुन रही थी। उनकी अंतिम बात सुनकर वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

इस परिवार के अगले तीन मास कैसे बीते, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक दबी हुई वेदना खड्ग की तरह जैसे हर समय परिवार के सदस्यों के सिर पर झूलती रही।

ऐसा सुखी परिवार जैसे विगत युग के किसी चिड़चिड़े ऋषि के शाप से एकाएक ही नीरस और निरानन्द हो उठा। निःशब्द रहकर सब लोग आसन्न दुर्घटना की प्रतीक्षा करते रहे।

लेकिन जिसे लेकर इतना सिर-दर्द था, उसे जैसे कोई चिन्ता ही नहीं थी।

तीन मास व्यतीत हो गये। आखिर वह निश्चित दिन आ पहुँचा।

उस दिन भी प्रातःकाल स्मृतिरत्न महाशय ने नित्य की भाँति स्नान-पूजन किया। उसके बाद दैनिक कार्य निबटाते रहे वह। उनके चेहरे पर पाषाण जैसी कठोरता थी। इन तीन महीनों से वे अपने आपको एक भयावह आघात सहने को तैयार करते आ रहे थे, यह उनके चेहरे से स्पष्ट था। सारा दिन वे अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके शास्त्रों का चिन्तन-मनन करते रहते। माँ ने उस दिन अन्न-जल भी ग्रहण नहीं किया। बिस्तर पर ही लेटी रहीं वे। शशि ने रोते-रोते भोजन बनाया और पति को परोसा। उस दिन वह कई बार बेहोश हुई।

दिन बीत गया और साँझ का साया स्मृतिरत्न महोदय के घर के सुन्दर बगीचे पर उतर आयी। पूरे घर में सन्नाटा छाया रहा। लगता जैसे निस्तब्धता के दिगन्त प्रसारी सागर में डूबा हुआ हो वह घर। घर के पिछवाड़े अशोक वृक्ष की डाल पर चक्रवाक पक्षी करुण स्वर में आधी रात तक रोता रहा।

स्मृतिरत्न महोदय ने शहर के दो डाक्टरों को पहले से ही खबर दे रखी थी। शाम होते-होते वे भी आ पहुँचे। शेखर के कमरे में बिस्तर के अलावा और कोई सामान न रखा गया। शेखर को शिकार का काफी शौक था इसलिये पिता के तमाम निषेधों को मानकर भी उसने बन्दूक उसी कमरे में एक कोने में रखवा ली। उसने कहा, 'मेरे प्राण तो यही हैं।'

बगल के कमरे में स्मृतिरत्न जी दोनों डाक्टरों के साथ उपस्थित रहे। अपनी पत्नी को बुला कर उन्होंने कहा, 'तुमने शेखर को गर्भ में धारण किया था, अत: तुम उसके दरवाजे के समीप बिस्तर लगाकर सोओ।'

दोनों डाक्टर हँसकर बोले, 'स्मृतिरत्न जी, तोड़-जोड़ तो सब तैयार हैं, मगर रोगी कहाँ हैं ?'

स्मृतिरत्न महाशय विषण्ण हँसी हँसकर बोले, 'रोगी अभी कोई नहीं है, मगर चार बजे सवेरे होगा। उसी समय के लिए प्रस्तुत रहना है हमें।' शेखर यह सुनकर मन्द-मन्द हँसा।

वह दुरन्त निशा सबके चीज से होकर आगे बढ़ती रही। अलग-अलग लोगों के मन में अलग-अलग भाव उमड़ते रहे। वह कृष्णपक्ष की प्रथमा तिथि थी। जाड़े की शुरुआत ही थी। बाहर घटाटोप अँधेरा था। बाग के पेड़-पौधे निःशब्द खड़े थे।

पहले की सुनी हुई लखीन्दर और बेहुला की कहानी शशि को याद आने लगी। कैसी भयानक प्रतीक्षा थी !

मकान के पास ही कहीं टन्-टन् करके भोर के चार बजे। लोग हड़बड़ा कर उठ बैठे। डाक्टरों में एक ने स्मृतिरत्न महोदय से कहा, 'चार तो बज गये शेखर पूरी तरह स्वस्थ है अभी।'

स्मृतिरत्न महोदय बोले, 'शेखर का जन्म अपने मामा के घर हुआ था। सम्भव है, वहाँ उसके जन्म का समय देखने में एकाध मिनट की देरदार हो गयी हो। आप लोग पन्द्रह मिनट और प्रतीक्षा कर लीजिए।'

रात के अन्तिम पहर में काफी ठण्डक हो गयी थी। सभी लोग नींद से अलसाये हुए थे। गहरा सन्नाटा छाया था। जैसे वह भयानक निस्तब्धता किसी आतंकारी व्यापार की प्रतीक्षा कर रही थी। एकाएक उस गहन निस्तब्धता को चीर कर एक नारी-कण्ठ की हृदयवेधी चीख सुनाई पड़ी, 'बाबूजी ! मैं लुट गयी ! हाय मैं मर गयी !'

और वह चीख जैसे वायुमण्डल को आलोड़ित करती हुई आकाश की छाती को चीरकर बार-बार ध्वनित-प्रतिध्वनित होने लगी।

शेखर को जैसे बिजली का करेंट-सा छू गया। उछलकर उठ बैठा वह और कमरे के कोने में रखी बन्दूक उठाकर दौड़ा। उस भयानक चीख से जाग कर उसकी माँ भी उठ पड़ी। एकाएक दरवाजे पर उनसे टकराकर शेखर गिर पड़ा और गोली चल गयी - धाँय !

नारी-कण्ठ की उस आर्त पुकार से पहले ही कई लोगों की नींद टूट चुकी थी। गोली चलने की आवाज होते ही सब लोग - 'क्या हुआ ? क्या हुआ ?' चिल्लाते हुए दौड़ पड़े।

स्मृतिरत्न महोदय भी बत्ती लेकर दौड़े-दौड़े अन्दर पहुँचे। देखा- लहूलुहान शेखर जमीन पर पड़ा तड़प-कराह रहा था। गोली उसके सीने के बायें हिस्से को चीरती हुई निकल गयी थी। डाक्टरों से उन्होंने कहा, 'अब संभालिए अपने मरीज को !'

परन्तु शेखर को फिर होश नहीं आया। मृत्यु से घोर संघर्ष करके भी डाक्टर शेखर को बचा न पाये। सूर्योदय के पहले ही शेखर के प्राण-पखेरू उड़ गये।

जब शेखर के शव को श्मशान ले जाया गया, तब भी स्मृतिरत्न महोदय अपने कमरे से बाहर नहीं निकले। जिस अज्ञात शक्ति के दुर्लंघ्य का आधा विधान को प्राणपण से प्रयत्न करके भी वह रोक नहीं पाये थे, उस समय सम्भवत: उसी के दुर्भेद्य रहस्य का आविष्कार करने में जुटे रहे।

मुँहबाये चुपचाप सारी कथा सुनता रहा मैं। स्मृतिरत्न महोदय अब मौन साधे निर्विकार

भाव से घड़ियों की ओर निहार रहे थे। तभी टन्-टन् करके चार का घण्टा बजा और उसी के साथ काली मन्दिर में होती आरती की आवाज सुनाई पड़ी।

ऐं ! भोर के चार बज गये ! समय का ज्ञान होते ही चौंक पड़ा मैं। अचानक वातावरण में बिद्धती हुई एक नारी-कण्ठ का भयंकर आर्तनाद सुनाई पड़ा - साथ ही गोली छूटने की आवाज भी कानों में पड़ी। स्मृतिरत्न महाशय उठकर बगल वाले कमरे की ओर लपके। मैं भी पीछे-पीछे गया। देखा - फर्श पर एक युवक औंधा पड़ा था - खून से लथपथ। भय-विस्मय के मिले-जुते भाव से भर गया मेरा मन। रोमांचित हो उठा सारा शरीर। तभी बगल से अस्फुट स्वर में आवाज आयी - नियति के विधान को भला कौन रोक सकता है ?'

पलटकर देखा - स्मृतिरत्न जी आहत युवक के ऊपर झुके हुए न जाने क्या बुदबुदा रहे थे ?

सहसा वातावरण में एक विचित्र दुर्गन्ध फैल गयी - सड़ते हुए मांस की भीषण दुर्गन्ध। सहन नहीं हुआ मुझसे। बाहर निकल आया लेकिन तब जो दृश्य देखा, उसकी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता था। शरीर का सारा रक्त जमकर बर्फ हो गया। भय से काँपने लगा मैं।

हे भगवान्! यह कहाँ फँस गया मैं ?

मेरे सामने दर्जनों नर-कंकाल हवा में झूल रहे थे। वे सजीव-से थे। उनकी आँखों के गड्ढों में से विचित्र तीखी रोशनी निकल रही थी। मैं काँपता हुआ भयभीत दृष्टि से उसकी ओर देख ही रहा था कि सहसा उन उछलते-कूदते कंकालों के बीच से एक युवती प्रकट हुई। पहचानते देर न लगी। यह वही युवती थी, जिसे शाम को कमरे में देखा था।

धीरे-धीरे चलती हुई वह मेरे करीब आकर खड़ी हो गयी। फिर फिस्-फिस् करते स्वर में कहने लगी, 'तुम तुम मुझे पहचानते हो ?

'मैं...मैं... शशि हूँ... शशि !'

'तुम तुम शशि हो ?' हकलाता हुआ बोला मैं।'

'हाँ, मैं शशि हूँ। ये सारी प्रेतात्माएँ मुझे बहुत दिनों से अपने चंगुल में फँसाकर परेशान कर रही हैं। मैं इनसे छुटकारा पाना चाहती हूँ।'

'ये प्रेतात्मायें कौन हैं ?'

'ये सब मेरे पति, सास-ससुर और बंधु-बांधवों की प्रेतात्माएँ हैं।'

'सास-ससुर की ? मगर... मैंने तो यह पूरी रात स्मृतिरत्न महोदय के साथ बातें करते ही काटी हैं,' मैं भय और आश्चर्य से सिहर कर बोला।

'आपका कहना ठीक है मगर वह वास्तव में स्मृतिरत्न महाशय की प्रेतात्मायें थीं, जिससे आपने पूरी रात बातें की हैं !' शशि ने हँसकर कहा और इसके बाद वह सहसा लपककर मुझसे इस तरह लिपट गयी, जैसे काफी दिनों से पुरुष के स्पर्श अथवा आलिंगन की प्यासी

हो। मेरे सीने पर अपना सिर रखकर कहने लगी, 'तुमको ज्योतिष-तंत्र की सारी विद्या बतला दूँगी मैं ! बस, तुम यहाँ से, इस मकान से मुझे बाहर निकाल ले चलो। मैं इन प्रेतात्माओं से छुटकारा चाहती हूँ... मुझे किसी तरह बचा लो !'

मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि इतनी प्रेतात्माओं से आक्रान्त और भयंकर रूप से अभिशप्त इस मकान में इतने दिनों से शशि अकेली क्यों और कैसे रह रही है ? इसी के साथ एक और प्रश्न उभरा मस्तिष्क में। जब मैं स्मृतिरत्न जी की प्रेतात्मा से बातें कर रहा था, उस समय भी तो शशि कमरे में आयी थी। उसने ससुर का पैर भी छुआ था। कमरे की बत्ती भी उसी ने जलायी थी। क्या उस समय मुझको असलियत नहीं बता सकती थी ?

एकाएक मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंधा और उसी के साथ मुझे लगा कि जो औरत मेरे सीने से लिपटी है वह हाड़-मांस की नहीं, नर-कंकाल ही है।

हाँ ! सचमुच वह भी नर-कंकाल ही था - शशि का नर-कंकाल।

और मेरे मुँह से बेतहाशा निकल पड़ा, 'कौन हो तुम ? क्या चाहती हो मुझसे ? छोड़ो... मुझे... छोड़ो।'

क्या इस तरह चीखने-चिल्लाने से शशि की प्रेतात्मा ने मुझे मुक्त कर दिया अपने पैशाचिक बन्धन से ? जी नहीं !

धीरे-धीरे उसकी पकड़ मजबूत होती गयी और न जाने कब, किस क्षण बेहोश होकर गिर पड़ा था मैं फर्श पर, मालूम नहीं।

जब चेतना लौटी तो अपने-आपको मैंने कदम्ब के पेड़ के नीचे पड़ा पाया। सवेरा हो चुका था। आँखे मल-मलकर चारों तरफ देखा। मकान में भयंकर निस्तब्धता छायी थी। फर्श पर धूल की मोटी परत जमी हुई थी। खिड़की और दरवाजों के पल्ले टूटकर झूल रहे थे। बगीचे में तमाम ठूँठ थे। लगता था, मानो वर्षों से उस मकान में कोई रहा ही न हो !

तो यह सब प्रेतलीला थी ?

रात का सारा दृश्य एक-एक करके घूम गया मस्तिष्क में। सिर थामे मैं मकान के बाहर निकल ही रहा था कि एक सज्जन की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी। वे कौतूहल और जिज्ञासा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते वे बोले 'कहिए- आप यहाँ कैसे ?'

बुझे हुए स्वर में मैंने सारी कथा संक्षेप में उन्हें सुना डाली। वह महाशय शायद उसी मोहल्ले में रहते थे। सब कुछ सुनने के बाद बोले, 'ज्योतिषी जी का यह मकान तो पिछले आठ साल से वीरान पड़ा हुआ है। भुतहा है न। शेखर के मरने के बाद एक-एक करके ज्योतिषी जी, उनकी पत्नी और पुत्रवधू - सब एक साल के भीतर ही चल बसे थे। तभी से यह मकान भुतहा हो गया है।' फिर थोड़ा रुक कर वह बोले, 'कभी-कदा भोर के समय किसी औरत के चीखने-चिल्लाने और फिर गोली छूटने की आवाज आज भी मोहल्ले वालों को सुनाई पड़ती है।'

इतना कहकर वे अपना दुशाला सँभालते हुए आगे बढ़ गये।

बनारस लौटकर जब मैंने सीताराम झा से सारी बातें कहीं तो सहसा उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। जब कभी मैं स्मृतिरत्न महाशय को अतृप्त प्रेतात्मा द्वारा की गयी अपनी मृत्यु से संबंधित भविष्यवाणी पर विचार करता हूँ, तो सारा शरीर सिहर उठता है। लगता है, यह भविष्यवाणी भी सत्य सिद्ध होगी।

अध्याय ११
रहस्यमयी गुफा

वह काफी पुरानी गुफा थी। लगभग एक हजार वर्ष पुरानी। गुफा के सामने एक काफी लम्बा-चौड़ा पहाड़ी टीला था जिसके ऊपर एक गोल चबूतरा था। चबूतरे के काले रंग के चिकने पत्थर पर सिन्दूर पुता हुआ था और कहीं-कहीं खून के कतरे सूखकर जम गये थे। चबूतरे के बगल में काफी पुराना और घना पीपल का एक पेड़ था। पता चला कि वह ब्रह्म बाबा का स्थान है। लोग वहाँ मनौतियाँ मानते हैं और पूरी हो जाने पर चबूतरे की पूजा करते हैं और उस पर बकरे की बलि देते हैं।

जहाँ वह गुफा और टीला था उसके चारों तरफ सतपुड़ा की सुनसान घाटी मीलों तक फैली हुयी थी और उस घाटी के सीने को चीरती हुयी एक पहाड़ी नदी गरजती-तरजती कुछ दूर पर बह रही थी। नदी की धारा लगभग चार-पाँच फर्लांग पूरब की ओर आकर एकाएक उत्तर की ओर मुड़ गयी थी - जहाँ से घने जंगलों का सिलसिला शुरू हो जाता था। वहीं लगभग ४०-५० घर का एक गाँव था। गाँव के निवासी आदिवासी लोग थे। उन्हें मालूम हो चुका था कि सरकार की ओर से टीले की खुदाई और गुफा की जाँच होने वाली है। पहले तो गाँव के मुखिया हरपाल ने काफी विरोध किया मगर बाद में बिल्कुल चुप हो गया। इसका कारण उस समय मेरी समझ में नहीं आया था। हरपाल अपने को गुनी और ओझा समझता था। पूरे गाँव में उसका दबदबा था। उसके सिर्फ एक लड़की थी - गौरामती। उम्र थी यही करीब १६-१७ साल। जिस्म का रंग स्याह होते हुए भी उसमें आकर्षण था। मझोला कद, गोल चेहरा, छोटी-छोटी आँखें, चपटी नाक और मोटे होंठों के बावजूद भी गौरा में चढ़ती जवानी का अपना सौन्दर्य था, जो बरबस आँखों के सहारे दिल में उतर जाता था। जब मैंने उसे देखा तो बस देखता ही रह गया। हरपाल ने कहा, 'हुजूर कोई तकलीफ हो तो गौरा को खिदमत में लगा दूँ। खाना अच्छा पकाती है।'

मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया। मुझे उस इलाके में दो महीने रहना था। नौकर की जरूरत थी ही उस समय मुझे।

गौरा के अलावा ऊपर का काम करने के लिए मैंने एक नौकर और रख लिया, जिसका नाम था - जग्गू। बातचीत के सिलसिले में एक दिन हरपाल ने बतलाया कि गुफा में भूत-प्रेत तथा चुड़ैल आदि रहती हैं। कभी-कदा उनकी वीभत्स और डरावनी आवाजें भी सुनाई पड़ती है। उनके डर से गुफा के भीतर कोई जाने का साहस नहीं करता। सुना है कि गुफा के भीतर ब्रह्म बाबा की चौकी भी है और कभी-कदा उनकी मजलिस भी लगती है। उस

समय वहाँ बड़ी-बड़ी प्रेतात्मायें आकर इकट्ठी होती हैं।

अक्टूबर महीने की शुक्लपक्ष की रात थी। चौदस का चाँद आकाश में मुस्करा रहा था। रूपहली चाँदनी चारों ओर बिखरी थी। वातावरण बिल्कुल निस्तब्ध था। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। मैं अपने कैम्प में लेटा हुआ एक अंग्रेजी उपन्यास पढ़ रहा था। उम समय रात के शायद ग्यारह बजे थे। न जाने कब पढ़ते-पढ़ते मैं सो गया और उस अवस्था में मैंने एक भयानक दृश्य देखा, एक कटा हुआ खून से डूबा हुआ सिर। ऐसा लगता था कि अभी-अभी किसी का सिर धड़ से अलग किया गया है। उस कटे हुए सिर की आँखे गुड़हल के फूल की तरह लाल तथा बिल्कुल सजीव लग रही थीं। उनमें घृणा, क्रोध और द्वेष का मिला-जुला भाव था। वे मेरी ओर घूर रही थीं। भय और आतंक से मैं एकबारगी सिहर उठा और उसी के साथ मेरी नींद अचानक खुल गयी। सारा शरीर पसीने से भींग उठा। मगर यह क्या ? सामने देखता क्या हूँ कि एक भयानक शक्ल का व्यक्ति मेरी ओर देखते हुए मुस्करा रहा है। हे भगवान् ! कौन है यह ?

उसका सिर मूँड़ा हुआ तथा शरीर का रंग बिल्कुल काला था, मगर दाढ़ी काफी बढ़ी हुयी थी। आँखें क्रूर और भयानक थीं। गले में मूँगों एवं रंग-बिरंगी गोलियों की मालाएँ पहन रखी थी उसने। अपने दाहिने हाथ में आदमी के पंजे की हड्डियाँ लिए हुए था वह - जिस पर लाल सिन्दूर पुता हुआ था। उस व्यक्ति पर जैसे ही मेरी नजर पड़ी, मैं बेतहाशा चीख पड़ा।

मेरी चीख सुनकर गहरी नींद में सो रहे मेरे सहयोगी वर्मा जी और रामनाथन् जाग गये, और अपने-अपने कैम्प से दौड़कर मेरे पास आ गये। रामनाथन् के हाथ में भरी हुयी बन्दूक थी। कैम्प में घुसते ही उनकी नजर उस व्यक्ति पर पड़ी और उन्होंने तुरन्त अपनी बन्दूक उसके सीने से लगा दी। भागने की कोशिश मत करना वर्ना ...रामनाथन् गरजे।

उस व्यक्ति की आँखें दहक उठीं और होंठ भिंच गये।

'बोल स्साले ! कौन हो तुम ?' वर्मा जी ने लपक कर उसकी गर्दन पकड़ ली और बेतहाशा उसको मारने लगे। मगर वह खामोश होकर बराबर मार खाता रहा। तभी जग्गू आ गया वहाँ। वह हाँफ रहा था। शायद काफी दूर से वह दौड़ा-दौड़ा आया था।

हाँफते हुए कहने लगा, 'सरकार ! छोड़ दें इसे, वर्ना अनर्थ हो जायेगा। जानते हैं, किसको मार रहे हैं आप?'

'क्या बात है ? कौन है यह आदमी ?'

'सरकार, चोखूराम है ! चोखूराम ! बहुत बड़ा तांत्रिक है यह। डाकिनी जगा चुका है मशान पर। बड़ी शक्ति है इसमें, जो चाहे वह कर सकता है यह।'

रामनाथन् की बन्दूक झुक गयी। वर्मा जी के हाथ भी तुरन्त रुक गये।

चोखूराम ने हाथ में लिए हुए इन्सानी पंजे की कंकाल की ओर देखा, फिर मुस्कराया। ऐसा

लगा कि उसको अपनी शक्ति का घमण्ड हो।

‘मगर चोखूराम इतनी रात को मेरे कैम्प में क्यों आया था ?’ - मैंने जग्गू से प्रश्न किया।

‘आप उसी से पूछिए सरकार।’

‘अच्छा तुम बाहर जाओ। जब बुलाऊँ तभी आना भीतर।’

जब जग्गू बाहर चला गया तो मैंने चोखूराम के करीब जाकर पूछा, ’सही-सही बतलाओ, असली बात क्या है ? यहाँ क्यों और किस लिए आये थे तुम ?

चोखूराम एक बार इंसानी पंजे की हड्डी को घुमाया और फिर आहिस्ते से कहा, ‘मुझे गाँव के लोगों ने आप लोगों के ऊपर डाकिनी-विद्या का प्रयोग करने के लिए भेजा था। ताकि आप लोग डरकर यहाँ से भाग जायें और खुदाई का कार्य शुरू न करें।’

‘क्या तुमको विश्वास है कि हम लोग डर जायेंगे और काम शुरू नहीं करेंगे ?’

‘हाँ, मुझे पूरा भरोसा है अपनी तांत्रिक-विद्या पर।’

‘मगर इन सबको कोरा बकवास समझता हूँ चोखूराम।’

‘आपने थोड़ी देर पहले कितना भयानक सपना देखा था। अभी भी याद होगा आपको। क्या फिर भी विश्वास नहीं है आपको ?’ इतना कहकर चोखूराम व्यंग्य से मुस्कराया।

‘तुम्हारा कहने का मतलब क्या है ?’

‘वह सपना मेरी ही विद्या का चमत्कार था।’

‘मैंने सोचा, निश्चय ही चोखूराम हम सबको अपने मनोवैज्ञानिक ढंग से अपने जाल में फँसाना चाहता है, मगर सपने की बात यह कैसे जान गया... ?’

मेरा इरादा चोखूराम को छोड़ देने का था। मगर रामनाथन् उसे पुलिस में देना चाहते थे। सवेरा हुआ। पुलिस आयी। चोखूराम को पुलिस के हवाले कर दिया गया। थोड़ी देर बाद हरपाल आ गया। आते ही कहने लगा, ’हुजूर गज़ब कर दिया आपने। चोखूराम को छुड़ा लीजिए, नहीं तो आप लोगों पर बड़ी भारी विपत्ति आ जायेगी। घोर संकट में फँस जायेंगे आप सब।’ थोड़ा रुककर हरपाल आगे बोला, ब्रह्मवीर को जगाने के लिए गाँव वालों की ओर से चोखूराम ने ग्यारह बाँझिन औरतों की अपने हाथों से उसी चबूतरे पर बलि दी है और बलि देकर उसी टीले पर उनकी लाशों को दफना भी दिया है। वे औरतें चुड़ैल के शक्लों में अमावस्या की रात को निकलती है और सबेरा होने तक नाचती-कूदती और गाती हैं।’

उसी दिन शाम को पता चला कि चोखूराम पुलिस की निगरानी से भाग गया। पुलिस उसको खोज रही है।

दूसरे दिन एक आश्चर्यजनक घटना घट गयी। जिस पर सहसा किसी को विश्वास नहीं होगा

। वर्मा जी और रामनाथन् की बोली अचानक बन्द हो गयी। दोपहर होने तक दोनों में पागलपन के लक्षण प्रकट होने लगे। मैं परेशान हो उठा। यह सब कैसे हो गया ? दो-दो अधिकारियों की यह दशा ...। कहीं चोखूराम तो कुछ नहीं कर रहा है। सहसा विश्वास नहीं हो रहा था - उसकी तांत्रिक विद्या पर। उसी दिन दोनों व्यक्तियों को इलाज के लिए शहर भेजने की व्यवस्था की गयी। मैं अकेला उस निर्जन प्रान्त में रह गया। सोचा, कहीं मेरी भी हालत ऐसी ही न हो जाये। सारा शरीर भय से रोमांचित हो उठा। मगर तभी गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला पर हाथ चला गया। तब थोड़ी शान्ति मिली।

साँझ होते ही काले बादल घिर आये। थोड़ी देर बाद वर्षा होने लगी। एकाएक ठण्ड भी बढ़ गयी। गौरा बहुत जल्दी खाना पका कर चली गयी थी। मैंने खाना खाया और रजायी ओढ़कर चारपायी पर लेट गया। नींद के कारण पलकें झपकी जा रही थीं।

एकाएक आँख खुल गयी। देखा, गौरा चारपाई के पास खड़ी थी। दुबारा कभी-कदा कोई जरूरी काम पड़ने पर ही वह आती थी। मगर उस दिन कोई जरूरी काम नहीं था। फिर क्यों आयी थी बारिश में भींगती हुयी वह ? समझ में नहीं आया।

वह मेरे चेहरे पर झुक गयी। बोली, 'सरकार ! अभी आप जग रहे हैं, बदन दबा दूँ !'

'नहीं ! इसकी जरूरत नहीं है। तुम जाओ यहाँ से।

गौरा जरा-सा भी विचलित नहीं हुयी। बोली, ' अच्छा ! कल सबेरे आकर जल्दी ही चाय बना दूँगी।' वह वापस न जा सकी।

एकाएक वर्षा की गति तीव्र हो उठी और साथ ही हवा भी तेज हो गयी।

अचानक गीली बरसाती हवा का एक तेज झोंका आया और बर्फ जैसी शीतल हवा कैम्प के भीतर फैल गयी। लालटेन के पीले प्रकाश में मैंने देखा, गौरा ठण्ड से काँप रही है। उसका चेहरा भी स्याह पड़ गया था। मैंने उसे एक कम्बल दिया और एक तरफ सो जाने को कहा। गौरा चूल्हे के पास कम्बल ओढ़कर सो गयी। उसके बाद मैं भी सो गया। मगर जब सबेरा होने पर नींद खुली तो में चौंक पड़ा। गौरा मेरी बगल में सो रही थी। जागने पर उसने कहा कि ठण्ड के करण नींद नहीं आ रही थी इसलिए मेरे बिस्तर पर चली आयी।

मैंने गौरा को काफी डाँटा-फटकारा मगर वह बराबर मुस्कराती हँसती रही। गौरा पर काफी गुस्सा आ रहा था मुझे। मगर उसकी चुम्बक जैसी आकर्षण शक्ति पर तबीयत झुँझलाई। नीच खानदान की लड़की। बेशर्म, बेहया कहीं की, बदमाश ...।

एक सप्ताह के अन्दर ही मेरी सहायता के लिए वर्मा जी और रामनाथन् की जगह दो दूसरे अधिकारी दिल्ली से आ गये। मैं बहुत ही जल्दी टीले की खुदाई शुरू करा देना चाहता था। दो दिन बाद बंसल साहब की देखरेख में खुदाई शुरू हो गयी। बंसल साहब, रामनाथन् की जगह पर आये थे। बड़े ही मिलनसार और खुशमिजाज व्यक्ति थे। उनकी पत्नी भी साथ आयी थीं। दो-तीन साल पहले ही बंसल साहब की शादी हुई थी। पत्नी का नाम था - मनोरमा। काफी सुन्दर, आकर्षक और सभ्य युवती थी।

खुदाई शुरू हो जाने पर गुफा का रहस्य जानने के लिए मेरा मन व्याकुल हो उठा। भीतर जाने के लिए मेरे साथ दूसरे अधिकारी चोपड़ा साहब तैयार थे। दूसरे ही दिन चोपड़ा साहब को साथ लेकर मैंने गुफा के भीतर प्रवेश किया। जैसे-जैसे हम लोग आगे बढ़ते गये, अंधकार भी गाढ़ा होता गया। टार्च की रोशनी में किसी तरह आगे बढ़ रहे थे। गुफा के भीतर हम कहाँ तक गये, इसका अन्दाजा न मुझे लग पाया और न चोपड़ा को। घड़ी देखने पर इतना ही मालूम हो सका कि करीब एक घण्टा हो गया चलते-चलते।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर मुझे गुफा काफी चौड़ी मिली। आगे चौड़ाई बढ़ती गयी। अचानक कुछ फासले पर प्रकाश दिखलायी पड़ा।'

शर्मा ! यह प्रकाश कैसा है ?' - चोपड़ा साहब बोले।

'यही तो मैं भी जानने की कोशिश कर रहा हूँ —'

जहाँ पर प्रकाश हो रहा था वहाँ गुफा हद से ज्यादा चौड़ी थी। जमीन पर तराशे हुए पत्थर बिछे थे। दाहिनी ओर दो-तीन छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं, और सामने की ओर लगभग छः फीट लम्बा-चौड़ा गोल दरवाजा था। शायद आगे जाने के लिए वह रास्ता था। मैं और चोपड़ा साहब, दोनों ने चारों तरफ नज़रे घुमा-घुमाकर देखा, मगर प्रकाश कहाँ से आ रहा है - इसका पता न चल सका। न जाने क्या सोचकर मैं सामने वाले दरवाजे में घुस गया। मेरे साथ ही चोपड़ा साहब भी घुसे। लगभग १०-१५ कदम चलने पर फिर एक लम्बी-चौड़ी जमीन मिली और वहाँ भी खूब प्रकाश हो रहा था। दीवारों पर भी लम्बे-लम्बे पत्थर लगे थे। प्रकाश का स्त्रोत अब भी हम लोगों के लिए रहस्यमय ही बना रहा। मेरा अनुमान था कि गुफा वहीं खत्म हो गयी है। मगर यह मेरा भ्रम मात्र था। उस लम्बे-चौड़े आँगन के ठीक सामने एक दरवाजा था जो कम-से-कम छः पुट ऊँचा रहा होगा। चोपड़ा को आँगन में ही खड़े रहने का आदेश देकर मैं दरवाजे के भीतर घुसा। वह बहुत बड़ा कमरा था। वातावरण में एक अजीब-सी सुगन्ध फैल रही थी जिससे मेरा मस्तिष्क भारी होने लगा। कुछ ही क्षणों के बाद कमरे में हल्के गुलाबी रंग की फीकी रोशनी उभरने लगी और उस हल्की गुलाबी रोशनी के सैलाब में मैंने अपने सामने जो कुछ देखा उससे मेरा रोम-रोम सिहर उठा।

कमरे के ठीक बीचोबीच करीब दो फीट व्यास का स्फटिक पत्थर का एक गोल चबूतरा था जिसके द्वारा किसी तांत्रिक देवी की अति प्राचीन और दुर्लभ स्फटिक की मूर्ति स्थापित थी। इसकी ऊँचाई करीब दो फुट और चौड़ाई दस इंच से अधिक नहीं थी। टार्च की तीव्र रोशनी में काफी देर तक मूर्ति की ओर निहारता रहा। सबसे नीचे अष्ट कमलदल था, जिसके ऊपर शंकर जी समाधि मुद्रा में लेटे हुए थे। उनकी नाभि से कमल नाल निकला हुआ था और उसके अर्धविकसित कमल के ऊपर पद्मासन में कोई देवी बैठी हुई थी, जिसकी चार भुजाएँ थीं। देवी की गोद में कोई दूसरी देवी बैठी हुयी थी, जिनकी आँखों को पहली वाली देवी ने अपने दोनों हाथों से बन्द कर रखा था। उनके शेष दो हाथों में शंख और ध्वज था। जो देवी की गोद में बैठी थी, उसकी आठ भुजाएँ थी। ऊपर वाली दाहिनी और बायीं भुजा वरद और अभय मुद्रा में थी। शेष में देवी ने खड्ग, चामर, चक्र, त्रिशूल और पाश

धारण किया था। दोनों देवियों की आँखें हीरे की थीं जो अपने आप में चमक रही थीं।

मैंने कमरे में से ही चोपड़ा को पुकारा।

चोपड़ा भी मूर्ति देखकर आश्चर्यचकित और स्तब्ध रह गये।

'जानते हैं चोपड़ा साहब ! यह मूर्ति कम-से-कम दो हजार वर्ष पुरानी है। हो सकता है वह विक्रम काल की हो — इसे किसी प्रकार निकालकर बाहर ले चलना चाहिए।' अभी मैं यह कह ही रहा था कि न जाने कहाँ और किधर से एक भयंकर काला विषधर साँप निकल आया और धीरे-धीरे रेंगता हुआ मूर्ति के करीब पहुँचा और फिर पूरी मूर्ति को लपेट कर उसके ऊपर अपना फन फैला दिया। बड़ा ही भयंकर दृश्य था वह। मैं तो डर से बुरी तरह काँपने लगा। अचानक धाँय-धाँय की आवाज से पूरा कमरा हिल उठा - देखा, साँप का फन चिथड़े-चिथड़े हो चुका था और फर्श पर वह बुरी तरह छटपटा रहा था। काले रंग के खून से देवी की मूर्ति भींग उठी थी। चोपड़ा ने सर्प पर गोली चला दी थी।

'यह क्या किया आपने चोपड़ा साहब ?'

मगर चोपड़ा ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने आगे बढ़कर दोनों हाथों से मूर्ति को कई बार जोर से हिलाया और फिर चबूतरे पर से उसको एक झटके से उठा लिया। मैं मूकदर्शक की तरह देखता रहा।

जब हम दोनों गुफा के बाहर निकले उस समय साँझ की स्याह चादर फैल चुकी थी। हल्की बारिश हो रही थी। गुफा के भीतर दुर्लभ मूर्ति मिली है - इस बात को सर्वथा गुप्त रखा गया। मुझे मूर्ति पाने की जितनी खुशी थी, उतना ही गम था सर्प के मरने की। चोपड़ा ने बतलाया कि यदि सर्प को न मारा जाता तो मूर्ति कैसे हासिल होती। मैं सोचने लगा- हो सकता है उस सर्प के रूप में कोई योगी रहा हो या साधक — कहीं कोई भारी गलती हुई है, कोई भारी अपराध हुआ है - ऐसा बार-बार मुझे लग रहा था उस समय। मेरा अनुमान सही निकला।

तीसरे ही दिन से अविश्वसनीय मरणयज्ञ शुरू हो गया। वर्मा जी और रामनाथन् की मृत्यु अचानक अस्पताल में हो गयी। उसी दिन रात में चोपड़ा साहब ने स्वयं फाँसी लगा कर आत्महत्या कर ली और एक सताह के भीतर ही जीप-दुर्घटना में बंसल साहब भी चल बसे।

आप ही सोचिए, एक के बाद एक, चार आफिसरों की मृत्यु। मेरी मानसिक स्थिति कैसी रही होगी। उस समय भय और आतंक से मैं अर्धविक्षिप्त हो उठा था। पागलों जैसी स्थिति मेरी भी हो गयी थी। वातावरण में कोई अज्ञात तांत्रिक शक्ति क्रियाशील थी, यह समझते देर न लगी मुझे। क्या करूँ और क्या न करूँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

घबराहट और बेचैनी से बचने के लिए उस रात 'ब्लैक नाइट' की पूरी बोतल पी गया। बाहर बर्फीली हवा हाहाकार करती हुई दरख्तों पर अपना सिर धुन रही थी। काले बादलों से अट कर आकाश काला पड़ गया था। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। नशे में डूबा

हुआ चारपाई पर मैं बेसुध पड़ा था। अचानक सीने और गले के करीब किसी के कोमल स्पर्श का अनुभव हुआ। अँधेरे में मेरे शरीर पर कोई अपनी कोमल उँगलियाँ फेर रहा था। उस स्थिति में और उस वातावरण में वह स्पर्श काफी सुखद लगा मुझे।

'कौन है ?' धीरे से मैंने पुकारा।

'मैं हूँ सरकार, गौरा... '

नशे से बोझिल आँखें खोलकर देखा - गौरा मुझ पर झुकी हुई थी। उसके चेहरे पर इस समय अजीब-सा भाव था।

'क्या बात है गौरा ? आज रात फिर... तुम... ।'

'हाँ, सरकार ! मैं जान-बूझकर आज रात रुक गयी यहाँ।' फिर थोड़ा रुककर आगे वह हकलाते हुए कहने लगी, 'आप मुझे बदमाश और आवारा लड़की समझते हैं ... पर... सरकार, मैं ऐसी नहीं हूँ। पहली बार जब मैंने आपको देखा तभी से आपको चाहने लगी हूँ। मेरे दिल की यह बात न जाने कैसे चोखू को मालूम हो गयी है। वह अब मुझसे शादी करने के लिए मेरे बाबा पर दबाव डाल रहा है। इतना ही नहीं सरकार ! वह आपको रास्ते से हटाने के लिए गाँव के सूखे कुएँ में बैठकर रात को जादू-मंतर भी करता है। कल ही रात को उसने आपके नाम से पाँच मुर्गों की एक साथ बलि दी है सरकार। मैं आपसे प्रेम करती हूँ। मैं नहीं चाहती कि आपकी जान खतरे में पड़े। आप यहाँ से चले जायें और मुझको भी अपने साथ ले चलें। मैं हर वक्त आपके साथ चलने को तैयार हूँ। अगर आप मुझे नहीं ले गये तो वह मुझे जबरदस्ती अपनी बीवी बना लेगा और एक दिन मेरी भी ब्रह्म बाबा के थान पर बलि दे देगा। इस तरह वह गाँव की कई लड़कियों के साथ कर चुका है सरकार... ।'

जाड़े की उस भींगी रात में गौरा का स्पर्श और सान्निध्य मुझे बड़ा सुखकर लगा। अपने आपको थोड़ा हल्का महसूस किया। काफी देर तक वह मेरे सीने से सटी रही और मैं उसकी नंगी पीठ सहलाता रहा। उसी स्थिति में मुझे बहुत सारी और रहस्य की बातें मालूम हुई। गौरा ने ही बतलाया सब कुछ — भयंकर तांत्रिक प्रयोग कर चोखूराम ने ही चारों अफसरों को मौत की गोद में पहुँचाया था। गुरु की दी हुई रुद्राक्ष की माला के कारण उसका तंत्र-मंत्र मुझ पर नहीं लग पा रहा था वर्ना कभी का मैं भी ख़त्म हो गया होता।

चोखूराम की सारी तांत्रिक शक्ति उसी पंजे के कंकाल में थी। गौरा ने बताया कि यदि किसी तरह वह खूनी पंजा हासिल हो जाये तो उसकी सारी शक्ति खत्म हो जायेगी। जब मैंने गोरा से पूछा कि यह पंजा मिलेगा कैसे ? तो उसने बतलाया कि वह उसे प्राप्त कर सकती है... इसके लिए उसके शरीर को अपवित्र करना होगा ? यानी...—

मैं गौरा के आशय को समझ गया।

'यदि मुझे वह खूनी पंजा मिल जाय तो क्या चोखूराम की सारी तांत्रिक शक्ति मेरे पास चली आयेगी ?' मैंने प्रश्न किया।

’हाँ, सरकार !’ गौरा हुलसकर बोली, ‘गुफा की सारी प्रेतात्मायें आपके कब्जे में हो जायेंगी । फिर तो आप जो चाहें सो कर सकते हैं ।’

जैसा कि मैं बतला चुका हूँ, उस समय तंत्र-मंत्र और भूत-प्रेत पर मेरा विश्वास नहीं था मगर गौरा के शब्दों में न जाने कौन-सा ऐसा जादू था कि तांत्रिक शक्ति प्राप्त करने की लालसा एकाएक जागृत हो उठी मेरे मन में ।

साँझ की स्याह चादर फैल चुकी थी । हल्की-हल्की वर्षा हो रही थी । उस समय ’ब्लैक नाइट’ की बोतल खोली और एक के बाद एक कई ’पैग’ पी गया । गौरा ने भी पी। कब किस क्षण हम दोनों होश खो बैठे और कब-किस क्षण एक दूसरे के अस्तित्व में समा गये - मालूम नहीं हुआ। गौरा एक ही रात में किशोरी से पूर्ण युवती बन गयी । जिसका नतीजा दूसरे ही दिन सामने आ गया । गाँव के उस सूखे कुएँ में चोखूराम मरा पड़ा था ।

गौरा की देह अपवित्र होने से चोखूराम की मौत का क्या सम्बन्ध था ? यह रहस्य आज तक मेरी समझ में न आया । मगर गौरा ने जब उस खूनी पंजे को लाकर मुझे दिया, उस समय उसके काले और मोटे होंठों पर एक विचित्र और रहस्यमयी मुस्कान थी ।

खूनी पंजे को हाथ में लेते ही मेरा सारा शरीर एकबारगी सनसना गया और रोम-रोम से जैसे चिनगारियाँ छूटने लगी । मुझे ऐसा लगा, मानो मेरे चारों तरफ के वातावरण में अनेक काली छायायें मँडरा रही हैं । डर से मैंने आँखें बन्द कर लीं और जब कुछ देर बाद आँखें खोली तो वे सारी छायायें गायब मिलीं । चार-पाँच दिन तक तो कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी मगर एक रात अचानक मेरी आँख खुल गयी, शायद अमावस्या की रात थी वह । चारों ओर स्याह अंधकार फैला हुआ था और एक विचित्र सी घुटन वातावरण में विद्यमान थी । सहसा मेरी नजर सामने टीले की ओर चली गयी । उस गहरे अंधकार में भी मैंने साफ देखा कि वहाँ बहुत सारी छायायें नृत्य की मुद्रा में उछल-कूद रही थीं । किसकी छायायें थीं वह - क्या बाँझ औरतों की प्रेतात्मा तो नहीं थीं ?

कौतूहल और जिज्ञासावश मेरे कदम अपने आप उस टीले की ओर बढ़ गये और जब मैं टीले के करीब पहुँचा तो मेरे सारे शरीर का खून जैसे हिम हो गया । पैर काँपने लगा, होश-हवास गुम होने लगा ।

मैंने देखा- ब्रह्म बाबा के थान के चबूतरे पर एक लम्बी काठी का व्यक्ति बैठा हुआ था । शरीर का रंग ताँबिया था । सिर्फ एक लँगोटी पहन रखी थी उसने। दाढ़ी-मूँछ तो नहीं थी मगर सिर के बाल काफी लम्बे थे और पीठ पर बिखेरे हुए थे । उनका रंग भूरा था । आँखें बड़ी-बड़ी थीं मगर पलके नहीं थीं । जबड़ा नीचे की ओर लटका हुआ था । छाती हद से ज्यादा चौड़ी थी और उस पर जंगली घास की तरह बाल उगे हुए थे । कुल मिलाकर वह व्यक्ति काफी भयानक और डरावना लग रहा था । जब मेरी आँखें उससे मिलीं तो उसने घृणा से दूसरी ओर अपना चेहरा घुमा लिया । उस समय उसके सामने कई औरतें एक साथ बेढ़ंगे तौर पर नृत्य कर रही थी । उनकी भी शक्ल-सूरत डरावनी थीं । वे साक्षात् राक्षसी-भी लग रही थीं । उनके बाल जमीन तक लम्बे थे और हवा में लहरा रहे थे । शरीर का रंग

काला था। चेहरा किसी का गोल तो किसी का लम्बा था। आँखों की जगह बड़े-बड़े गड्ढे थे। स्तन हद से ज्यादा लम्बे थे जिस पर हड्डियों की मालायें झूल रही थीं। थोड़ी देर बाद प्रेतात्माओं का वह बेहूदा नृत्य खत्म हो गया और फिर वह व्यक्ति अपनी जगह से उठा और गुफा की ओर चल पड़ा। उसके पीछे वे सारी प्रेतात्माएँ भी चल पड़ीं। संज्ञाशून्य-सा स्तब्ध खड़ा मैं सब कुछ देखता रहा। अचानक अपने कन्धे पर किसी का स्पर्श पाकर चौंक पड़ा। पलटकर देखा - बगल में खड़ी गौरा मुस्करा रही थी।

तुम यहाँ कैसे आयी ? मैंने उससे पूछा।

मगर उसने जवाब नहीं दिया। मेरा हाथ कसकर पकड़ लिया और लगभग खिंचती हुई गुफा की ओर ले गयी। मेरी समझ में नहीं आया कि वह चाहती क्या है ? अब मैं उसके साथ गुफा के भीतर चल रहा था। वह बिल्कुल खामोश थी। उसकी आँखें लाल थीं। चेहरे पर मुर्दनी-सी छायी थी। थोड़ी देर बाद मैं उसके साथ उस जगह पर जा पहुँचा जहाँ वह विचित्र मूर्ति मिली थी मुझको और चोपड़ा साहब ने गोली मारकर हत्या की थी सर्प की। मैं यह देखकर हैरान रह गया कि मूर्ति - जिसे मैंने अपने कैम्प में एक मजबूत सन्दूक में बन्द कर ताला लगाकर रखा था - वहाँ अपने आसन पर विराजमान थी। आप ही अनुमान लगाइये - मेरी मानसिक दशा कैसी हो गयी होगी? कभी कल्पना तक नहीं की थी कि ऐसी अनहोनी घटना घट जायेगी। मूर्ति वहाँ कैसे पहुँची - यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं स्तब्ध खड़ा मूर्ति की ओर अपलक न जाने कब तक देखता रहा। सिर घुमाकर गौरा से मैंने कुछ पूछना चाहा मगर गौरा वहाँ नहीं थी। आश्चर्य हुआ। गौरा कहाँ चली गयी ? कहाँ गायब हो गयी वह ? पागलों की तरह चारों ओर चक्कर लगाने लगा मैं गुफा में। तभी मेरे कानों में एक कोमल और मधुर संगीत-लहरी गूँज उठी। निश्चय ही वह संगीत मेरे इस संसार का नहीं था। उसके स्वर में एक विशेष प्रकार का आकर्षण और सम्मोहन था। कभी उसकी स्वर-लहरी तेज हो जाती तो कभी मन्द।

अभी संगीत का कोमल, स्निग्ध स्वर गुफा के रहस्यमय वातावरण में गूँज ही रहा था कि मैंने देखा न जाने कहाँ और किधर से एक-एक कर दर्जनों व्यक्ति वहाँ आकर इकट्ठे हो गये। वे सभी जंगली और बदसूरत थे। उनके शरीर का रंग बिल्कुल काला था और वे पूरी तरह से नंगे थे। उनके चेहरों पर अजीब-सी खामोशी थी। थोड़ी देर बाद जिस व्यक्ति को मैंने ब्रह्म बाबा के थान पर बैठा हुआ देखा था वह अचानक वहाँ आकर खड़ा हो गया। अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि सामने गौरा आती हुई दिखलायी दी।

'गौरा...।' मैंने चीखकर पुकारा।

मगर उसने मेरी ओर इस तरह देखा मानो मुझको पहचानती ही नहीं। मैं वहाँ से भाग निकलने की सोचने लगा और इसके लिए मैं मुड़ा ही था कि एक लम्बा-चौड़ा काठी का संन्यासी गुफा के रास्ते पर खड़ा हुआ मिला। उसका रंग ताँबिया था। ऊँचा ललाट, सिर पर जटाजूट, मस्तक पर त्रिपुण्ड और लाल सिन्दूर का गोल तिलक — शरीर पर लाल रेशमी वस्त्र। पैरों में खड़ाऊँ। निश्चय ही वह कोई कठोर तांत्रिक संन्यासी था। उसके एक हाथ में भयंकर खड्ग था और दूसरे हाथ में थी किसी इन्सान के पंजे की समूची हड्डी।

संन्यासी का चेहरा भव्य और तेजोमान था। लाल हो रहे नेत्रों में भी प्रखर ज्योति थी। उसने मेरी ओर एक बार घूर कर देखा और फिर उच्च स्वर में पुकारा, 'माहेश्वरानन्द... ।'

आवाज सुनकर ब्रह्म बाबा के थान वाला व्यक्ति जल्दी से चलकर संन्यासी के करीब पहुँचा और फिर भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया उसने।

'सब ठीक है न ?' संन्यासी बोला।

'हाँ गुरुदेव ! आपकी आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया गया है।' माहेश्वरानन्द ने विनम्र स्वर में जवाब दिया।

'शीघ्र आगे का कार्य शुरू होना चाहिए।'

'जो आज्ञा गुरुदेव।'

मैंने देखा - दूसरे ही क्षण उस विलक्षण देवी की विलक्षण मूर्ति के सामने बहुत सारी तांत्रिक पूजा की सारी वस्तुएँ इकट्ठी हो गयी। संन्यासी ने स्वयं देवी की पूजा की और अन्त में अपने साथ लाये खड्ग और इन्सानी पंजे को सिन्दूर लगाकर पूजा की। उसके बाद उसने माहेश्वरानन्द को हाथ हिला-हिलाकर गुप्त संकेत किया जिसे मैं न समझ पाया। मगर उसके बाद मेरे सामने जो लोमहर्षक और रोमांचकारी दृश्य उपस्थित हुआ उसे आज भी याद कर काँप उठता हूँ मैं। मैंने देखा - उस भयंकर संन्यासी तांत्रिक ने एक के बाद एक उन सभी व्यक्तियों की बलि देवी के सामने दे दी जो वहाँ आये थे। बेचारे निरीह पशु की तरह अपना सिर झुकाते और फिर भयंकर खड्ग हवा में लहराता और उसके बाद उनका सिर धड़ से अलग होकर देवी के निकट जा गिरता। थोड़ी ही देर में सारी धरती नर-रक्त से डूब गयी। संन्यासी ने सभी नर-मुण्डों को इकट्ठा किया फिर उनकी विशेष प्रकार की तांत्रिक पूजा की। काफी देर तक वह देवी के सामने ध्यान-मुद्रा में बैठा रहा।

'माहेश्वरानन्द !' एकाएक संन्यासी का स्वर गुफा में गूँज उठा।

'जी ! गुरुदेव।'

'यह लो, मानव हस्त अस्थि।'

उस इंसानी पंजे की हड्डी को माहेश्वरानन्द को देते हुए संन्यासी ने कहा, 'इसके माध्यम से इन सारे नर-पशुओं की आत्माएँ अब तुम्हारे अधिकार में रहेंगी। इनकी सहायता से तुम असम्भव से भी असम्भव कार्य कर सकने में समर्थ होगे।' थोड़ा रुककर उस क्रूर संन्यासी ने आगे कहा, 'मैंने सामूहिक नरबलि द्वारा तुमको असीम तामसिक शक्ति प्रदान की है - इसका दुरुपयोग मत करना —'

मैंने देखा - यह सुनकर माहेश्वरानन्द के चेहरे पर अजीब-सी चमक आ गयी। उसने विनम्रता से संन्यासी को प्रणाम कर उस इन्सानी पंजे को अपने हाथों में ले लिया। मैं अवाक् पाषाणवत् देखता रहा - सारी पैशाचिक लीला। शायद आगे कुछ और देखता मगर तभी किसी के स्पर्श से चौंक पड़ा। सिर घुमाकर देखा - गौरा खड़ी थी मेरे बगल में।

मगर क्या वह गौरा थी ?

नहीं, वह गौरा नहीं थी। गौरा की शक्ल में कोई दूसरी ही युवती थी वह। अत्यधिक सुन्दर और आकर्षक थी वह। उसने कीमती जेवर और कपड़े पहन रखे थे। वेश-भूषा से कोई राजकुमारी लग रही थी। मैं उसकी ओर अभी देख ही रहा था कि एकाएक सारा वातावरण बदल गया और उस बदले हुए वातावरण में मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि मेरे चारों तरफ बहुत सारी काली छायायें चक्कर लगाती हुई नाच-कूद रही हैं।

फिर तो मैं एक पल भी वहाँ नहीं रुका। तुरन्त पलटा और पूरी शक्ति लगाकर भागा। जब गुफा के बाहर आया और अपने कैम्प में पहुँचा तो देखा मुखिया मेरा इन्तजार कर रहा था। उसकी आँखें सूजी हुयी थीं और चेहरा उतरा हुआ था। उसने रुँधे हुए कण्ठ से जो आश्चर्यजनक समाचार सुनाया उससे हतप्रभ हो गया। भय और आतंक से दिल की धड़कन तेज हो गयी। किसी तरह अपने को संभाल कर बोला, 'क्या तुम सच कह रहे हो ?'

'हाँ, हुजूर ! पिछली रात अचानक उसे खून की कई उल्टियाँ हुईं और फिर... ।' मुखिया पूरा वाक्य बोल नहीं पाया। दोनों हाथों से मुँह छिपाकर रोने लगा।

गौरा को तो मैने गुफा में देखा था, फिर उसकी मृत्यु कैसे हो गयी ? कब आयी वह बाहर ? अभी-अभी मेरे भागते समय भी... ।

'गौरा कहीं रात में बाहर गयी थी ?' मैंने पूछा।

नहीं सरकार, मुखिया ने जवाब दिया, कहीं नहीं गयी थी। बराबर घर पर ही रही।

गौरा की लाश का अन्तिम संस्कार तब तक नहीं हुआ था। जाकर लाश देखी। अचानक चीख निकलते-निकलते रह गयी। गौरा के चेहरे पर एक जैसा भाव था जिसे मैंने उस सुन्दरी युवती के चेहरे पर भागते समय देखा था। हे भगवान् ! कैसी मायाजाल में मैं उलझ गया था।

उसी दिन मैंने वह इलाका छोड़ दिया। मगर क्या इलाका छोड़ देने से मेरा पीछा छूट गया उन अभिशप्त प्रेतलीला से ? नहीं, अभी तो मेरी दुर्दशा होनी शेष थी। बनारस लौटने पर करीब एक महीने बिस्तर पर पड़ा रहा। दवा-इलाज चलता रहा, पर लाभ कुछ भी नहीं। अन्त में मेरी हालत काफी दयनीय हो गयी। ऐसी स्थिति में मेरे एक मित्र मुझे देखने आये। उनका नाम था चन्द्रशेखर। यह ज्योतिष के अलावा तंत्र के भी अच्छे विद्वान् थे।

मुझको देखते ही चौंक पड़े चन्द्रशेखर जी। बोले, 'ठीक-ठीक बतलाओ क्या बात है ?'

मैं कुछ छिपा न सका। सारी व्यथा शुरू से अन्त तक उनको सुना डाली।

काफी देर तक गम्भीर रहने के बाद वह बोले, 'वह इन्सानी पंजा अब भी तुम्हारे पास है ?'

'हाँ !' मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

उन्होंने मुझसे उसी समय पंजा लेकर गंगा में प्रवाहित कर दिया। जिसका परिणाम तुरन्त

सामने आया। उसी क्षण से मेरे स्वास्थ्य में परिवर्तन होने लगा। मगर उसी के साथ मेरे जीवन में एक के बाद एक विचित्र घटनाएँ घटने लगीं। कभी मेरे कमरे में तरह-तरह के इत्रों के सुगन्ध मिलते, कभी बेमौसमी सुगन्धित फूलों का ढेर मिलता, तो कभी फलों और मिठाइयों से भरी टोकरी मिलती। कभी-कभी तो मैं मन में जिन वस्तुओं के बारे में सोचता - वे भी मिल जाती। मैं काफी हैरान था। मेरी अनुपस्थिति में वे सारी चीजे कौन रख जाता है। मैं उस समय अकेला ही रहता था। जब बाहर निकलता तो अपने कमरे में ताला लगाकर बन्द कर जाता था। ऐसी स्थिति में कमरे में किसी बाहरी आदमी के आने की सम्भावना बिल्कुल नहीं थी। मैं परेशान हो उठा। किसी से कुछ कहते भी नहीं बनता था। यदि कहता तो भी भला विश्वास कौन करता, मेरी बातों पर।

एक रात मैंने एक ऐसा विचित्र सपना देखा जिसने अतीत के गहरे कब्र में न जाने कब की दफन इस कथा से सम्बन्धित एक रहस्यमयी घटना को अनावृत कर दिया।

उस दिन मैं कहीं बाहर नहीं निकला। साँझ हुई। कमरे की बत्ती बिना जलाये मैं अपने बिस्तर पर चुपचाप जाकर बैठ गया। मैं यह देखना चाहता था कि कमरे में कौन वे तमाम चीजें रख जाता है ?

धीरे-धीरे रात का पहला पहर गुजर गया। सहसा कमरे में वातावरण भारी होने लगा। थोड़ी ही देर बाद देखता क्या हूँ कि अँधेरे में कुहरे जैसी एक प्रकाशमयी आकृति प्रकट हुई। वह आदमकद आकृति थी। एक बार उसने पूरे कमरे का चक्कर लगाया और फिर मेरे पास आकर गायब हो गयी। उसके गायब होते ही मेरी पलकें बोझिल होने लगीं और न जाने कब मैं गहरी नींद में सो गया और उसी अवस्था में मैंने सपने में उस टीले की जगह एक आलीशान हवेली देखी। हवेली के भीतर काफी चहल-पहल थी और चारों ओर रोशनी हो रही थी। एक लम्बे-चौड़े कमरे में फर्श पर कीमती कालीन बिछा था - एक ओर मखमली गद्दा और मसनद लगा था - जिस पर माहेश्वरानन्द अपने कई साथियों के साथ बैठा शराब पी रहा था। सारा कमरा इत्र और गुलाबजल से गमक रहा था। दरवाजों और खिड़कियों पर रेशमी पर्दे लटक रहे थे और जूही, बेला, चमेली के फूलों की लड़ियाँ झूल रही थीं। कमरे के एक ओर चार-पाँच लोग तबला, हारमोनियम, सारंगी आदि लिए बैठे थे। कुछ ही समय बाद एक युवती ने कमरे में प्रवेश किया। वह शायद नर्तकी थी। तेज़ रोशनी में जब मैंने उसका चेहरा देखा तो एकबारगी चौंक पड़ा। वह वही युवती थी जिसे मैंने गुफा में गौरा की शक्ल में देखा था। पहचानने में किसी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ मुझे।

नृत्य शुरू हुआ। महफिल जमने लगी। शराब का दौर चलने लगा। लोग झूमने लगे।

सहसा मेरे सामने का सारा दृश्य बदल गया। उसकी जगह दूसरा जो दृश्य उभरा वह काफी घृणित, वीभत्स और रोमांचकारी था।

माहेश्वरानन्द की गोद में नर्तकी बुरी तरह छटपटा रही थी। वह बराबर रो भी रहीं थी।

‘आज तुमको नहीं छोड़ूँगा कामिनी, मेरे दिल की प्यास बुझानी ही होगी तुझे, बहुत इन्तजार करवाया तुमने।’ वासना में डूबे हुए स्वर में माहेश्वरानन्द बोला।

नहीं, नहीं पण्डित जी ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं अपनी जान दे दूँगी। मैं कला बेचती हूँ - जिस्म नहीं पण्डित जी। मुझको छोड़ दीजिए - रोते हुए नर्तकी ने जवाब दिया।

वासना में डूबा हुआ माहेश्वरानन्द उस समय जैसे पागल हो गया था। उसने नर्तकी को अपनी भुजाओं में दबोच लिया और बेतहाशा उसे चूमने लगा।

तभी अचानक एक दर्दनाक चीख उभरी और कमरे के वातावरण में फैलकर चिथड़े-चिथड़े हो गयी। दूसरे ही क्षण कीमती कालीन खून से भींग उठा। मैंने देखा-कामिनी की निर्जीव काया माहेश्वरानन्द की गोद में एक ओर लुढ़क गयी थी और माहेश्वरानन्द आँखे फाड़े उसको देख रहा था। कामिनी ने आत्महत्या कर अपने चरित्र की रक्षा कर ली थी।

मगर बाद में उसकी आत्मा ने माहेश्वरानन्द को नहीं छोड़ा। एक साल के भीतर ही उसका सारा यश, वैभव, धन-सम्पत्ति नष्ट हो गयी। एक दिन उसने भी हवेली में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। आत्महत्या के पहले उसकी हालत पागलों जैसी हो गयी थी। वह पूरी रात हवेली में चिल्लाता और रोता रहा।

माहेश्वरानन्द के मरने के बाद हवेली भी धीरे-धीरे टीले की शक्ल में बदल गयी। मगर माहेश्वरानन्द की आत्मा भयंकर ब्रहा बनकर वहाँ भटकती रही। जिन प्रेतात्माओं को उसने कभी अपने वश में कर रखा था - वे उसके मरने के बाद स्वतन्त्र तो हो गयी थीं मगर प्रेतयोनि से उन्हें मुक्ति न मिल सकी। मिलती भी कैसे ? एक अघोरी तांत्रिक की मंत्र-शक्ति से बँधी जो थी। वह गुफा ही उन सबका स्थायी निवास-स्थान बन गयी। वे उसी के सीमा में भटकने लगे।

प्रेतात्माओं की यह रहस्यमयी गुफा दीर्घकाल से अघोरी और कापालिक तांत्रिकों की गुप्त साधना-स्थली थी। दो हजार वर्ष पूर्व विक्रम काल में जब कापालिकों का बोलबाला था - एक उग्र अघोरी कापालिक ने गुफा को सबसे पहले अपना साधन केन्द्र बनाया। उसने पंचमुण्डी आसन का निर्माण कर तांत्रिक देवी की प्रतिमा स्थापित की और वर्षों तक भीतर रहकर साधना करता रहा। उसके बाद कई उच्चकोटि के तंत्र-साधकों की साधना-स्थली बनी वह गुफा। अन्त में एक दीर्घ अन्तराल के बाद दो सौ वर्ष पूर्व अघोरी साधक कालीनाथ कापालिक ने गुफा में रहकर उस विलक्षण तांत्रिक देवी की उपासना शुरू की।

अघोरी कालीनाथ कापालिक ने इन सबसे प्रभावित होकर माहेश्वरानन्द को अपना शिष्य बना लिया और समाधि लेने के पूर्व उसे उच्चकोटि की तामसिक शक्ति प्रदान की। जिसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ।

मृत्यु के बाद कामिनी की आत्मा को भी शान्ति नहीं मिली। काफी लम्बे अर्से तक वह गुफा की प्रेतात्माओं के साथ भटकती रही। अगर चोखूराम, माहेश्वरानन्द की ब्रह्म प्रेतात्मा को सिद्ध कर कालीनाथ कापालिक का दिया हुआ पंजा हासिल न कर लेता तो शायद कामिनी की आत्मा भटकती रहती।

पंजे के हासिल होने पर गुफा की सारी प्रेतात्माएँ चोखूराम के वश में तो हो गयीं मगर

कामिनी की आत्मा नहीं। वह उसको अपने अधिकार में करने के लिए बराबर कोशिश करता। संयोगवश कामिनी की आत्मा ने मुखिया की लड़की गौरा के रूप में जन्म ले लिया। अपनी विद्या के जरिए जब चोखूराम को इस रहस्य का पता चला तो वह गौरा के पीछे पड़ गया।

कामिनी की आत्मा ने गौरा के रूप में जन्म तो ले लिया किन्तु दो सौ वर्ष पहले की स्मृति बराबर उसमें बनी रही। एक आत्मा जब जन्म ले लेती है तो पिछले जन्म की सारी स्मृति संस्कार बनकर जीवन में उतर आती है। मगर कामिनी की आत्मा के साथ ऐसा नहीं हुआ। उसकी स्मृति संस्कार क्यों परिवर्तित नहीं हुई ? इस पर विचार करना परामनोविज्ञान का काम है।

मेरे जीवन के अनुभव और संस्मरण पर आधारित यह विचित्र और अविश्वसनीय कथा एक प्रकार से यहीं समाप्त हो जाती है। कथा पढ़कर निश्चय ही आप सबके मन में विभिन्न प्रश्न खड़े होते हो, मगर मेरा अनुरोध है कि इस कथा को मनोरंजन तक ही सीमित रखें। हाँ, अन्त में आपको यह बतला दूँ कि प्रेतात्माओं की यह रहस्यमयी गुफा आज भी रहस्यमय बनी हुई है। उसमें भटकने वाली प्रेतात्माओं को मुक्ति मिली या नहीं - यह तो मैं भी नहीं बतला सकता, मगर उस इन्सानी पंजे को गंगा में प्रवाहित कर देने से कामिनी को अवश्य प्रेतयोनि से मुक्ति मिल गयी। वह यही चाहती भी थी। अदृश्य रूप से वह इसीलिए मेरे साथ बनारस आयी थी। इस समय अन्तरिक्ष में कामिनी की मुक्त आत्मा कहाँ है - यह बतला सकना मेरे वश की बात तो नहीं है किन्तु यदा-कदा जब मैं अपनी विशेष यौगिक स्थिति में रहता हूँ तो उससे मेरा सम्बन्ध अपने आप जुट जाता है।

अध्याय १२
प्रेत की सन्तान

सन् १९५० ई० की बात है।

मैं उन दिनों परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेतविद्या पर शोधकार्य कर रहा था। भुतहे मकानों में पूरी रात गुजारना, प्रेतबाधा के मूल कारणों का पता लगाना, प्रेतबाधित स्त्री-पुरुषों की गतिविधि को समझना आदि भी मेरे शोध-विषय का एक प्रमुख अंग था। इस दिशा में मेरे सहयोगी थे भुवनमोहन गांगुली। वाराणसी के शिवालाघाट मुहल्ले में रहते थे गांगुली महाशय। उच्चकोटि के तांत्रिक थे वे, मगर अपनी शक्ति को कभी किसी के सामने प्रकट नहीं करते थे। उनके एक परम मित्र थे राखाल बाबू। दस वर्ष पूर्व कालीदास के विचार से जब वे आए, तो वाराणसी में सर्वप्रथम उनका परिचय गांगुली महाशय से ही हुआ। धीरे-धीरे वह साधारण परिचय मित्रता में बदल गया।

राखाल बाबू विधुर थे। केवल एक लड़का था शशांक। असम में कहीं कोई नौकरी करता था वह। हर मास वह पिता के पास जो रुपये भेजता, उसी से राखाल बाबू अपना खर्च चलाते थे। उनकी अपनी जो भी जमा-पूँजी थी, उसे राखाल बाबू ने बैंक में रख छोड़ा था।

शशांक का विवाह तीन साल पूर्व हुआ था। पत्नी का नाम था नमिता। असम की जलवायु उसके प्रतिकूल थी और इसके अलावा शशांक को रहने का ढंग का मकान भी नहीं मिल पाया था, इसलिए नमिता ससुर के साथ ही रहती थी। तीन वर्ष के भीतर शशांक केवल दो बार वाराणसी आया था।

शशांक तो साधारण-सा युवक था, मगर नमिता असाधारण सुंदरी थी। बीस वर्ष की उस युवती में मानो बंगाल का सारा सौन्दर्य सिमट गया था। शान्त, सौम्य और सरल स्वभाव — इसके अलावा वह धर्मपरायण भी थी। व्रत-उपवास रखना, तुलसी के पेड़ के नीचे दीप जलाना तथा राधाकृष्ण की घण्टों पूजा करना उसकी सामान्य दिनचर्या थी। लोगों से वह कम ही मिलती-जुलती। स्वभाव से गम्भीर होने के कारण उससे पास-पड़ोस की स्त्रियाँ स्वयं ही कतराती रहती थीं। घर के बाहर कभी निकलती ही न थी वह।

राखाल बाबू पहले किराये पर रहते थे, मगर नमिता के आग्रह पर उन्होंने बैंक से जमा-पूँजी निकाल कर उसी मकान को खरीद लिया। इकतल्ला था वह मकान — कुल चार ही कमरे थे - दो सामने और दो पीछे। बीच में बड़ा-सा आँगन था।

मकान पहले किसी मुसलमान का था। भारत का बँटवारा होने के बाद वह मकान बेचकर पाकिस्तान चला गया था। राखाल बाबू ने जिससे मकान खरीदा था, वह एक बनिया था। बनिये को किसी ने बतलाया था कि उस मकान में काफी सम्पत्ति है। शायद इसी लालच से उसने मकान खरीदा था और संपत्ति के लिए तमाम पूजा-पाठ तथा हवन भी करवाया था। कई जगह खुदाई भी करवाई, मगर जब सफलता नहीं मिली, तो उसने मकान बेचने का इरादा कर लिया।

मकान खरीदने के बाद जब ये सारी बातें राखाल बाबू को मालूम हुई, तो इसकी चर्चा उन्होंने गांगुली महाशय से की।

गांगुली महाशय ने मकान की मिट्टी की जाँच की। ज्योतिष की गणना की। एक मंत्रयुक्त घी का दीप मकान में जलवाया। इन सारी क्रियाओं के बाद यह निष्कर्ष निकला कि मकान में सचमुच सम्पत्ति है।

राखाल बाबू बेचैन हो उठे। धन का लालच बुरा होता है। उन्होंने गांगुली महाशय से सम्पत्ति निकलवाने का अनुरोध किया। गांगुली महाशय जैसे सिद्ध तांत्रिक कहाँ मिलते उनको। पहले तो वह राखाल बाबू की बात टालते ही रहे, मगर जब राखाल बाबू ने नमिता से कहलवाया, तो गांगुली महाशय तैयार हो गए। नमिता को वह बहुत मानते थे, भला उसकी बात को कैसे टालते।

अमावस्या की रात्रि को अनुष्ठान करने का निश्चय हुआ। आवश्यक तांत्रिक पूजा और अन्य क्रियाएँ सम्पन्न की गईं। अन्त में भूमिशोधन के लिए काले बकरे की बलि दी गई।

राखाल बाबू प्रसन्न थे, मगर गांगुली महाशय ने कोई उत्साह नहीं दिखाया। वे बराबर गम्भीर बने रहे। बलि के बाद अचानक नमिता असाधारण हो उठी। राख जैसा रंग पुत

गया चेहरे पर। आँखें अंगारों की तरह लाल हो उठीं।

एक सप्ताह तक नियमित रूप से तांत्रिक क्रियाएँ होती रहीं। आँगन में जिस स्थान पर सम्पत्ति होने का संकेत मिला था, वहाँ खुदाई शुरू की गई। लगभग दस फुट गहराई तक खोदे जाने के बाद पुरानी ईंटों की बनी सीढ़ियाँ दिखलाई पड़ीं। वह सीढ़ी जहाँ खत्म होती थी, वहाँ पत्थर के चौकोर चबूतरे पर एक कब्र बनी थी। जिस समय लोग उसकी ओर देख रहे थे, उसी समय सहसा एक विचित्र-सी सुगन्ध वातावरण में फैल गई। ऐसा लगा, मानो कहीं इत्र और फूलों का ढेर लगा हो। सहसा गांगुली महाशय की निगाह बायीं ओर घूम गई। चौंक पड़े वह। अचकचा कर बोले, ' यह देखो ! कोई गुप्त दरवाजा है यह।'

उनका कहना ठीक ही था। लगभग तीन फुट ऊँचे दरवाजे को कीलों और पेचों से कसकर बन्द कर दिया गया था। उन्हें उखड़वा कर लोग भीतर घुसे। सामने एक छोटा-सा कमरा मिला, जिसके अस्तित्व का किसी को आभास तक नहीं था।

यह कमरा लगभग पाँच फुट लम्बा-चौड़ा था और ठीक नमिता के कमरे के नीचे बना था। टार्च और मोमबत्तियों के प्रकाश में सारा कमरा देखा गया। कमरे के एक कोने में लोहे का बड़ा भारी सन्दूक रखा था। उसका ताला भी काफी भारी और मजबूत था, जिसे तोड़ने में काफी परेशानी का सामना करना पड़ा।

सन्दूक देखकर लोगों की आँखों में चमक आ गई थी। सभी ने सोचा कि सम्पत्ति अवश्य इसी सन्दूक में होगी, मगर उसको खोला गया, तो उसमें बड़ी ही विचित्र और आश्चर्यजनक वस्तुएँ देखने को मिलीं। जादू-टोने के काम आने वाली कितनी ही वस्तुएँ जैसे मुर्दे की खोपड़ी, बन्दर का पंजा, कुछ पुतले, ताँबे-पीतल की कुछ ताबीजें वगैरह।

सन्दूक के एक दरवाजे में एक छोटी-सी तस्वीर भी मिली, जो सुनहरे फ्रेम में मढ़ी हुई थी। देखने में वह काफी पुरानी मालूम पड़ती थी।

वह तस्वीर किसी तीस-पैंतीस वर्ष के प्रौढ़ की थी। उसका चेहरा अजीब-सा पर बड़ा ही प्रभावशाली था। यदि किसी साँप को मनुष्य की शक्ल में बदल दिया जाय, तो वह बहुत कुछ इसी व्यक्ति जैसा लगेगा। उसका जबड़ा चौड़ा और काफी भयानक था। आँखें खूब लम्बी और क्रूर थीं। उनमें नीलम की-सी चमक थी, जिसे देखकर ऐसा लगता था, मानो उसे अपनी शक्ति पर घोर विश्वास हो। उस व्यक्ति की वेश-भूषा नवाबों जैसो थी। गले में कीमती मोतियों की माला झूल रही थी और उनके साथ हीरे का एक लाकेट भी झूल रहा था। दाहिने हाथ की उँगलियों में कीमती रत्नों की अँगूठियाँ थीं।

सन्दूक के दूसरे दराज में चाँदी की एक डिबिया भी मिली। उसके भीतर एक भोजपत्र मिला, जिस पर उर्दू भाषा में कुछ लिखा हुआ था। उसका भावार्थ था, 'जब तक कब्र में मेरी लाश का आखिरी कतरा तक सड़-गल कर खत्म नहीं हो जायेगा, तब तक मेरी प्रबल इच्छाशक्ति का प्रभाव इस मकान में रहेगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी उस प्रबल इच्छाशक्ति के प्रभाव से आकर्षित होकर एक दिन शकीला इस मकान में अवश्य आयेगी, और तब मैं अपनी हत्या का बदला उससे ले लूँगा —' उस पर ६० वर्ष पहले की तारीख

पड़ी थी। भोजपत्र पर लिखा यह विवरण बड़ा ही विचित्र और रहस्यमय था, मगर उस पर न किसी व्यक्ति का नाम था, न हस्ताक्षर।

गांगुली महाशय ने अनुमान लगाया कि संभव है जिस व्यक्ति की तस्वीर है, उसी से यह विवरण सम्बन्धित हो।

मगर वह व्यक्ति था कौन ? और यह शकीला कौन थी ? क्या शकीला ने ही उसकी हत्या की थी ? यदि शकीला कहीं जीवित भी हो, तो आखिर वह इस मकान में अब आयेगी कैसे ? मकान तो राखाल बाबू के अधिकार में है।

कोई समाधान न सूझा। सारी बातें रहस्यमय बनी रह गईं। सभी आश्चर्य, भय और आतंक से ग्रस्त हो गए। गांगुली महाशय के आदेश पर कमरा बन्द कर दिया गया और कब्र पर मिट्टी डालकर सारे रहस्य को दुबारा दफन कर दिया गया।

मगर छः महीने बाद ही वज्रपात हुआ।

इस अनुष्ठान की दक्षिणा किसी की मृत्यु के रूप में चुकानी पड़ेगी, किसी ने स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं की थी।

इस अनुष्ठान के बाद से ही नमिता अत्यधिक गम्भीर रहने लगी थी। उसके चेहरे पर विचित्र-सा भाव उतर आया था। आँखें हमेशा जलती रहती थीं। एक दिन वह अपने कमरे में मृत पाई गई - गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी उसने।

सुनकर मैं स्तब्ध रह गया।

स्वस्थ, सुशील, धर्मभीरु, कर्त्तव्यपरायण और पढ़ी-लिखी युवती थी नमिता। आखिर कौन-सा दुःख था? कौन-सा कष्ट था? कौन-सी व्यथा थी? कौन-सा अभाव था उसे जिसके कारण आत्महत्या कर ली उसने ? वह माँ बनने वाली थी, यह सुनकर तो मुझे घोर आश्चर्य हुआ। मन खिन्न हो उठा। दौड़ा-दौड़ा गांगुली महाशय के घर पहुँचा।

वह मौन साधे अपलक शून्य की ओर निहार रहे थे। चेहरे पर वेदना और व्यथा के भाव तैर रहे थे।

मैंने उनका मौन भंग नहीं किया। चुपचाप एक कोने में चटाई बिछाकर बैठ गया।

कुछ क्षण बाद उनकी निगाह घूमकर मुझ पर टिकी। बोले, 'नमिता की मृत्यु का रहस्य जानना चाहते हो न ? लो पढ़ो।' उन्होंने एक लिफाफा मेरी ओर सरका दिया।

मैं काँपते हाथों से पत्र खोलकर पढ़ने लगा-

'मैं जानती हूँ कि जो कुछ मैं लिखने जा रही हूँ, उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा, इसी भय से मैंने आज तक यह बात किसी से कही भी नहीं। यदि मैं कह भी देती, तो शायद सभी मुझे सन्देह और उपेक्षा की दृष्टि से देखते। पर जो कुछ मैं लिख रही हूँ वह अक्षरः सत्य है। अब, जबकि मैंने इस शरीर को छोड़ देने का निर्णय कर ही लिया है और अपना मानापमान

देखने को जीवित रहूँगी ही नहीं, तो फिर भला असत्य लिखूँगी ही क्यों ?'

'छ: मास पहले की बात है, जब धन-सम्पत्ति के लिए इस मकान को खोदा जा रहा था। मार्च का महीना होते हुए भी वर्षा हो जाने के कारण ठण्ड काफी बढ़ चुकी थी। मैं अपने कमरे में दरवाजा, खिड़की बन्द करके नित्य की तरह अकेली सोयी पड़ी थी। रात का कौन-सा प्रहर था, बतला नहीं सकती। अचानक मेरी नींद टूट गई। कमरे में अँधेरा था। मैंने अपने आपको विचित्र स्थिति में पाया, जैसे मैंने शराब पी ली हो। नशे में धुत थी। मुझ पर एक विचित्र, अवर्णनीय मस्ती छाई थी, तभी अचानक कमरे की बत्ती जल उठी। मैं यह देखकर हैरान रह गई कि मेरे पति सामने खड़े मुस्करा रहे हैं। इसके पहले कि मैं कुछ कहती या पूछती, कमरे की बत्ती बुझ गई और वे मेरे बिस्तर पर आ पहुँचे और मुझे भींच कर मेरी नंगी पीठ और छाती पर हाथ फेरने लगे।'

सारी रात एक मधुर सुख और नशे में गुजर गई। भोर हो चली थी, तब तक उसी नशे की स्थिति में मेरी आँख लग गई।

और जब नींद टूटी, तो काफी दिन चढ़ आया था। सहसा मुझे रात वाली घटना याद हो आयी और मेरा शरीर भय और आतंक से काँप उठा। दरवाजे की सिटकनी ज्यों की त्यों लगी थी। भला अन्दर कोई कैसे आ सकता था ? और फिर मेरे पति सहसा ही कैसे इतनी दूर आ सकते थे ? उनके आने की कोई सम्भावना ही नहीं थी।

फिर मैं मन ही मन मुस्करा उठी। सोचा कि यह सब कुछ सुखद स्वप्न से अधिक और कुछ न था, लेकिन मेरा ध्यान जब अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों और खुले बालों की ओर गया, तो मन एकबारगी जैसे डूब-सा गया। तभी पास की मेज पर पड़े एक लिफाफे पर नजर गई। मैंने तुरन्त अपने कपड़े ठीक किए। बालों को सँवारा और बिस्तर से उठकर वह लिफाफा देखा। उसमें काश्मीरी सेब और लाल-लाल कंछारी अनार थे। अब तो मेरे होश उड़ गए। ये सारे फल कहाँ से आ गए ? इस लिफाफे को देखने के बाद रात वाली घटना को केवल स्वप्न मानने के लिए अब मेरा मन तैयार नहीं था।

पहले तो जी में आया कि मैं वह लिफाफा अपने ससुरजी के पास ले जाऊँ और रात वाली सारी बात सच-सच कह दूँ। फिर शंका-सी हुई, कौन करेगा मुझ पर विश्वास ? उल्टे मुझे ही चरित्रहीन समझा जायेगा। मेरे ससुरजी मुझे देवी समान समझते हैं। इस घटना से गहरा आघात लगेगा उनकी आत्मा को। मैंने तुरन्त लिफाफे को अलमारी में बन्द कर दिया और शीशे के सामने खड़ी होकर एक बार फिर अपने बालों को अच्छी तरह सँवारा, फिर दरवाजा खोलकर बाहर निकली।

मुझे परेशान देखकर मेरे ससुरजी ने पूछा, 'क्या बात है, बेटी ? तबीयत तो ठीक है न ?'

मेरे मन में आया कि ससुरजी के चरणों पर अपना सिर रखकर फूट-फूट कर रोऊँ और सारी बात सच-सच कह दूँ। पर जैसे किसी अदृश्य शक्ति ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। अपने को संभाल कर मैं बोली, 'नहीं बाबा, कोई बात नहीं है।' यह कह मैं चाय बनाने के लिये रसोईघर में घुस गई।

खैर ! रात वाली घटना रह-रह कर मेरे मन और मस्तिष्क को बुरी तरह झिंझोड़ रही थी, फिर भी मैंने दिन का सारा काम पूरा किया ।

साँझ हुई। तुलसी के नीचे दीप जलाया। भगवान् की पूजा की । भोग लगाया। मन कुछ हल्का हुआ । रात फिर सिर पर आ पहुँची । मैंने ससुरजी को भोजन कराया, फिर स्वयं भोजन किया । उस समय रात के करीब दस बज गये होंगे ।

मैं अपने कमरे में पहुँची । सावधानी से दरवाजा और खिड़की बन्द की। उन्हें फिर दो बार देखा कि कहीं खुले न रह गये हों । पूरी तसल्ली करने के बाद मैंने बत्ती बुझा दी और पलंग पर लेटकर सिर तक रजाई ओढ़ ली। पर मेरी मन:स्थिति सुबह की अपेक्षा और भी खराब थी। आशंका और आतंक से मन काँप-काँप उठता था । नींद तो क्या आती एक-दो क्षण बाद मैं आँखें कमरे में घुमा-घुमा कर चारों ओर देखती रही ।

रात के बारह बज गए । पलकें भारी होने लगीं । मैं सोने को ही थी कि कमरे में वही विचित्र-सी सुगन्ध भर गई और साथ ही किसी की पदचाप सुनाई पड़ी । दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। ऐसा लगा- जैसे मेरे शरीर का सारा खून मस्तिष्क में एकत्र होकर शिराओं को फाड़ देगा । फिर पास ही किसी की साँस लेने की आवाज भी सुनाई देने लगी । मैंने कुछ सँभल कर सहमते हुए टेबुल लैम्प जला दिया । एक व्यक्ति मेरे सामने खड़ा मुस्करा रहा था और मेरी ओर एकटक देख रहा था । अब मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया था कि जो कोई भी हो, मेरा पति नहीं है । यह तो और ही कोई लीला है । मैंने साहस करके उस व्यक्ति की ओर देखा और पूछा, 'कौन हो तुम ?'

वह जवाब में केवल मुस्करा भर दिया । उसने कुछ ऐसी निगाहों से मेरी ओर देखा कि मैं सिहर उठी । वह मेरी ओर बढ़ने लगा । मैं घबरा कर पलंग से उतर गई और जोर से चीखकर बोली, 'कौन हो तुम ? जवाब क्यों नहीं देते ।' पर उसने कोई जवाब नहीं दिया - बस, मेरी ओर धीरे-धीरे बढ़ता रहा । मैंने टेबुल पर रखे पीतल के गुलदस्ते को उठाकर जोर से उसके सिर पर दे मारा । पर मैं यह देखकर हैरान रह गई कि वह पहले की तरह बराबर मुस्कराये जा रहा था । उस पर गुलदस्ते के भरपूर वार का कोई असर ही नहीं हुआ था । मेरे बिल्कुल करीब आकर उसने मुझे अपनी बाँहों में इस प्रकार ले लिया, जैसे मैं कोई नन्हीं-सी गुड़ियाँ होऊँ । फिर उसने मुझे पलंग पर लिटाकर बत्ती बुझा दी ।

अँधेरे में उसने मेरे सारे कपड़े एक-एक करके उतार दिए, फिर अंगों को सहलाने लगा । मैं सिहर उठी । मुझ पर फिर वही नशा छाने लगा । वही मस्ती आने लगी । रह-रहकर मुझे रोमांच हो आता था । एक विचित्र आनन्ददायक अनुभूति थी, जो मुझे कभी पहले प्राप्त नहीं हुई थी । मैं सब कुछ भूलकर उसकी भुजाओं में पड़ी रही । वह सारी रात न सोया और न मुझे ही सोने दिया । मैं यंत्रचालित-सी उसके इशारे पर नाचती रही । वह भय, जिससे मैं सारे दिन परेशान रही थी, अब दूर हो चुका था । मैं एक विचित्र तृप्ति का अनुभव करने लगी । एक ऐसी तृप्ति और एक ऐसा सन्तोष जो मुझे पहले कभी नहीं मिला था । उसी अवस्था में न जाने कब मेरी आँख लग गई ।

सवेरे जब मैं उठी तो परेशान तो अवश्य थी, पर वह परेशानी अब एक अलग प्रकार की थी । इस परेशानी में भय का अब नाम तक न था । परेशानी अब यह थी कि अगर किसी ने देख लिया या किसी को पता चल गया, तो क्या होगा ? आज फल के लिफाफे के स्थान पर एक सुन्दर-सा डिब्बा रखा था मेज पर । अपने कपड़े और बाल ठीक करके मैं पलंग पर से उठ खड़ी हुई । शीशे के सामने जाकर मैंने पाउडर और क्रीम से चेहरे को सँवारा । फिर मेज पर पड़े डिब्बे को खोला और यह देखकर चकित रह गई कि उसमें मोतियों का एक कीमती हार था । बीच में हीरे का एक सुन्दर लाकेट झूल रहा था। मैं उसे गले में डालकर शीशे में अपनी छवि देखने की इच्छा का संवरण न कर सकी । हार मेरे गले में सचमुच सब सुन्दर लग रहा था । मैं काफी देर तक अपने आपको शीशे में निहारती रही । फिर हार को उतार कर ट्रंक में रख दिया । दोपहर को कामों से फुर्सत पाकर मैंने कल वाले सेब और अनार निकाले — काटकर खाये। इतने स्वादिष्ट फल मैंने जीवन में पहले नहीं खाये थे ।

रात आई । उस दिन न जाने किस भावना के वशीभूत होकर मैंने श्रृंगार किया और गले में वह हार भी पहन लिया ।

टन्-टन् करके बारह बजे ।

पहले कमरे में सुगन्ध फैली, फिर पदचाप सुनाई पड़ी । बत्ती मैंने पहले ही बुझा दी थी । वह मेरे बिस्तर में आ पहुँचा । उस रात पिछली दो रातों से भी अधिक सुख मिला, अधिक आनन्द आया और तीव्र अनुभूति हुई । कामना और वासना ने मिलकर एक स्वर्गीय तृसि की सृष्टि कर दी उस रात मेरे मन में । मैंने जीवन में कभी ऐसे अवर्णनीय सुखद सहवास की कल्पना तक न की थी ।

एक महीने तक नित्य ऐसा ही होता रहा । अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं निश्चय ही उन दिनों किसी अज्ञात शक्ति के वश में थी । मेरी आत्मा पर किसी ने पूर्ण अधिकार कर लिया था,

एक दिन मेरे पति का पत्र आया । पढ़कर विह्वल हो उठी । एक-एक शब्द में प्रेम का मधु घुला था । पढ़ते-पढ़ते मेरा मन आन्दोलित हो उठा । अपने पति से जो मुझे कितना प्रेम करते थे, मैं विश्वासघात कर रही थी । उनको धोखा दे रही थी । मेरी आत्मा मुझे फटकारने लगी। मेरे नारीत्व ने मेरे पूर्वसंस्कार को एकबारगी जाग्रत कर दिया, और मैंने निश्चय कर लिया कि जो हो गया, सो हो गया, आज मैं उस धूर्त, कपटी को समझूँगी !

रात आई । रोज की तरह वह आया और मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गया । मैंने उसकी ओर देखा। वह आज अपने असली रूप में था । कोई तीस-पैंतीस वर्ष का आकर्षक युवक था वह । उसकी मोहक आँखों में विचित्र-सा आकर्षण था । मैं करुण स्वर में बोली, 'तुम कौन हो ?' मुझे रोज इस प्रकार क्यों परेशान करते हो ? क्या बिगाड़ा है तुम्हारा मैंने ?

उसका खिला हुआ चेहरा एकबारगी कुम्हला गया, मगर वह कुछ बोला नहीं ।

मैं उठकर उसके पाँवों में गिर पड़ी और बोली, 'ईश्वर के लिए और न गिराओ मुझे । आखिर

किस अपराध का दण्ड देने आते हो तुम मुझे ।'

उसका कुम्हलाया चेहरा लाल हो उठा । आँखों में हिंसा का भाव उतर आया । क्रोध भरे स्वर में कहने लगा, 'तुम जानना ही चाहती हो तो सुनो । मैं ईरान का शाह नवाज हूँ । मेरी स्त्री बहुत सुन्दर थी । लाखों में एक थी वह । मैं उसे अपनी जान से भी अधिक प्यार करता था । मैं उसकी हर इच्छा पूरी करता था । उसकी हर खुशी को पूरी करने को तैयार रहता था । उसको किसी बात की कमी न थी । शादी के बाद उसने हिन्दुस्तान घूमने की इच्छा जाहिर की । यह साठ वर्ष पहले की बात है । लाहौर में मेरे एक रिश्तेदार रहते थे । मैंने उनको खत लिखा और अपनी स्त्री को लेकर जब हिन्दुस्तान आया, तो उन्हीं के घर ठहरा। वे हिन्दुस्तान की हर जगह से परिचित थे । अपने कारोबार के सिलसिले में हर शहर घूम चुके थे । मेरे रिश्तेदार का एक बेटा था । नाम था अब्दुल कादिर — बड़ा हसीन और आकर्षक युवक था वह । उम्र रही होगी पच्चीस साल की । मेरी पत्नी से उसका परिचय काफी घनिष्ट हो गया । मुझे अपनी पत्नी पर पूरा भरोसा था इसलिए दोनों की घनिष्ठता को मैंने महत्त्व नहीं दिया । मेरी पत्नी कादिर से बेझिझक बातें करती, कभी-कदा हँसी-मजाक भी करती । कार में बैठकर उसके साथ घूमने भी चली जाती । मैं कभी दखल न देता ।'

'लाहौर में हम लोग दो महीने रहे । उसके बाद दिल्ली, आगरा और बनारस घूमने की इच्छा हुई । कादिर भी साथ हो लिया । मैंने सोचा, चलो, कादिर के साथ रहने से सुविधा ही रहेगी । काश ! मुझे आभास भी मिल गया होता कि मेरी स्त्री, कादिर से प्यार करने लग गई है और कादिर भी उसे चाहने लगा है, तो भूलकर भी कादिर को साथ न लेता । खैर, हम सब बनारस आए। अन्य शहरों की अपेक्षा बनारस बहुत अच्छा लगा मेरी स्त्री को । कई महीने बीत गए । यह जाने का नाम न लेती । जब मैंने बहुत समझाया तो बोली, 'मैं यहाँ से कभी नहीं जाऊँगी। कहीं कोई मकान खरीद लो, मैं उसी में रहूँगी । मैं भला क्या जानता था कि इसके पीछे कादिर का हाथ है ।'

मेरे पास पैसों की कमी न थी । अपने साथ काफी जवाहरात और सोना लाया था मैं । तुमको बतला ही चुका हूँ कि अपनी पत्नी की खुशी में ही मेरी खुशी थी । इसी मकान को खरीद लिया मैंने । उस समय नवाबों के खानदान यहीं आबाद थे । मुझे किसी बात की परेशानी नहीं थी । कादिर को मैंने कई बार लौट जाने को कहा, मगर वह बार-बार यही कहता कि वह बनारस में बनारसी साड़ी का कारोबार करना चाहता है इसलिए यहीं रहेगा ।

पर उसका इरादा कुछ और ही था । वह तो मेरे ज़वाहरातों और सोने को हथियाने के साथ-साथ मेरी स्त्री को भी हासिल करना चाहता था और उसके इस घृणित इरादे को पूरा करने के लिए मेरी बीवी उसका साथ देने को तैयार थी । मगर मैं क्या जानता था कि जिसको मैंने दिल से चाहा है, वही मेरे साथ विश्वासघात करेगी ।

आखिर एक रात दोनों ने मिलकर मेरी हत्या कर दी । और इसी मकान के तहखाने में मुझे दफन कर दिया ।

वह चुप हो गया। उसकी आँखों में आँसू उतर आये थे। मैं सहमी-सहमी उसकी दर्दभरी कहानी सुनती रही। फिर किसी तरह बोली, 'मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है, पर इसमें मेरा क्या दोष है ?'

'कुछ नहीं ¿ वह कुछ तेजी से बोला। उसकी आँखों में आँसुओं की जगह सहसा ही एक विचित्र-सा, भाव झलकने लगा था।

मैं डर गई।

वह तीखे स्वर में बोला, 'मेरी हत्या करने के पहले मेरी स्त्री ने मुझ पर काफी अत्याचार किये थे। मुझे पूरी तरह से विवश कर दिया था दोनों ने मिलकर। प्यार में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। वह अन्धा हो जाता है। यही हालत मेरी थी। मैं कादिर को अलग कर देना चाहता था, मगर इसका कोई उपाय न था, मैंने जादू-टोने का रास्ता अपनाया था, लेकिन सफलता नहीं मिली। खैर, मैंने मरते समय प्रतिज्ञा की थी कि अपने ऊपर किये गए अत्याचारों का और अपनी हत्या का बदला मैं अपनी स्त्री से जरूर लूँगा। पर...' उसका स्वर बदल कर कोमल हो गया था, 'पर तुमको देखकर अपना इरादा बदल दिया।'

'मुझसे और आपके इरादे का क्या मतलब है ?'

वह 'हो-हो' करके एकबारगी हँस पड़ा। बोला, 'तुम पुनर्जन्म पर विश्वास करती हो ?'

'हाँ करती हूँ।'

' तो सुनो ! तुम्हीं मेरी बीवी शकीला थीं।'

मेरा दिल डूबने लगा, ' यह कैसे को सकता है ?'

वह बोला, 'इस दुनिया से परे एक और दुनिया है, जहाँ सब कुछ सम्भव है। मैं उसी दुनिया का रहने वाला हूँ। इसीलिए सब जानता हूँ। शकीला ने जैसे मुझे धोखा दिया था, उसी तरह कादिर ने भी उसको दिया। दो साल बाद, जब शकीला के हुस्न और जवानी से उसका दिल भर गया, तो एक दिन उसे इसी मकान में अकेली छोड़कर वह माल-मत्ते के साथ लाहौर भाग गया। शकीला को करारा धक्का लगा। वह अब अकेली थी - निस्सहाय ! उसके आमने अँधेरा ही अँधेरा था। वह पागल हो गई।'

'पड़ोस के एक मुसलमान ने उसके पागलपन का फायदा उठाया और शकीला को निकाल कर मकान हथिया लिया। मैं चाहता तो उसी समय शकीला से बदला ले सकता था, मगर वह स्वयं अपने किये का फल भोग रही थी। आखिर एक दिन उसकी भी मौत हो गई। उसकी लावारिस लाश दो दिनों तक पड़ी रही। आखिर में लोगों ने चन्दा लगाकर उसकी लाश को दफन किया। इस बात को एक लम्बा अरसा गुजर गया - तब से मैं शकीला की खोज में था। मैं जानता था कि कभी न कभी वह इस मकान में जरूर आयेगी। बदले की आग में जल रहा था मैं। मगर तुमको देखकर मेरी प्रतिहिंसा की भावना खत्म हो गई। मैं तुमसे फिर प्यार करने लगा। आखिर मैंने शकीला से प्यार किया था।'

उसका चेहरा फिर खिल उठा - गुलाब के फूल की तरह मुस्कराता हुआ बोला, 'तुम बिल्कुल शकीला की ही शक्ल की हो। वही दुधिया बदन, वही नाक-नक्शा, वैसे ही घने-काले रेशम जैसे मुलायम बाल, तुम्हारे होंठ' उसने मेरी ठोढ़ी पकड़ कर ऊपर उठाया और झुक कर कहा, "वैसे ही रस भरे हैं। तुम्हारी आँखों की वह नीलिमा में वही गहराई - वही आकर्षण है। तुम्हारा जिस्म भले ही नमिता का हो, मगर रूह शकीला की है।'

मैं तड़प कर अलग हो गई।

वह फिर मेरी ओर बढ़ा और बड़े गुस्से में बोला, 'जानती हो, तुम्हारे इन्कार का नतीजा क्या होगा ? तुमको तो छोड़ दिया मैंने, मगर तुम्हारे आदमी को नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारा बदला मैं उसी से लूँगा।'

'नहीं ! नहीं ! भगवान् के लिए ऐसा मत करना। मुझे अपनी बरबादी और तबाही मंजूर है, पर उन्हें कुछ न करना।' और मैं फफक-फफक कर रोने लगी।

उसने मुझे उसी अवस्था में पकड़ कर अपने पास खींच लिया और सारी रात मेरे शरीर से खेलता रहा। फिर अक्सर यही होने लगा।

कुछ दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि मैं गर्भवती हूँ। हे भगवन् ! उस रात वह आया, तो मैंने उसे अपनी नयी परेशानी बताई। वह बस, मुस्कराता रहा। जाने से पहले बोला, 'मेरा बदला पूरा हो गया। लो, यह मेरी अन्तिम भेंट है।' यह कहकर वह गायब हो गया।

मैंने उसकी भेंट को खोलकर देखा। बड़े कीमती हीरे-मोती थे। मैंने उन्हें संभाल कर ट्रंक में रख दिया। उसके बाद वह कभी नहीं आया, पर जो पाप वह मेरे पेट में छोड़ गया था, वह दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहा। मैं हमेशा अपने कमरे में पड़ी रहती। चिन्ता और परेशानी के कारण मेरा स्वास्थ्य खराब होता गया।

दुर्गापूजा पर मेरे पतिदेव बनारस आने वाले थे। उनका पत्र जब मुझे मिला, तो मेरा मन गहरी चिन्ता में डूब गया। कैसे करूँगी मैं उनका सामना? मैंने उनके साथ विश्वासघात किया है। यह जानकर उनकी मानसिक स्थिति क्या होगी ? इसकी कल्पना कर मन से सिहर उठी। मेरी विवशता की कहानी पर भला कौन विश्वास करेगा? सब मुझे चरित्रहीन कहेंगे। बदचलन कहकर मुँह पर थूकेंगे। नहीं...नहीं मैं उनका सामना नहीं कर सकूँगी। इसलिए मैं अपने जीवन का अन्त कर रही हूँ।

पत्र में मैंने जो कुछ लिखा है, वह सब सत्य है। यदि विश्वास न हो तो- मेरा ट्रंक खोलकर देंखे। उसमें उसके दिये गए सारे हीरे-मोती और कीमती हार भरे पड़े हैं। मैं अपनी मौत की स्वयं जिम्मेदार हूँ। मैं अपने साधु जैसे ससुर और देवता जैसे पति से क्षमा माँगती हूँ।

पत्र के अनुसार नमिता का ट्रंक खोलकर देखा गया था- उसमें सचमुच ढेर सारे हीरे-पन्ने और मोती मिले, जिनकी कीमत लाखों रुपये थी। मोतियों का वह हार और हीरे का लाकेट देखकर मैं तो आश्चर्यचकित रह गया। तस्वीर में पहने व्यक्ति के हार और लाकेट से वे बिलकुल मिलते-जुलते थे। कहीं भी असमानता न थी।

हाँ, एक बात तो भूल ही गया- पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में बताया गया था कि नमिता को छ: मास का गर्भ था- मगर मांस के लोथड़े के रूप में।

अध्याय १३
मरने के बाद

भूत-प्रेतों की मति-गति क्या है ? उनकी स्थिति कैसी होती है ? इसके अलावा इस तथ्य पर भी विचार करना आवश्यक है कि 'भूत-प्रेतों की सहायता से चमत्कार दिखाने वाले औघड़ों-तांत्रिकों के पास प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध शक्ति कहाँ से आती है ?'

अन्य शास्त्रों की तरह तंत्र भी एक शास्त्र है। इसके दो मुख्य पक्ष हैं। पहला पक्ष तंत्र के दार्शनिक, आध्यात्मिक और यौगिक स्वरूप का प्रतिपादन करता है, दूसरा पक्ष केवल तंत्र के क्रिया-स्वरुप का प्रतिपादन करता है। यह पक्ष पूर्णरूप से परामनोवैज्ञानिक है। इस पक्ष के अन्तर्गत ६४ विद्याएँ हैं, जिनमें एक विद्या है 'प्रेत-विद्या'। अत: स्पष्ट है कि प्रेतविद्या भी परामनोविज्ञान के अंतर्भूत है। पूर्व और पश्चिम के परामनोवैज्ञानिक जहाँ एक ओर अचेतन मन की असीम और व्यापक शक्तियों पर खोज कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर प्रेतविद्या पर भी व्यापक रूप से अनुसंधान कर रहे हैं। परामनोविज्ञान को 'विज्ञान' की परिधि में लाने का सर्वप्रथम प्रयास सन् १८८२ में लन्दन में 'सोसायटी फॉर साइकीकल रिसर्च' की स्थापना से हुआ। इसके बाद स्थापित सन् १८८५ में 'अमेरिकन सोसायटी फॉर साइकीकल रिसर्च' की स्थापना हुई, पर उसे वैज्ञानिक मान्यता मिली फरवरी १९७१ में —

सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'प्रेत' है क्या ? वास्तव में मरने के बाद तुरन्त जो अवस्था प्राप्त होती है। वही प्रेत की अवस्था है। इस अवस्था, जीवन और स्थिति को समझने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मनुष्य का स्थूल शरीर और यह पार्थिव जगत ही सब कुछ नहीं है। जब तक शरीर है, तब तक यह जगत है। संसार में लोग शरीर को ही पैदा होते देखते हैं और चिता पर जलते हुए भी उसी को देखते हैं, पर स्वयं जन्म लेने वाला और मरने वाला भी यह समझ नहीं पाता कि वह कौन है ? इसी का समुचित उत्तर पाने के लिये मैंने प्रेत विद्या पर प्रकाशित अप्रकाशित तमाम पुस्तकें पढ़ डालीं और न जाने कितने औघड़ों, तांत्रिकों, योगियों आदि से भी मिला। तमाम तांत्रिक साधनाएँ भी कर डालीं, पर सन्तोष नहीं मिला।

एक दिन सहसा मेरी भेंट भवतोष स्मृतिरत्न महोदय से हो गई। वे दक्षिणाकाली के सिद्ध तंत्र साधक थे। वाराणसी के नारदघाट मुहल्ले में रहते थे। मैंने उनके सामने अपनी अभिलाषा व्यक्त की तो वह मेरा आग्रह टाल न सके। उन्होंने मुझे एक मंत्र देकर नित्य एकान्त गंगातट पर उसको जपने का आदेश दिया।

लगभग दो महीने का समय गुजर गया। एक दिन साँझ के समय नित्य की भाँति हरिश्चन्द्रघाट के बगल वाले घाट की सीढ़ियों पर बैठा मैं मंत्र का जाप कर रहा था। धीरे-

धीरे साँझ की कालिमा रात्रि के अंधकार में बदल गई। वातावरण पहले से अधिक नीरव हो उठा। सहसा मेरी नजर एक नारी-छाया पर पड़ी। वह मेरी ही ओर बढ़ती आ रही थी। बिल्कुल पास आकर वह खड़ी हो गई।

अचकचा कर मैं पूछ बैठा - 'कौन हैं आप ? क्या काम है ?'

उत्तर देने के बजाय वह खिलखिला कर हँसने लगी। बड़ी विचित्र लगी उसकी हँसी। खूब हँसने के बाद वह मन्द स्वर में बोली, 'मुझे पहचाना नहीं ? मैं जवा हूँ ! जवा !'

'कौन जवा ?'

'अरे, नाम भी भूल गए आप !' फिर कुछ रुक कर उदास स्वर में कहने लगी, 'जब से मैं बनारस से गई हूँ, तब से एक दिन भी चैन नहीं मिला मुझे। आपके दरस के लिए तरस-तरस कर बेहाल हो गई, मगर आप ऐसे निर्दयी हैं कि मेरा नाम तक भूल गए।'

सहसा मुझे एक झटका-सा लगा और सब कुछ याद आ गया। चीख कर बोला - 'अरे, जवा ! तुम ? यहाँ कैसे ?'

जवा मेरी गोद में सिर डालकर सिसकने लगी। मुझसे भी और कुछ बोला न गया। बस, उसकी पीठ पर हाथ फेरता रहा। न जाने कब तक वह सिसकती रही और मैं पीठ सहलाता रहा। सुधि लौटी तो वह आवेग से काँपते स्वर में कहने लगी, 'आपकी छवि दिन-रात कलेजे में आग बनकर जलती रही है। आपकी ही चिन्ता में अपनी सुध-बुध बिसार बैठी थी। मुझे आपसे प्रेम है। सिर्फ आपसे। इस संसार में मैंने सिर्फ आपको अपना देवता माना है।'

जवा मेरी सहपाठिनी थी। दस वर्ष पहले हम दोनों एक साथ पढ़ते थे। उसके माता-पिता कश्मीर के रहने वाले थे। वह बनारस में अपने मामा के साथ रहती थी। कश्मीर का सारा सौन्दर्य भरा था जवा के अपरूप रूप में। बिजली जैसी दाहक चमक वाली रूपसी जवा ने मेरे जीवन को लकदक उजाले से एकबारगी उद्भासित कर दिया था। उद्दाम यौवन से तरंगित उसकी देह का कोमल स्पर्श पाने के लिए मैं लालायित रहता था। विश्वविद्यालय में कदम्ब के पेड़ की छाँव में बैठा मैं घण्टों एकटक जवा को निहारता रहता था।

एक दिन हम दोनों ने शादी कर लेने का निश्चय कर लिया, लेकिन भयंकर वज्रपात हुआ। दीपावली की छुट्टी में जवा कश्मीर जा रही थी। गाड़ी में चढ़ते समय रतनारी आँखों से आँसू भरकर उसने कहा था, 'मेरा इन्तजार करना, मैं जल्दी ही आऊँगी।'

लेकिन जवा नहीं लौटी। धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। फिर समाचार मिला कि उसकी शादी हो गई।

इस आघात ने मेरी समस्त आकांक्षाओं को राख कर दिया। चारों ओर अब शून्य ही शेष था।

फिर दस वर्ष का दीर्घ अन्तराल। और अब यह सर्वथा अप्रत्याशित मिलन। मैंने पूछा, 'कहाँ ठहरी हो ?'

‘मामा के यहाँ।’

‘मेरे यहाँ कब आओगी ?’

‘कल, इसी समय — इन्तजार करना। तुमसे बहुत सारी बातें करनी हैं। अब बहुत अधिक समय नहीं है। आग बुझाये नहीं बुझती।’ जवा ने अपलक मेरी ओर देखते हुए कहा।

दूसरे दिन अधिक इन्तजार नहीं करना पड़ा। ठीक समय पर आ गई वह। ट्यूब लाइट के धवल प्रकाश में उसका उज्जवल रूप और भी अधिक जगमगा उठा। इस बीच उसके सौन्दर्य में कोई अन्तर नहीं आया था, बल्कि माँग में दमकते सिन्दूर ने जैसे उसे और सजा दिया था।

धीमे से फुसफुसा कर जवा ने कहा, ’बत्ती बुझा दो।’

‘क्यों ?’

कजरारी आँखें उठाकर भरनजर मेरी ओर जवा ने देखा। बोली, ‘प्रकाश में अभिसार कैसे होगा ? अपने यह बहुमूल्य निधि तुम्हारे ही चरणों में अर्पित करने के लिए मैं इतने दिनों से सुरक्षित रखे हूँ।’

मैंने बत्ती बुझा दी। बाहर- भीतर अंधकार फैल गया। उस रोज मैंने पूरी रात जवा की रसवन्ती देह का छक कर सौरभ-पान किया। इतने दिनों से जो ताप अहर्निश मन-प्राण को जलाता रहा था, उसे शीतलता का प्रलेप मिल गया उस रात।

रात को फिर आने का वादा करके जवा भोर होने के पहले ही चली गई।

उस रात वह आई, तो अभ्यस्त मीठी हँसी हँसती हुई बोली, ’देखो, तुम्हारे लिए मैं क्या लाई हूँ ?’ यह कहकर उसने आँचल में से जूही, चमेली, बेला, रातरानी के ढेर सारे ताजे फूल मेरे आगे बिखेर दिए। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। बेमौसम के ये फूल कहाँ से ले आई वह ? फिर उस ओर से ध्यान हटाकर मैंने कहा, ‘तुम इसी बिस्तर पर बैठो - मैं तुम्हारा एक फोटो लूँगा।’

‘अच्छा, मेरा फोटो लोगे — खींचो !’ कहकर वह फूलों की शय्या पर बैठ गई।

मैंने कीमती कैमरे से दो-तीन पोज खींच लिए फिर बोला, ‘बत्ती बुझा दूँ ?’

‘नहीं, आज बत्ती मत बुझाओ। कहा था न मुझे तुमसे बहुत सारी बातें करनी हैं।’

‘कैसी बातें ? करो !’

‘आजकल क्या कर रहे हो ?’

‘परामनोविज्ञान के अन्तर्गत प्रेतविद्या पर खोज कर रहा हूँ।’

‘सफलता मिली ?’

‘नहीं ! सफलता तो अभी सपना बनी हुई है ।’

जवा मेरी बात सुनकर हँस पड़ी, फिर बोली - ‘इसी के सम्बन्ध में तुमसे बातें करनी हैं ।’

मुझे फिर आश्चर्य हुआ, ‘तुमसे भला इस विषय से क्या सम्बन्ध है ?’

‘बहुत सम्बन्ध है ।’ इसके बाद जवा ने मुझे बहुत-सी रहस्यमय बातें बतलायी - मृत्यु की स्थिति के बारे में, प्रेतों की स्थिति, अवस्था, गतिविधि और कार्य-कलापों के बारे में । आश्चर्य से भर उठा मेरा मन । विपुल ज्ञान भण्डार था जवा के पास । यह सब बतलाने और कहने का उसका ढंग ऐसा था - मानो स्वयं उसने उन स्थितियों और अवस्थाओं का अनुभव किया हो ।

उसने बताया, ‘जो लोग प्राकृतिक मृत्यु के पहले किसी कारणवश असामान्य रूप से मरते हैं, उनकी मूर्च्छा, शरीर से अलग होते ही समाप्त हो जाती है और वे काफी समय तक अपने आपको मृत नहीं समझते, बल्कि उन्हें लगता है कि वे अपने परिवार, समाज के बीच ही जीवित हैं और उनसे पूर्ववत् उनका सम्बन्ध बना हुआ है । वे अपने मृत शरीर को और उसके साथ स्वजन-परिजनों को भी देखते हैं । उस समय मृत प्राणी के मन में अपने से सम्बन्धित लोगों और वस्तुओं के प्रति भारी मोह हो जाता है । वे अपना अस्तित्व-बोध कराने का प्रयत्न करते रहते हैं, मगर सफल नहीं हो पाते । उस समय भारी कष्ट का सामना करना पड़ता है ।’

मैंने विस्मयभरी उत्सुकता से पूछा, ‘मरने के बाद मनुष्य अपने अस्तित्व का बोध किस शरीर में करता है ?’

‘पहले वासना शरीर में, फिर सूक्ष्म शरीर में ।’

मैंने पूछा, ‘वासना और सूक्ष्म शरीर कैसा होता है ?’

‘बिल्कुल स्थूल शरीर जैसा ही, मगर वासना का प्रभाव जितना तीव्र होगा, उसी के अनुसार वासना शरीर में भी परिवर्तन होगा । इस परिवर्तन के फलस्वरूप वासना शरीर की आयु भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है और फिर दूसरी मृत्यु होती है । अपनी मूल वासना के संस्कार को लेकर प्राणी अपनी मति-गति के अनुसार सूक्ष्म शरीर में चला जाता है अथवा किसी के गर्भ में निर्मित हो रहे स्थूल शरीर में प्रवेश कर जाता है ।’ जवा ने समझाते हुए कहा, ’यहाँ दो बातें काफी महत्वपूर्ण हैं । पहली यह कि जिस स्त्री-पुरुष की वासना से उसकी वासना मिलती-जुलती होगी - उसी के गर्भ में वह प्राणी प्रवेश कर पाता है । यदि किसी प्रकार अन्य गर्भ में वह प्रवेश कर भी गया, तो ऐसी स्थिति में शिशु गर्भ में ही मर जाता है या जन्म लेने के कुछ दिनों या महीने बाद । दूसरी बात यह कि अपनी वासना कामना के अनुरूप गर्भ में निर्मित हो रहे शरीर के प्रति काफी मोह होता है उसको । शरीर रचना पूरी होने तक वह बराबर माता के आस-पास चक्कर लगाया करता है । गर्भस्थ शिशु-शरीर का जब पूर्ण निर्माण हो जाता है, तब मृतात्मा उसमें प्रवेश करती है ।’

मैंने फिर उत्सुकता से पूछा, ‘प्रेत किसे कहते हैं ?’

जवा खिलखिला कर हँस पड़ी, बोली, पहले यह समझ लो कि मनुष्य का वास्तविक और कभी न साथ छोड़ने वाला शरीर एकमात्र सूक्ष्म शरीर है। जब तक आत्मा उन्नति नहीं कर लेती, तब तक उस शरीर को लेकर प्राणी स्थूल शरीर और मरने के बाद वासना शरीर में आवागमन करता रहता है और इस पृथ्वी से और वासनालोक से उसका सम्बन्ध बराबर बना रहता है। जिस प्रकार सूक्ष्म शरीर और वासना शरीर के साथ अपने स्थूल शरीर में प्राणी जीवन-यापन करता है, उसी प्रकार वासना जगत में अपने सूक्ष्म शरीर के साथ वासना शरीर में जीवन-यापन करता है। ये लोग ही प्रेत कहलाते हैं।

मैंने पूछा, 'सुनते हैं कि प्रेतों में बड़ी शक्ति होती है। उन्हें वह कहाँ से प्राप्त हो जाती है ?'

जवा बताने लगी, 'मन की दो अवस्थायें हैं - चेतन और अचेतन। जीवित प्राणी चेतन मन की अवस्था में काम करता है। मरने के बाद चेतन मन का स्थान अचेतन मन ग्रहण कर लेता है। अचेतन मन की भी दो अवस्थायें हैं। पहली अवस्था में वासना शरीरधारी प्रेतात्मायें काम करती हैं और दूसरी अवस्था में सूक्ष्म शरीरधारी आत्मायें। चेतन मन में जितनी शक्ति है - उससे हजारगुनी शक्ति अचेतन मन की पहली अवस्था में होती है और उनसे भी हजारगुनी अधिक शक्ति होती है उसकी दूसरी अवस्था में। इन दोनों अवस्था में शक्तियों की भिन्नता के कारण सूक्ष्म शरीरधारी प्रेतों में और वासना-शरीरधारी प्रेतों में काफी अन्तर होता है। पहले प्रकार के प्रेतों का जीवन थोड़ा शान्त, स्थिर और विवेकमय होता है, जबकि दूसरे प्रकार के प्रेतों का जीवन सर्वथा अशान्त, दुखी, व्यथित और अविवेकी होता है।'

'चेतन मन की स्थिति और जीवित अवस्था में तो मनुष्य अपनी इच्छाएँ किसी प्रकार पूरी कर लेता है, लेकिन मरने के बाद स्थूल शरीर के अभाव में उन्हें पूरा करने में अत्यधिक कष्ट का सामना करना पड़ता है। दूसरे प्रकार की प्रेतात्मायें अपनी इच्छा या वासना की पूर्ति के लिए पागलों की तरह इधर-उधर भटकती रहती हैं और अपने अनुकूल किसी प्राणी के शरीर में प्रवेश कर उसे पूर्ण करने का प्रयास करती हैं। इसी को 'प्रेत-बाधा' कहते हैं। इस प्रकार के प्रेतबाधित प्राणी के चेतन मन की शक्ति क्षीण हो जाती है, पर प्राण की शक्ति बढ़ जाती है। जितनी मात्रा में वह बढ़ेगी, उतनी ही मात्रा में प्रेतात्मा उस शरीर के माध्यम से अपनी इच्छा व वासना पूरी करेंगी। प्रेतबाधित लोग जो कुछ करते हैं, उसका उन्हें भी ज्ञान नहीं होता।'

'लेकिन पहले प्रकार की अर्थात् सूक्ष्म शरीरधारिणी प्रेतात्मायें इसके विपरीत होती हैं। अचेतन मन की दुहरी शक्ति और असीम प्राण-शक्ति के फलस्वरूप वे बिना रोक-टोक क्षणमात्र में हजारों मील की यात्रा कर सकती हैं। किसी भी स्थान पर तत्काल पहुँच कर वहाँ का समाचार प्राप्त कर सकती हैं। वे किसी भी व्यक्ति के मन से सम्पर्क स्थापित कर उसकी इच्छा और मति-गति का पता लगा लिया करती हैं, फिर उस व्यक्ति को अपने अनुरूप बनाकर मनचाहा काम लेती हैं।'

'इस प्रकार की प्रेतात्माएँ अपनी वासना की पूर्ति के लिए किसी के शरीर में प्रवेश करने के बजाय स्वयं ऐसी परिस्थिति और वातावरण तैयार कर देती हैं कि मनुष्य अदृश्य रूप से

उससे प्रेरित होकर घटना का पात्र बन जाता है और अनजाने-अनचाहे ही ऐसा काम कर बैठता है, जिससे उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।'

मैं अपलक जवा का मुँह ताक रहा था। पल भर चुप रहकर उसने मुस्कराते हुए कहा, 'मैं तुम्हें उदाहरण देकर समझाये देती हूँ। जैसे इस प्रकार की कोई प्रेतात्मा कामुक है और अपनी वासनापूर्ति के लिए व्याकुल है, तो इच्छित स्त्री-पुरुषों के मन पर प्रभाव डालकर उनको एक-दूसरे की ओर आकर्षित करेगी और ऐसी परिस्थिति का निर्माण करेगी, जिससे वे दोनों सहवास में प्रवृत्त हों। उनके आनन्द की अनुभूति से ही प्रेतात्मा वासना तृप्त कर लेगी।'

ये बातें सुनकर मुझे घोर आश्चर्य हुआ। आखिर जवा इतना सब कैसे जानती है ! यह तो बहुत ही गूढ़ रहस्य है ! पर आगे और कुछ पूछता, तभी टन्-टन् करके दूर कहीं चार घण्टे बजे। भोर हो गई। जवा अकस्मात चंचल हो उठी। व्यग्र स्वर में बोली, 'अब मैं जाऊँगी। और मत रोको।'

उसके चले जाने के बाद भी काफी देर तक मैं यही सोचता रहा कि अर्थशास्त्र की छात्रा जवा को प्रेतविद्या के इन गूढ़-गोपनीय रहस्यों की जानकारी कैसे हुई ?

दो दिन बाद जवा फिर आई - रात के समय। वातावरण में गहरी निस्तब्धता व्याप्त थी। उसके कमरे में प्रवेश करते ही विचित्र-भी स्निग्ध गन्ध भर गई और उसी के साथ एक अनोखी अनुभूति भी हुई मन में। उसी अवस्था में मैंने भरनजर जवा की ओर देखा - हे भगवान् ! कैसी आसुरी छवि थी — जवा की आँखों में एक विचित्र-सा सम्मोहन भर आया था — रक्ताभ होंठ फड़क रहे थे — जवाकुसुम जैसे गालों पर आग की लपटें खेल रही थीं जैसे —

मैंने विह्वल होकर कहा, 'आओ बैठो, जवा ! मैं तुमसे कुछ और पूछना चाहता हूँ —'

'जो पूछना चाहते हो, जल्दी पूछ लो !'

'क्यों ? आज जल्दी क्यों है ?'

'प्यास लगी है।'

'पानी पी लो।'

'नहीं ! पानी से नहीं बुझेगी यह प्यास।'

मैं समझ गया कि जवा क्या चाहती है ? हँसकर बोला, 'अच्छा, मेरी कुछ और बातों का समाधान कर लो फिर ...'

'पूछो !'

'सूक्ष्म शरीरधारिणी प्रेतात्माओं के ही बारे में जानना चाहता हूँ। सुना है ये प्रकट भी होती हैं और मनचाही वस्तुएँ भी लाकर देती हैं !'

‘हाँ ! अपने प्राणबल के माध्यम से कुछ क्षण के लिए वे अणुओं का संघटन कर स्थूल आकार में प्रकट हो जाया करती हैं। तुमको बतला ही चुकी हूँ कि इनमें अचेतन मन की विपुल शक्ति होती है। इनका अस्तित्व भूत, भविष्य और वर्तमान - तीनों कालों पर होता है। वे स्थूल पदार्थ या वस्तुओं को लाती नहीं, बल्कि जहाँ जिस स्थान पर वे वस्तुएँ रहती हैं, वहाँ जाकर उन्हें देख आती हैं, फिर तुरंत अपने मनोबल से उसकी स्वयं सृष्टि कर देती है — जो अच्छे तांत्रिक या अघोरी हैं - वे ऐसी ही उच्चकोटि की प्रेतात्माओं को लेकर खेल खेलते हैं — मंत्रशक्ति से प्रेतात्माओं का मनोबल और प्राणबल बँधा रहता है, इसलिए उनसे वे जो चाहें, करा लेते हैं — यह भी जान लो कि सूक्ष्म शरीर वाली प्रेतात्माओं में कुछ ऐसी भी होती हैं - जो सूक्ष्मलोक की स्थायी निवासी हैं — वे अच्छे और बुरे दोनों स्वभाव की होती हैं — ऐसी दुर्धर्ष आत्माओं को कोई शक्ति बाँधकर नियंत्रित कर सकती है, तो वह है यंत्र-शक्ति और यह शक्ति जिसके हाथ में होती है, वह उनके द्वारा संसार में सब कुछ कर सकने में समर्थ होता हैं।’

मैंने विस्मय से पूछा, ‘क्या ऐसे लोग संसार में हैं ?’

‘क्यों नहीं हैं !’ जवा ने कहा, ‘स्मृतिरत्न महोदय को भूल गए तुम, जिन्होंने तुमको जपने के लिए मंत्र दिया था ?’

‘हे भगवान् ! तुम स्मृतिरत्न महोदय को कैसे जानती हो ?’ आश्चर्य से पूछा मैंने।

‘क्यों नहीं जानूँगी ? उन्हीं की मंत्र-शक्ति में बँधकर तो मैं आयी थी तुम्हारे पास।’

यह सुनते ही लगा, मानो मैं किसी भयंकर इन्द्रजाल में फँस गया हूँ। किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया मैं। किसी अज्ञात भय से सारा शरीर सिहर उठा। मानो किसी ने मेरी देह से सारा जीवन-रस निचोड़ लिया हो।

मेरे सामने एक भयंकर सत्य था, मगर तत्काल निर्णय नहीं कर सका कि वह सत्य था कैसा ? तभी ट्न-ट्न करके रात के बारह बजे। अपने आप अन्तरतम को फोड़कर मेरे मुँह से एक चीख निकल गई और उसी के साथ भय-विजड़ित स्वर में बोल पड़ा - ’कौन है तू ? निकल जा यहाँ से...’

मैंने देखा - उसकी आँखें दप् से जल उठीं जैसे। नथुने फड़क उठे और चेहरा कठोर हो गया। स्याह रंग उतर आया उस पर, लेकिन शान्त स्वर में हौले से बोली, ‘मैं जवा हूँ... तुम्हारी जवा... जिससे तुमने प्रेम किया था... और जिसके साथ तुमने शादी करने की प्रतिज्ञा की थी...’

‘नहीं... तुम वह जवा नहीं हो।’

‘नहीं, वही जवा हूँ मैं। कोई अन्तर नहीं आया है मुझमें। मैं आ गई हूँ, तो अब भोर के पहले नहीं जाऊँगी। बत्ती बुझा दो...’

‘नहीं, बत्ती नहीं बुझेगी !’ मैंने कम्पित स्वर में कहा।

जवा के चेहरे पर एक पैशाचिक मुस्कान खेल गई। अमानवीय स्पन्दन से उसका शरीर भर उठा। फिर उसका दाहिना हाथ बढ़ा, बढ़ता गया ... बढ़ता गया और वहीं बैठे-बैठे उसने लगभग दस फीट दूर लगा स्विच दबाकर बत्ती बुझा दी। फिर अंधकार ही अंधकार। मुझे प्रत्यक्ष पिशाचिनी लग रही थी वह। मेरा खून पानी हो गया।

जवा का हाथ वापस लौट आया और लगा, दो बर्फ जैसी ठण्डी बाँहें मुझे अपने आगोश में लपेट रही हैं। उसके बाद चेहरे पर गर्म उच्छवास का अनुभव हुआ। मेरे भयातुर कण्ठ से सिर्फ गों-गों का विलाप भर निकला, फिर एक अस्पष्ट-सा प्राण कँपा देने वाला चीत्कार करके मैं न जाने कटे वृक्ष की तरह बिस्तर पर गिर पड़ा। गहरी मूर्च्छा की उस स्थिति में मैंने देखा - जवा मुझे अपनी बाँहों में उठाए शून्य में उड़ती हुई साथ लिये जा रही है। कुछ क्षण बाद लगा, मैं कश्मीर के किसी सुन्दर-सुखद वन-प्रदेश में पहुँच गया हूँ, जिसके एक ओर बर्फ से ढकी ऊँची-ऊँची पहाड़ी चोटियाँ हैं। वन-प्रान्त पार कर मैं एक सुनसान घाटी में पहुँचा। वहाँ पुराने ढंग के कई मकान और कुछ झोपड़ियाँ थीं। जवा मुझे लेकर एक मकान के भीतर चली गई। वहाँ सर्वत्र उदासी छायी हुई थी। फर्श पर धूल की मोटी पर्त जमी थी। मानो, वह मकान लम्बे अरसे से उजाड़ पड़ा था। श्मशान जैसी नीरवता व्याप्त थी चारों ओर। लम्बे दालान और कई कमरों को पार कर उसने एक बड़े से कमरे का दरवाजा खोला। रोशनदान से छनकर धूमिल प्रकाश भीतर आ रहा था और उसी मन्द प्रकाश में मैंने देखा - छत से लटकती हुई एक लाश। भय और विस्मय से मैं चीख पड़ा, 'यह किसकी लाश है ?'

बुझे हुए उदास स्वर में किसी ने कहा, 'जवा की। दस वर्ष पहले शादी के दो दिन बाद ही उसने आत्महत्या कर ली थी।'

'नहीं ! नहीं ! यह झूठ है। जवा तो मेरे साथ है।'

फिर वैसे ही बुझे हुए स्वर में किसी ने कहा, 'जवा नहीं, जवा की आत्मा तुम्हारे साथ है।'

सहसा स्वप्न भंग हुआ। मूर्च्छा टूटी। आँखें खुलीं, तो परिवार वालों के साथ अपने निकट मैंने स्मृतिरत्न महोदय को बैठे देखा।

पिछले चार दिनों में घटित सारी घटना सुनने के बाद वे बोले, 'मैने जो मंत्र दिया था, उसकी अदम्य शक्ति से वे प्रेतात्माएँ आकर्षित होती हैं - जो सूक्ष्म लोक में पहुँच कर उच्च स्थान प्राप्त कर चुकी होती हैं। ऐसी आत्मायें अपने जीवन काल में जिसके बहुत निकट रही होती हैं, उसके सामने सशरीर भी प्रकट हो जाती हैं और उसकी सहायता करती हैं। तुम जवा को चाहते थे और वह तुमको। उसने तुमको न पाने की स्थिति में आत्महत्या कर ली थी। मरने के बाद मरने वालों के विषय में तुमने जो कुछ सुना, वह बहुत महत्वपूर्ण है।'

मुझे स्मृतिरत्न महोदय की बातें बड़ी विचित्र लगीं, पर उस समय तो घोर आश्चर्य हुआ, जब मैंने फोटो का प्रिन्ट देखा। फोटो में बिस्तर था, बिस्तर पर बिखरे तमाम फूल भी थे, पर जवा की छाया नहीं थी।

एक प्रकार से मेरे जीवन की यह लोमहर्षक, किन्तु अति महत्वपूर्ण गाथा यहीं समाप्त हो जाती है, पर पचीसों वर्ष गुजर गए - आज भी हर पूर्णिमा की रुपहली रात में जवा की आत्मा मुझसे मिलने अवश्य आती है। शरद पूर्णिमा की रात तो वह सशरीर प्रकट हो जाती है।

अध्याय १४
जब आत्मा ने मृत्यु का रहस्य खोला

क्या आप जानते हैं कि आप जिस वातावरण में रहते हैं उसमें अनगिनत आत्माएँ चक्कर काटती रहती हैं ? और वे हमेशा सम्पर्क स्थापित कर अपना दुख-सुख, अपनी समस्या, अपनी पीड़ा-वेदना और अपनी व्यथा बतलाने के लिए व्याकुल रहा करती हैं। लेकिन, क्या उनके लिए यह सब सम्भव हो पाता है ? नहीं, क्योंकि आपकी और उनकी दुनिया के बीच एक ऐसा प्राकृतिक आवरण है, जिसका भेद उन अतृप्त आत्माओं के लिए एक सीमा तक असम्भव है।

हमारे देश में प्रकृति के उस रहस्यमय आवरण का भेदन कर ऐसी अतृप्त और विवश आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के एकमात्र दो ही साधन हैं - पहला है योग और दूसरा है तंत्र — योग में सूक्ष्मतम प्राण-शक्ति और तंत्र में सूक्ष्मतम मन-शक्ति काम करती है।

इन दोनों साधनों के द्वारा आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के विज्ञान को परलोक-विज्ञान की संज्ञा दी गई है।

आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले पश्चिमी देशों के लोग आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने में हिचकते थे, उसे कल्पना अथवा भ्रम ही समझा जाता था, लेकिन बाद में कुछ ऐसी विचित्र और अविश्वसनीय घटनाएँ घटीं, जिनका वैज्ञानिक निराकरण न होने पर लोगों को विवश होकर आत्माओं के अस्तित्व को मानना पड़ा।

फिर भी पारलौकिक जगत से सम्बन्धित रहस्य-चर्चा, अलौकिक घटनाओं को लेकर विश्वास और विज्ञान का अन्तर्द्वन्द अभी भी चल रहा है। सच तो यह है कि आज जिस परलोक-विज्ञान की चर्चा पश्चिमी देशों में बड़े जोर-शोर से हो रही है, वह भारतीय परलोक विज्ञान से परे बिल्कुल आधुनिक है, उसका आधार है, विज्ञान और आध्यात्मवाद का समन्वय। यही कारण है कि जब तक पश्चिम के लोग आध्यात्मवाद की परिधि में रहते हैं, तब तक आत्मा की सत्ता स्वीकार करते हैं और जब उस परिधि को तोड़कर विज्ञान के क्षेत्र में पहुंचते हैं तो आत्मा के अस्तित्व को तत्काल अस्वीकार कर देते हैं।

यहाँ यह कहना असंगत-सा होगा कि पश्चिमी देशों में जिस विज्ञान की उन्नति हो रही है, उसकी अपनी एक सीमा है। मगर अध्यात्म की नहीं, वह असीम है। एक वैज्ञानिक तब तक वैज्ञानिक है, जब तक कि वह अध्यात्म की चर्चा नहीं करता, लेकिन एक आध्यात्मवादी के लिए यह सिद्धान्त लागू नहीं होता। अन्य तमाम विषयों की तरह विज्ञान भी उसके लिए

एक महत्वपूर्ण विषय होता है और उसे वह अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से देखता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि विज्ञान और अध्यात्म की खिचड़ी से जिस नये विषय का जन्म होगा, वह निस्सन्देह विवादास्पद और द्वंद्वात्मक होगा। उसके किसी लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। वह हमेशा विश्वास एवं अविश्वास के बीच झूलता रहेगा, कहने की आवश्यकता नहीं कि यही हालत पश्चिम के परलोक विज्ञान की है।

सन् १८४७ !

न्यूयार्क में एक विचित्र और अविश्वसनीय घटना घटी। न्यूयार्क के एक मेथोडिप्ट के घर में 'काक्स' परिवार की दो नवयुवतियों को केन्द्र बनाकर रहस्यमय ढंग से लगातार कई घण्टों तक भड़-भड़ की आवाज होती रही। उस रहस्यमयी और अलौकिक आवाज को सुनने के लिए उस विशाल भवन के चारों तरफ जनता की भारी भीड़ इकट्ठी हो गई। उस आवाज का कारण क्या था, यह किसी की समझ में नहीं आया। बड़े-बड़े वैज्ञानिक का माथा चकरा गया। वे हतप्रभ से रह गए। कहने की आवश्यकता नहीं — इसी अलौकिक और रहस्यमयी घटना के गर्भ से पश्चिम में आधुनिक परलोक विज्ञान का जन्म हुआ और हिचकिचाते हुए आत्मा के अस्तित्व को धीरे-धीरे वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया। परिणामस्वरूप परलोक का रहस्यमय विषय वैज्ञानिक शोध और अनुसंधान का भी विषय बना। उस रहस्यमयी घटना के बाद सन् १८७३ में आत्माओं के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करने तथा उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से लन्दन में ब्रिटिश नेशनल एसोसियेशन ऑफ स्पिरिटिप्ट्स की स्थापना हुई और प्रख्यात पत्रकार मि० स्टीज कई वर्षों तक आत्माओं से सम्पर्क करते रहे। उनकी आशातीत उपलब्धियों के आधार पर एक ऐसी संस्था की स्थापना हुई जिससे प्रेत बैठक यानी सिंचास का आयोजन होने लगा और उस सिंचास में थिपेस पीपर जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रेतात्माओं से सम्बन्धित तरह-तरह के क्रिया-कलाप दिखाने लगे।

इसके बाद अमेरिका में १८८८ में सर विलियम वैरेंट और एडवर्ड गोर्न आदि प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने साइकिक रिसर्च सोसायटी की स्थापना की। हिल्सप और वयआसरे दुनिया से परे की आत्माओं और अदृश्य शक्ति में आस्था और विश्वास रखने लगे।

फिर इंग्लैण्ड के राजप्रासाद (बर्किंघम राजप्रासाद) के मुख्य द्वार के ऊपर की खिड़की से जो जमीन से लगभग सौ फुट की ऊँचाई पर है, निकल कर डी० डी० होम का कई बार हवा में तैरना और वैज्ञानिक विलियम कुक्स के घर में के० टी० किंग नामक प्रेतात्मा का अनेक बार आविर्भाव इत्यादि ने पश्चिम के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को एकबारगी स्तब्ध, आश्चर्यचकित और किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर दिया। अंतत: सभी वैज्ञानिकों ने मिलकर एक स्वर में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार कर लेने की सलाह लोगों को दी।

ऊपर मैंने जिन दो संस्थाओं की चर्चा की है, उन्हें जब अपने शोध के आधार पर पूर्ण विश्वास हो गया कि आत्मा का अस्तित्व है, तो उसके बाद उनके सामने यह समस्या उत्पन्न हुई कि आत्माओं से कैसे और किस प्रकार सम्पर्क स्थापित किया जाए ?

कहने की आवश्यकता नहीं, सभी प्रयास के फलस्वरूप आधुनिक परलोक-विज्ञान ने प्लानमेंट को जन्म दिया। 'प्लानचेंट' उसी का अशुद्ध नाम है। यह एक प्रकार का यंत्र है, जिसकी सहायता से प्रेत अथवा आत्मा तो प्रकट नहीं होती, मगर उनके विचार, भाव आदि अवश्य प्रेत लिपि के रूप में प्रकट होते हैं, लेकिन यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि प्लानसेट के मूल में केन्द्रीभूत मन की शक्ति ही काम करती है, क्योंकि मृतात्माओं का सम्बन्ध सीधा मानव मन से है। मन के एकाग्र होते ही वे उसके माध्यम से इस संसार में अथवा मानव समाज के बीच आविर्भूत होने का प्रयास करते हैं। इस समय भारत में इस साधन का काफी प्रयोग है। मगर जिन दो साधनों का उल्लेख मैंने कथा के आरम्भ में किया है, उनकी तुलना में यह नगण्य है।

१९५० में जब मैंने प्रेतविद्या पर शोधकार्य शुरू किया तो योग और तंत्र इन दोनों साधनाओं के समान सिद्धातों के आधार पर आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने की एक नई और पूर्ण मौलिक पद्धति की रचना की। प्राण की अपनी शक्ति है और मन की भी अपनी स्वतंत्र शक्ति है। इन दोनों शक्तियों को यदि शरीर के एक विशेष केन्द्र पर आपस में मिला दिया जाए, तो सर्वथा एक नई शक्ति पैदा हो जाती है। उन दोनों के संयोग से, जिसे गति-शक्ति यानी फोर्स कहा जा सकता है, उसमें एक विशेष प्रकार का चुम्बकीय आकर्षण होता है, जो साधक के आस-पास के वातावरण में अन्नय रूप से विचरण करने वाली अतृप्त आत्माओं को अपनी ओर खींचकर अपार्थिव से पार्थिव जगत में ले आती है। इस पद्धति से आकर्षित हुई आत्माएँ कभी-कभी कुछ समय के लिए अपने वासना बल से अपने पूर्व पार्थिव शरीर का भी निर्माण कर प्रकट हो जाया करती हैं, लेकिन ऐसा बहुत ही कम होता है। प्राय: इस पद्धति से आत्माओं को साधक अपने सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ही देखता है और उनसे वार्तालाप भी करता है।

इस सन्दर्भ में आपको मैं एक ऐसे दुष्टचरित्र तांत्रिक की लोमहर्षक कथा लिपिबद्ध कर सुनाने जा रहा हूँ, जिसने अपनी किसी तांत्रिक सिद्धि के लिए मातृत्व की कामना से आई हुई एक नवयुवती के साथ बलात्कार ही नहीं किया, बल्कि उसकी बलि देकर उसकी अतृप्त आत्मा को प्रेतलोक में भटकने के लिए भी छोड़ दिया। तांत्रिक साधना के नाम पर कितना घृणित और जघन्य अपराध था वह, जिसका कोई उदाहरण ही नहीं।

लगभग १५-१६ वर्ष पूर्व मुझे एक अति आवश्यक कार्य से शिवसागर (आसाम) जाना पड़ा था। मेरे एक मारवाड़ी मित्र थे, नाम था मोहन बाबू।

मोहन बाबू का प्लाईवुड का बहुत बड़ा कारोबार था। वे बहुत ही धनी और संपन्न व्यक्ति थे। मैं उन्हीं की कोठी पर ठहरा हुआ था। एक दिन सायंकाल जब मैं मोहन बाबू के साथ बैठकर चाय पी रहा था, तभी उनके मित्र सुखेंदु घोषाल वहाँ आ गए। सुखेंदु घोषाल शिवसागर कोतवाली में चीफ इंस्पेक्टर थे। वे उस समय काफी परेशान और थके-थके से लग रहे थे। पूछने पर उन्होंने बतलाया कि आज सबेरे ब्रह्मपुत्र नदी में बहती हुई एक युवती की लाश मिली थी, बिलकुल नंगी लाश — उसे देखने से पता चलता था कि काफी दूर से बहती हुई आई थी वह। मछुओं ने लाश देखकर सोचा कि शहर के मनचले बाबू लोग

बाजारू औरत लाए होंगे और मौज-मस्ती के बाद मारकर उसे नदी में फेंक दिए होंगे। उन्होंने लाश की सूचना थाने में दी। उसे कोतवाली में लाया गया और जब उसका पोस्टमार्टम हुआ तो पता चला कि वह काफी मात्रा में शराब पीये हुए थी, उसके साथ अमानुषिक रूप से संभोग भी किया गया था और उसके बाद उसे गला घोंटकर मार डाला गया था।

घोषाल महाशय से यह सुनकर न जाने क्यों अस्थिर हो उठा मैं ?

'क्या वास्तव में वह कोई बाजारू औरत थी ?' घोषाल महाशय से पूछा मैंने।

सिगरेट सुलगाते हुए घोषाल महाशय ने जवाब दिया, 'नहीं, ऐसा नहीं लगा मुझे ! निश्चय ही किसी संम्भ्रांत परिवार की बहू-बेटी रही होगी वह।'

न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर लाश देखने की प्रबल इच्छा जागृत हो गई मेरे मन में और उसी समय घोषाल महाशय के साथ मैं कोतवाली पहुँच गया। गेट के बाहर एक तरफ सफेद चादर में लिपटी हुई पड़ी थी लाश। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं उस पर। पुलिस के कर्मचारी लाश के अन्तिम संस्कार की तैयारी कर रहे थे।

घोषाल महाशय ने बतलाया कि अभी तक लाश की शिनाख्त नहीं हुई है। कोई दावेदार भी नहीं आया, लोग इसे लावारिस ही समझ रहे हैं।

मैंने लाश को देखना चाहा। पुलिस के एक आदमी ने धीरे से लाश पर से कपड़ा हटा दिया। लाश थोड़ी फूलकर विकृत-सी हो गई थी, मगर युवती के सौंन्दर्य पर उसका अभी तक प्रभाव नहीं पड़ा था। आँखे थोड़ी-सी खुली थीं, होंठ भी खुले थे, चेहरे पर कातरता और याचना के भाव स्पष्ट थे। ऐसा लगा मानो युवती गहरी नींद में सो रही हो। घोषाल महाशय का अनुमान सही था। युवती बाजारू नहीं थी, पेशेवर भी नहीं। वह किसी भले घर की लग रही थी।

फिर उसके साथ ऐसा घृणित और अमानुषिक व्यवहार क्यों हुआ ? किसलिए हुआ ? यह सब सोचकर विषण्ण हो गया मेरा मन।

रात में नींद नहीं आई, बार-बार उसी युवती का चेहरा आँखों के सामने आ जाता था।

तीसरे पहर थोड़ी-सी झपकी लगी और उसी अवस्था में देखा कि वही युवती मेरे सामने खड़ी है, उसका चेहरा घोर विषाद में डूबा हुआ है। वह कातर दृष्टि से मेरी ओर देख रही है। कुछ कहने के लिए उसके होंठ फड़फड़ा रहे हैं, लेकिन उससे बोला नहीं जा रहा है।

'तुम जो मर चुकी हो ! यहाँ कैसे आई ?' मैंने धीरे से पूछा।

युवती ने जवाब नहीं दिया, बस मेरी ओर कातर भाव से पहले की तरह देखती रही, फिर एकाएक पलटी और भागने लगी। पहले तो मैं भौचक्का रहा, फिर मैं भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। काफी दूर जाने के बाद मुझे ब्रह्मपुत्र के किनारे थोड़ा ऊपर एक मन्दिर दिखलाई दिया। काफी पुराना था वह मंदिर, उसके चारों तरफ आम, जामुन और पाकड़

के हरे-भरे पेड़ थे। वहाँ पहुँचते ही युवती अचानक गायब हो गई और उसी के साथ मेरी नींद भी टूट गई।

भोर का सपना सच होता है क्या ? वह सब जो मैंने देखा था सच था ?

जब मैंने सपने की बात मोहन बाबू को बताई तो उन्होंने बताया कि चन्दा से लगभग १०-१२ मील दूर ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर काली का एक पुराना मन्दिर अवश्य है, मन्दिर में अष्टभुजी काली की सिद्धमूर्ति स्थापित है। बड़ी ही जागृत मूर्ति है वह। सुना है कि पहले काफी दूर-दूर से तांत्रिक लोग सिद्धि करने के लिए वहाँ आते थे और यह भी सुना है कि वे देवी को प्रसन्न करने और सिद्धि प्राप्त करने के लिए नरबलि भी देते थे।

यह सुनकर अचानक मेरे मस्तिष्क में कुछ क्रोध-सा आ गया। उस युवती के साथ निश्चय ही उस काली मन्दिर में कोई भयानक तांत्रिक घटना घटी होगी, सम्भव है किसी अघोरी तांत्रिक ने अपनी किसी तांत्रिक साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए उस युवती का प्रयोग किया हो? काफी देर तक ऐसी तमाम सम्भावनाओं पर सोचता रहा मैं और फिर बिना किसी को कुछ बतलाए काली मन्दिर के लिए चल पड़ा। ऐसा लगा कोई अज्ञात शक्ति खींच रही है मुझे।

जब मैं वहाँ पहुँचा तो दुपहरी ढल चुकी थी। सूर्य की रश्मियाँ अरुणाचल के स्याह पहाड़ों के पीछे से झाँकने लगी थीं। सपने में जैसा देखा था, वैसा ही मिला मुझे, हाँ, नदी के ऊपर था वह प्राचीन मन्दिर।

चारों तरफ आम, जामुन, नीम और पाकड़ के दर्जनों हरे-भरे पेड़ थे। एक विचित्र गहरी खामोशी छाई हुई थी वहाँ, चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। एक अबूझ-सी अनुभूति हुई मेरे मन में वहाँ के निस्तब्ध वातावरण से।

उस उजाड़ मरघट फैले बीहड़ और घूसर इलाके में दूर-दूर तक न मुझे कोई गाँव दिखाई पड़ा और न कोई आदमी। ब्रह्मपुत्र की प्रखर धारा वहाँ से बायीं ओर घूम आई थी, जिसके उस पार घोर जंगल में आसाम के मदमस्त विशाल हाथी पाये जाते हैं।

मैं अब धीरे-धीरे चलकर मन्दिर के करीब पहुँचा। मन्दिर के चारों ओर ऊँचा चबूतरा था, जिस पर चढ़कर मन्दिर में प्रवेश करते ही दहशत से पर फड़फड़ाते चमगादड़ कानों को छूते हुए निकल गए। थोड़ी-सी भय की अनुभूति हुई। भीतर अँधेरा था, मगर सब कुछ साफ दिख गया मुझे। दीवार से लगकर पंचमुंडी आसन पर काले पत्थर की बनी अष्टभुजी काली की भयानक और विकराल प्रतिमा खड़ी थी। मूर्ति बड़ी ही भव्य और अजीब लगी मुझे।

पंचमुंडी के सामने एक बड़ा-सा हवनकुण्ड था जिसके पास ही देशी शराब की खाली बोतलें आड़ी-तिरछी पड़ी हुई थीं, जिन्हें देखकर ऐसा लगा कि वहाँ तंत्र-मंत्र के नाम पर किसी ने जमकर खूब शराब पी होगी।

अचानक चौंक पड़ा मैं।

शराब की बोतलों के आसपास काँच की लाल चूड़ियों के दर्जनों टुकड़े बिखरे हुए थे, उसके अलावा सिंदूर लगे कुछ मुरझाए और सूखे जवा के फूल भी थे वहाँ।

ऐसे मन्दिरों में शराब की बोतलें और मुरझाए सिन्दूर लगे फूलों का मिलना स्वाभाविक ही था, मगर लाल चूडियों के टुकड़े ?

साँझ की हल्की-हल्की स्याह कालिमा-सी फैलने लगी थी — अब अचानक आकाश में बादल घिरने और झूमने लगे थे। उद्दाम हवा की लय पर आम, जामुन और पाकड़ के पेड़, फिर देखते-ही-देखते बादलों से काला पड़ गया आसमान — गहन निःश्वास जैसी हवा, हाहाकार करती झाड़ियों और झुरमुटों को कँपाए दे रही थी।

कुछ ही देर बाद साँझ की स्याह गहन अन्धकार में बदल गई और चारों तरफ एक अजीब-सा सन्नाटा, एक अबूझ-सी खिन्नताभरी निविड़ता छा गई। सोचने लगा, कैसे वापस जाऊँगा मैं इस घोर रात्रि में और इस भयानक मौसम में। यहाँ कहाँ मिलेगा मुझे त्राण ? और तभी झर-झर कर बरसने लगा मेघ। उद्दाम हवा का तूफानी विलाप भी गूँज उठा बारिश की लय के साथ। विवश होकर मन्दिर में ही शरण लेनी पड़ी मुझे। उसी समय एक छाया वहाँ हिलती-डुलती नजर आई, पहले मैंने मन का भ्रम समझा, मगर बाद में छाया धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी और उसी समय आकाश में बिजली चमकी। हजारों मैग्निशियम के तारों जैसे प्रखर आलोक से उद्भासित हो गया सारा विस्तार। उसी तड़ित प्रकाश में मैंने अपने सामने एक सुन्दर नवयुवती को खड़ी देखा। वह मेरी ओर अपलक निहार रही थी।

अरे! यह तो वही युवती है, जिसकी लाश कोतवाली में देखी थी और जिसे देखा था सपने में भी। मेरा सर्वांग सिहर उठा, मेरे हृदय के भीतर कुछ खाली-सा प्रतीत हुआ। मैं आगे कुछ सोचूँ कि तभी वह बोल पड़ी, 'मेरा नाम काकुली सान्याल है। आपके यहाँ आने से मेरे मन को और मेरी आत्मा को बहुत शान्ति मिली है।'

समझते देर नहीं लगी मुझे, वह उसी मृत युवती की आत्मा थी, जिसने शायद अपनी व्यथा-कथा सुनाने के लिए कुछ समय के लिए पूर्व पार्थिव शरीर ग्रहण कर लिया था। भय और आतंक के कारण पहले तो मुझसे कुछ बोला न गया, लेकिन बाद में सम्हाला मैंने अपने आपको और कहा - 'काकुली ! मैं जानता हूँ, तुम्हारी ही अदृश्य प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं यहाँ आया हूँ और यह भी जानता हूँ कि तुम भी इस भयानक बरसाती रात में अपनी वह मर्मस्पर्शी घटना सुनाने के लिए यहाँ आई हो, जिसके कारण तुमको अकालग्रस्त होना पड़ा।'

मेरी बात सुनकर काकुली वहीं सर पर हाथ रखकर बैठ गई और हिचक-हिचक कर रोने लगी।

'काकुली, इस तरह रोने से मन अवश्य हल्का हो जाएगा, मगर मन की व्यथा दूर नहीं होगी। तुम निःसंकोच बतला दो मुझे, क्या हुआ था तुम्हारे साथ ? कौन-सी घटना घटी थी तुम्हारे साथ, जिसके फलस्वरूप तुमको भटकना पड़ रहा है इस भयानक प्रेतयोनि में ?' सहानुभूति भरे स्वर में समझाते हुए मैंने कहा।

काकुली थोड़ा आश्वस्त हुई, फिर धीरे-धीरे रुक-रुक कर उसने मुझे अपनी जो दारुण और वेदना में डूबी हुई कथा सुनाई, उससे मेरा हृदय विगलित हो उठा।

शिवसागर से करीब २०-२२ किमी० दूर ब्रह्मपुत्र के उस पार एक गाँव है आभीवाड़ी। उसी गाँव के एक सम्पन्न परिवार में काकुली का विवाह अभयचन्द्र सान्याल के साथ हुआ था। काकुली अतिसुन्दर, आकर्षक, इकहरे बदन की युवती थी। उसके सुगठित शरीर का रंग भी गुलाबी था, ऐसा लगता था, मानो बंगाल की सारी लावण्यता उसमें सिमट आई हो। जो कोई भी उसके सौन्दर्य को देखता, बस अपलक देखता ही रह जाता। जब काकुली का विवाह हुआ था, उसकी आयु १६ साल थी। विवाह के धीरे-धीरे १२ साल बीत गए, लेकिन उसे कोई औलाद नहीं हुई थी। फलस्वरूप काकुली अपने घर में मानसिक रूप से सामान्य नहीं रह पाती थी, हर समय उसके मन को विचित्र अपराध-बोध कचोटता रहता था। उसकी आत्मा की सुख-शान्ति छिन गई थी। पड़ोस की औरतें उसे देखकर मुँह फेर लिया करती थीं, क्योंकि वह बंध्या थी। यह बात नहीं थी कि काकुली ने अपना चेकअप डॉक्टरों से न करवाया हो। सभी डॉक्टरों ने एक स्वर में उसे सन्तान योग्य बतलाया था, फिर क्या कारण था ? क्या कोई दैवी प्रकोप था या किसी प्रकार की भूत-प्रेत बाधा थी, जो उसकी गोद भरने नहीं देती थी ? काकुली यही सब सोचती रहती थी हर समय —

अभयचन्द्र अपने माता-पिता के इकलौते बेटे थे इसलिए उनकी माँ कल्याणी देवी बराबर उसे मुँहजली, पापिनी, राक्षसी और बाँझ कह-कह कर गाली दिया करती थीं। काकुली चुपचाप सर झुकाये सब सहती रहती थी। माँ न बनने का उसे कितना मानसिक क्लेश था यह वही जानती थी, लेकिन वह किसी से कुछ कहने का साहस नहीं कर पाती थी। सास-ससुर उसे घर से निकाल देते, तो वह कहाँ जाती ? मैके में तो कोई था ही नहीं। बचपन में ही वह अनाथ हो गई थी। दूर के मामा ने किसी प्रकार पाल-पोस कर उसका विवाह कर दिया था। अब वह भी नहीं रहे इस संसार में। कोई ऐसी जगह भी नहीं थी, जहाँ जाकर वह दो-चार दिन रह सकती, इसलिए काकुली पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह पड़ी रहती थी घर में।

जब डॉक्टरों ने साफ कह दिया कि पूर्ण रूप से माँ बनने योग्य है, तो काकुली ने झाड़-फूँक और टोना-टोटका का सहारा लिया। कई जाने-माने ओझा और तांत्रिकों को भी दिखाया, जिसने जो कहा वह किया काकुली ने, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। सभी ने उसे जी-भरकर लूटा-खसोटा। गनीमत यह थी कि उसकी इज्जत अभी तक बची थी।

उस दिन आश्विन नवरात्र की अष्टमी थी। हर साल की तरह काकुली ब्रह्मपुत्र के तट पर दुर्गापूजा देखने गई थी। दुर्गापूजा में बहुत दूर-दूर से लोग सम्मिलित होने के लिए आते थे, वहाँ काफी धूमधाम से दुर्गोत्सव होता था। तीन दिन के लिए ब्रह्मपुत्र के तट पर एक छोटा-सा नगर ही बस जाता था जैसे, तरह-तरह के घुसा-संन्यासी और तांत्रिक भी वहाँ इकठ्ठे होते थे।

काकुली अपनी सहेली बाटुली के साथ मेले में इधर-उधर घूमने के बाद जब नदी के किनारे पहुँची तो अचानक उसकी नजर जटाजूटधारी युवा तांत्रिक संन्यासी पर पड़ी। संन्यासी

का व्यक्तित्व काफी भव्य और आकर्षक था। काकुली ने बाटुली को बुलाकर दिखाया। बाटुली बचपन की सहेली थी। उसका भी विवाह आभीवाड़ी में ही हुआ था। काकुली अपने मन की बात बतला दिया करती थी बाटुली को, बाटुली भी उससे कुछ नहीं छिपाती थी।

संन्यासी का भव्य और आकर्षक व्यक्तित्व देखकर काकुली और बाटुली दोनों प्रभावित हुए बिना न रहीं। दोनों ने यह समझ लिया कि यह कोई सिद्ध तांत्रिक संन्यासी है। माँ दुर्गा की साधना के लिए ही यहाँ आया हुआ है — बाटुली ने काकुली को सलाह दी कि यह संन्यासी निश्चय ही बहुत बड़ा तंत्रसाधक लगता है। अवश्य तुम्हारी मनोकामना पूरी करेगा।

काकुली संन्यासी के करीब जाकर खड़ी हो गई। संन्यासी पद्मासन की मुद्रा में आँखें बन्द किये बैठा था। कुछ देर बाद उसने अपनी आँखें धीरे-धीरे खोलीं। काकुली ने बड़ी भक्ति से पैर छूकर संन्यासी को प्रणाम किया। फिर बाटुली के कहने पर उसने अपना परिचय देते हुए अपनी मनोकामना व्यक्त की। संन्यासी ने आशीर्वाद दिया, शुभमस्तु ! मनोकामना पूर्ण होगी। काकुली और बाटुली का सर श्रद्धा से झुक गया।

'लेकिन अमावस्या की रात्रि में संतानोत्पत्ति के लिए एक विशेष तांत्रिक क्रिया करनी होगी और तुम्हें उपस्थित होना होगा,' काकुली की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए संन्यासी ने कहा।

काकुली तुरन्त तैयार हो गई। ब्रह्मपुत्र के तट पर अष्टभुजी काली मदिर में वह संन्यासी ठहरा हुआ था इसलिए विशेष तांत्रिक क्रिया करने के लिऐ वहीं समय निश्चित किया गया। काकुली को लाल रंग की रेशमी साड़ी, चोली और लाल रंग की चूड़ी पहन कर वहाँ आना था। क्रिया में प्रयुक्त होने वाली तांत्रिक सामग्री की व्यवस्था करने का आश्वासन स्वयं दे दिया था उस संन्यासी ने।

काकुली विभोर हो उठी। माँ दुर्गा की कृपा ही समझी उसने। एक सिद्ध तांत्रिक योगी स्वयं सामग्रियों की व्यवस्था कर अपने हाथों से विशेष तांत्रिक क्रिया सम्पन्न करेगा इससे अधिक क्या चाहिए? क्रिया कदापि विफल नहीं हो सकती, निश्चय ही एक साल के भीतर उसकी गोद भर जाएगी, फिर सास-ससुर और पास-पड़ोस की औरतें उसे बाँझ कहकर ताना नहीं देंगी। पति-पुत्र के साथ वह फिर सुखमय जीवन व्यतीत करेगी, काकुली भविष्य की कल्पना करते-करते विभोर हो उठी।

अगली अमावस्या दीपावली की महानिशा थी। दिन भर बेचैन रही काकुली। रह-रह कर प्रसन्नता से आह्लादित हो उठती थी यह। धीरे-धीरे साँझ की कालिमा फैलने लगी, फिर गहरा काला अन्धकार छा गया धरती पर। जल्दी-जल्दी स्नान कर काकुली ने लाल रेशमी साड़ी और चोली पहनी, लाल सिन्दूर से माँग भरी। गोल टीका लगाया और फिर लाल चूड़ियाँ पहनी हाथों में, कहीं कोई गलती न हो इसका उसने बराबर ध्यान रखा।

ठीक समय पर बाटुली उसको ले जाने के लिए आ गई। अमावस की उस काली अँधेरी रात में डरते-सहमते किसी तरह तीन किमी० का रास्ता तय कर वे दोनों काली मन्दिर पहुँची।

वातावरण में गहरी खामोशी छाई हुई थी। ब्रह्मपुत्र की प्रखर धारा की केवल गर्जन ही सुनाई पड़ रही थी वहाँ।

वह युवा तांत्रिक संन्यासी काकुली की प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। मन्दिर के भीतर काली की भयानक प्रतिमा के सामने ताँबे का घट रखा हुआ था। उस पर घी का दीप प्रज्ज्वलित था, हवनकुण्ड में अग्नि भी प्रज्ज्वलित थी, जिसमें से चन्दन का सुवासित धूम्र निकल-निकल कर मन्दिर के वातावरण को सुगन्धित कर रहा था। हवनकुण्ड के समीप देशी शराब की बोतल और थाली में जवा के फूल-अक्षत तथा अन्य पूजन की वस्तुएँ भी रखी हुई थीं। संन्यासी ने पूर्ण व्यवस्था कर रखी थी अपनी विशेष तांत्रिक क्रिया की, जिसे देखकर काकुली का हृदय और अधिक श्रद्धाभक्ति से भर गया। उसने झुककर संन्यासी को प्रणाम किया और उसके संकेत पर वह एक आसन पर बैठ गई। बाटुली बाहर ही खड़ी रह गयी थी। उसे मन्दिर में आने का आदेश नहीं मिला था।

संन्यासी ने जलती हुई दृष्टि से एक बार काकुली के सर्वांग का निरीक्षण किया और फिर अपनी झोली से दो नर-कपाल निकाला और बोतल खोलकर उन दोनों में शराब उड़ेली। नर-कपालों को देखकर एक बार काकुली सिहर उठी, फिर उसने संन्यासी को देखा। वह उस समय ध्यानमग्न था। काकुली को लगा कि उस सिद्ध तांत्रिक योगी के मस्तक से ज्योति निकल कर मंदिर में फैल रही है और उसके शरीर का गोरा रंग दीपक की रोशनी से अधिक प्रकाशमय हो उठा है। संन्यासी ध्यानमग्न होकर कोई मंत्र बुदबुदा रहा था। अचानक उसके शरीर में कम्पन हुआ और उसने आँखें खोलीं। किसी रहस्यमय तांत्रिक मंत्र का उच्चारण करते हुए संन्यासी ने शराब में कपूर डाल उसे जलाया और फिर संकेत से उसने काकुली से हाथ फैलाने को कहा। काकुली ने संकोच से हाथ फैलाया। गोरा, कोमल हाथ, युवा संन्यासी की तीक्ष्ण दृष्टि काकुली के सुडौल और पुष्ट स्तनों पर दौड़ गई, फिर उसने मदिरा भरा एक नर-कपाल उठाया और उसे काकुली की ओर बढ़ाते हुए पी जाने के लिए संकेत किया।

काकुली हिचकिचाई और मुँह फेर लिया, दूसरी ओर। उसे आशा नहीं थी कि उसके सामने ऐसी भी कोई समस्या उठ खड़ी होगी। उसने संकोच से संन्यासी की ओर देखा। संन्यासी की आँखें जैसे जल रही थीं, उस समय। फिर उस रक्त-चक्षु की उपेक्षा करने का साहस गवाँ बैठी वह। डरते-डरते नर-कपाल को होंठों से लगाया और धीरे-धीरे पी गई पूरी मदिरा। सारा शरीर सनसना उठा उसका और उसी के साथ सारे रोमों में एक विशेष प्रकार की उत्तेजना भी मिल गई। लेकिन कुछ ही देर बाद उसकी देह शिथिल होने लगी।

उस रहस्यमय तांत्रिक ने हवन करना शुरू कर दिया था और थोड़ी देर बाद जब हवन समाप्त हुआ तो उसने हवनकुण्ड से भस्म निकाल कर अपनी सारी देह में रगड़ा और दूसरे नर-कपाल की सारी मदिरा एक ही साँस में पी गया गट-गट कर। उसके बाद फिर उसने दोनों नर-कपालों को मदिरा से भरा। एक को तो स्वयं फिर पी गया और दूसरे नर-कपाल की मदिरा उसने काकुली की ओर बढ़ा दी। असहाय दृष्टि से कातर काकुली ने उसकी ओर देखा, उसे घबराई देख संन्यासी बोला, 'संकोच मत कर — मैं अब तेरे शरीर से माँ

कामाख्या के पीठासन का निर्माण करूँगा। शीघ्र तुम शरीर के सभी वस्त्र उतार कर पूर्ण नग्न हो जा।'

काकुली यह सुनकर स्तंभित हो गई। उसने सपने में भी कभी नहीं सोचा था कि एक परपुरुष के सामने निर्वसन होना पड़ेगा। उसका सुन्दर और गोरा चेहरा संकोच और लज्जा से लाल हो उठा। पाषाणवत् बैठी रही वह। संन्यासी गरजा, 'तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रही है ? तेरा इतना साहस ? शीघ्र कर।'

काकुली समझ गई कि संन्यासी की आज्ञा अथवा आदेश का उल्लंघन करना अब असंभव है, लेकिन उस समय उसके भीतर जरा-सी भी हिलने-डुलने की शक्ति नहीं थी। शराब का नशा उस पर धीरे-धीरे छाने लगा था।

संन्यासी ने स्वयं थोड़ा आगे बढ़कर नर-कपाल को उठा काकुली को अपने हाथों से पिलाया और फिर धीरे-धीरे उसके शरीर से सभी वस्त्रों को उतार कर उसे पूर्ण नग्न कर दिया। काकुली विरोध न कर सकी, दूसरे ही क्षण संन्यासी की गोद में लुढ़क गई वह। उस समय यौवन से भरपूर उसके गुलाबी शरीर का अंग-प्रत्यंग दीपक के हल्के प्रकाश में थिरक रहा था। सहसा काकुली सिहर उठी। उसे विचित्र अनुभूति हुई, बार-बार रोमांचित हो उठती थी वह, उत्तेजना बढ़ती ही जा रही थी। फिर भी उसने आपत्ति की, लेकिन संन्यासी उन्मत्त होकर वासना की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उसने काकुली को पूरी तरह दबोच लिया। काकुली अवश हो गई और उसने आँखें मूँद ली।

तांत्रिक साधना के नाम पर वासना की वह ताण्डव लीला पूरे चार घण्टे तक होती रही और अन्त में दुश्चरित्र तांत्रिक संन्यासी की वासना की अग्नि में एक भोली-भाली रमणी का जीवन उत्सर्ग हो गया, जिसकी एकमात्र साथी थी बाटुली। जो अन्तिम दृश्य देखकर एकबारगी चौंक उठी थी और जिसे सुनकर जंगल में समवेत स्वर में रोने लगे थे सियार भी।

उस कामलीला का अन्तिम दृश्य बड़ा ही भयानक और वीभत्स था। बाटुली ने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसा सब कुछ वहाँ देखने को मिलेगा ... वह चीखकर बेहोश हो गई।

'फिर क्या हुआ ?' हौले से पूछा मैंने।

एक लम्बी साँस लेकर बुझे स्वर में बोली काकुली, 'होगा क्या ? जो होना था, वही हुआ, मेरी लाश उठाकर नदी में फेंक दी उस छली संन्यासी ने और बाटुली को अपने साथ ले गया।'

'क्या बाटुली अभी भी उस संन्यासी के साथ है ?'

'हाँ, उसे अपनी भैरवी बनाकर रख लिया है अपने पास।'

'क्या तुम यह बतला सकती हो कि वे दोनों इस समय कहाँ होंगे ?'

'कामाख्या पीठ में ... दोनों वहीं रह रहे हैं।'

‘अब तुम क्या चाहती हो।’ थोड़ा रुककर पूछा मैंने काकुली से।

‘अपनी मुक्ति। प्रेतयोनि से मुक्ति। बहुत कष्ट है मुझे। शान्ति जरा-सी भी नहीं है इस पापयोनि में।’ शायद काकुली काफी कुछ और कहती, कुछ और बतलाती कि तभी श्यामल आकाश में बिजली चमकी और वातावरण को मथती हुई विद्युत वाणी गरज कर शान्त हो गई और उसी के विपुल रव में डूब गए शब्द काकुली के।

सहसा बरसाती हवा का एक झोंका आया और ठण्डी हवा मन्दिर के भीतर फैल गई। ‘काकुली’ मैंने पुकारा, मगर काकुली नहीं थी वहाँ, अब उसका क्षणिक पार्थिव अस्तित्व उसी हवा के तेज झोंके में विलीन हो चुका था। भय, विस्मय के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन। फिर एक पल भी ठहरा न गया मुझसे उस मन्दिर में। दिशाहीन, लक्ष्यहीन काले अन्धकार के बीच दौड़ता हुआ भागा मैं। थोड़ी देर बाद लगा कि अब मुझसे दौड़ा न जाएगा। यहीं इस अनजाने प्रान्त में ही हो जाएगी जल समाधि और अन्त में हुआ भी यही। एक जगह अचानक ठोकर लगी और गिर पड़ा मैं मुँह के बल।

जब मैंने घोषाल महाशय को काकुली की आत्मा के मिलने और काकुली की रहस्यमयी मृत्यु की दारुण-कथा सुनाई, तो उन्हें सहसा विश्वास नहीं हुआ। मगर जब पुलिस ने पता लगाया और गहरी जाँच-पड़ताल हुई तो सारी सत्यता और सारी वास्तविकता सामने आ गई।

काकुली के अचानक गायब हो जाने पर किसी ने उसकी खोज-खबर नहीं ली। उसके सास-ससुर को एक प्रकार से प्रसन्नता ही हुई। उन लोगों ने सोचा - चलो बला टली, बाँझ बहू से पिण्ड छूटा। वे काकुली के गायब होने के ४-५ दिन बाद पास के गाँव में जाकर अभयचन्द्र के लिए बहू भी देख आए थे। इतना ही नहीं, विवाह की तिथि निश्चित कर लिया था उन्होंने।

बाटुली के सम्बन्ध में पता चला कि ससुराल में सिर्फ सास थी। हर समय खाट पर पड़ी सोती ही रहती थी। बाटुली का पति जिसका नाम कुण्डू लाल था, कलकत्ते के किसी जूट मिल में नौकरी करता था, साल में एक बार गाँव आता था वह।

पूरे तीन महीने के अथक परिश्रम के बाद घोषाल महाशय को सफलता मिली। इस मर्डर केस में, कामाख्या पीठ के आश्रम में गुप्त रूप से रह रहा था वह तांत्रिक संन्यासी। उसने बाटुली को भी दीक्षा देकर तांत्रिक भैरवी बना दिया था। जब पुलिस उस आश्रम में पहुँची तो वह भी वहाँ मिल गया पुलिस को, मुकदमें के समय बाटुली सरकारी गवाह बन गई और अन्त में फैसला होने पर उसे तो मुक्त कर दिया गया, लेकिन तांत्रिक संन्यासी महाशय को आजीवन कारावास का दण्ड मिला।

अध्याय १५
क्या वह विषकन्या थी?

कार्तिक का महीना। जब आसाम के उस छोटे से सटे स्टेशन पर बगल में बैग लटकाये और हाथ में अटैची लिए उतरा तो साँझ की सुरमई चादर चारों तरफ धीरे-धीरे फैल रही थी। मेरे साथ गाड़ी से जो तीन-चार सज्जन प्लेटफार्म पर उतरे थे, वे न जाने कहाँ गायब हो गए थे। गाड़ी भी एक मिनट रुककर झक्-झक्, भक्-भक् करती हुई चली गई थी। मैं कुछ क्षण खड़ा रहा। फिर स्टेशन मास्टर के कार्यालय की ओर बढ़ गया।

उन दिनों आसाम के एक सीमावर्ती स्थान पर केन्द्रीय पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई का कार्य चल रहा था। वहाँ बौद्धकालीन वस्तुओं के मिलने की सम्भावना थी, जो अपने आप में अति मूल्यवान और अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। कहने को आवश्यकता नहीं, उसी खुदाई के सिलसिले में मेरा वहाँ जाना हुआ था।

स्टेशन मास्टर बंगाली सज्जन थे। नाम था अतुल मुखर्जी। लोग उन्हें अतुल बाबू कहते थे। मझोला कद, गठीला शरीर, साँवला रंग, गोल-मटोल चेहरा, गंजा सिर और पावर के चश्मे के भीतर से झाँकती हुई छोटी-छोटी आँखें। शरीर पर धोती, कुर्ता। ऐसा था अतुल बाबू का व्यक्तित्व। जब उनको यह मालूम हुआ कि मैं पुरातत्व विभाग का उच्चाधिकारी हूँ और सरकारी काम से मुझे वहाँ आना पड़ा है तो उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता हुई।

स्टेशन से सटा रेलवे का दो कमरों वाला एक क्वार्टर था। उसी में रहते थे अकेले अतुल बाबू। स्टाफ के नाम पर केवल लाइनमैन था। नाम था कालू। कालू कुली भी था और चपरासी भी।

कालू असमिया आदिवासी था। लम्बा कद, बिल्कुल काला रंग, सूखी लकड़ी की तरह शरीर, उम्र यही चालीस-पैंतालीस के लगभग। उसने मुझे वहाँ की भौगोलिक स्थिति समझाते हुए बतलाया कि इधर आस-पास कोई हाट-बाजार नहीं है। गाँवों के लोग हफ्ते में एक दिन काफी दूर स्थित बाजार जाकर जरूरी सामान ले आते हैं। लगभग १५-२० फर्लांग की सीमा में १०-१० और १२-१२ झोपड़ियों के ५-६ गाँव थे। गाँवों के एक ओर घना जंगल था और दूसरी ओर था पहाड़ों का सिलसिला। जंगल में खूँखार जानवरों की भरमार थी। लेकिन गाँवों के लोग उन खूँखार जानवरों से कम खतरनाक नहीं थे। आसाम के उस वन-प्रान्त में विभिन्न प्रजाति के भयानक विषधरों की भी कमी नहीं थी। गाँव के लोगों का एकमात्र व्यवसाय था जहरीले साँपों का जहर निकालना और जंगल से जड़ी-बूटियाँ इकट्ठी करके दूर के बाजारों में बेचना।

अतुल बाबू मुझसे काफी प्रभावित थे। उन्होंने अस्थायी तौर पर अपने ही क्वार्टर में मेरे ठहरने की व्यवस्था कर दी थी। कालू उनका खाना भी बनाता था और बाजार-हाट भी कर देता था। अतुल बाबू के आदेश पर दोनों वक्त मेरे लिए भी खाना बना देता था वह। लेकिन उसके बनाये हुए भोजन में स्वाद नाममात्र नहीं होता था। अतुल बाबू इतने दिनों से कैसे खाते चले आ रहे थे, वे ही जानें। मेरी तो विवशता थी। इसलिए किसी प्रकार खाकर सन्तोष करना पड़ा था। लेकिन ४-५ दिन के बाद लगने लगा कि यदि ऐसा ही खाना-पीना रहा तो एक-न-एक दिन अपनी अर्थी बनवानी पड़ेगी। स्वास्थ्य सँभालने के लिए सोचा कि कहीं से आधा सेर दूध की व्यवस्था हो जाती तो श्मशान यात्रा की

आवश्यकता नहीं पड़ेगी। कालू से चर्चा की मैंने, उसने बतलाया कि गाँव में केवल दूध माथा की झोपड़ी में मिलेगा और किसी के पास नहीं।

माथा की झोपड़ी एक फर्लांग की दूरी पर रेलवे लाइन के पास थी। उसी शाम लोटा लेकर दूध लेने के लिए माथा के पास गया। उसे अपना परिचय दिया और पूछा, 'तुम्हारे यहाँ दूध मिलेगा ?' माथा ने सिर हिलाकर जवाब दिया 'नहीं'। वापस लौटने लगा मैं। तभी एक जनानी आवाज ने रोक दिया मुझे, 'बाबा' थोड़ा दूध तो बचा है, दे दो न बाबूजी को।' घूमकर देखा मैंने, ताजे गुलाब की तरह खिली एक नवयौवना थी वह। इतना उज्ज्वल वर्ण किसी भारतीय नारी का नहीं देखा था मैंने। बिल्कुल अंग्रेज जैसा वर्ण था उसके शरीर का। प्रकृति के सान्निध्य ने और भी दमका दिया था उसके शरीर को। सुनहरे बाल और भूरी चमकीली आँखों से बिल्कुल साफ पता चलता था कि वह भारतीय खून नहीं है। माथा मौन रहा। दूध ले आई वह भीतर से और मेरे लोटे में दूध डाल दिया। उसकी ओर अपलक निहारता रहा मैं। जैसे स्वर्ग से उतरकर कोई देवकन्या मुझे अमृत दे रही हो। मैंने ५ रुपये का नोट उसकी तरफ बजाया, लेकिन उसने नोट नहीं लिया। मुस्कराकर भीतर चली गयी झोपड़ी में। पूरे रास्ते उस नवयौवना का दमकता चेहरा थिरकता रहा मेरे मानस पटल पर।

जो दूध नहीं बेचती। जिसने पैसे लेने से इन्कार कर दिया उसके पास दोबारा जाना उचित नहीं प्रतीत हो रहा था मुझे। मगर उस समय क्या उचित है और क्या अनुचित, इसका ज्ञान नहीं रहा। काफी प्रयत्न करने पर भी मन नहीं माना। दूध मिले या न मिले उस परम सुंदरी के दर्शन से ही परम स्वास्थ्य लाभ हो जायेगा। एक विचार मन में यह भी आया कि यदि मैं दूध लेने नहीं जाऊँगा तो हो सकता है वह नाराज हो जाये। फिर इस घोर अरण्य में उस मूल्यवान रत्न को सराहने वाला भला कौन मिलेगा !

दूसरे दिन साँझ के समय गया। आशा के विपरीत बड़ा स्वागत हुआ मेरा। खाट पर बैठा माथा ऊँघ रहा था। उसने मुझे देखकर मुस्कराते हुए आँखों-ही-आँखों में नमस्कार किया और भीतर चली गई। माथा से बातें होने लगीं। यहाँ बस वे ही रहते थे। उनका और कोई था भी नहीं। पोती का नाम मोनी था। लोग उसे मोना कहकर पुकारते ? मोनी हो या मोना। मेरे लिए तो सुखद थी वह।

वह मेरा लोटा लेकर दूध भर लाई उसमें। यह दूसरा अवसर था उसके निकट जाने का। भर नज़र देखा मैंने उसे। जब अपनी कजरारी आँखों की पलकें उठाकर मेरी ओर देखा उसने तो सनसना उठा मेरा सारा शरीर — रोमांच हो आया सारे शरीर में। फिर तो निःसंकोच रोज ही पहुँचने लगा मैं वहाँ।

झोपड़ी के सामने थोड़ी दूर पर बहुत बड़ा बरगद का पेड़ था। उसी की छाँव में बैठकर कुछ देर तक बातें भी करने लगा मैं मोना से। तन-मन पर एकबारगी छा जाने वाली औरत से बात करने में उसकी भाषा की अनभिज्ञता कभी आड़े नहीं आई। कुछ ही दिनों में मैं मोना की भाषा सीख गया और मोना भी फर्राटे से हिन्दी बोलने लगी। हम दोनों के बीच अपने-अपने भाव व्यक्त करने में जो रूकावट थी वह दूर हो गई।

एक हफ्ते बाद उच्चाधिकारी और अन्य कर्मचारी पहुँचने वाले थे वहाँ। उन लोगों के रहने के लिए तम्बू-कनात एक दिन पहले ही आ गए थे। अतुल बाबू की सहायता से उनको लगाने के लिए स्थानीय मजदूरों की व्यवस्था की मैंने। तमाशा लगा। गाँव वाले देखने के लिए जुट भी गए। उस दिन स्वयं दूध लेकर आ पहुँची मोना। निहाल हो गया मैं। मगर उसके गाँव वाले बेहाल हो गए। उनमें जो युवक थे, उनकी तो हालत पूछिए मत। वे तमाशा छोड़कर बस एकटक देखने लगे उसी की ओर। अतुल बाबू मेरे साथ थे। वे भी उसे देखकर एकबारगी चकपका से गये। खाँसकर धीरे से बोले, 'शर्मा मोसाय ! इस जंगल में अंग्रेज जैसी गोरी लड़की कहाँ से आ गई ?'

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। मोना को जल्दी ही वहाँ से हट जाने का इशारा किया। वह सिर झुकाए चली गई। अगले दिन जब दूध लेने गया तो बातचीत के सिलसिले में गाँव वालों विशेषकर नवयुवकों की गन्दी नजरों का जिक्र किए बगैर रहा न गया मुझसे। मेरा ख्याल था कि चिन्तित होगी वह। मगर नहीं, वह शान्त और गम्भीर स्वर में बोली, 'मुझे सब मालूम है ! कुछ भी छिपा नहीं है मुझसे, पर आप घबराते क्यों हैं ? उनका दिया न आप खाते हैं और न तो मैं ही खाती हूँ।'

सहसा मोना का चेहरा गहरा गुलाबी हो गया। आकाश की ओर शून्य में ताकने लगी वह। अपने आप पर खीझ हुई मुझे, उस वीर बाला से क्यों कायरता की बात की मैंने। मेरे पुरुषत्व को ललकारा था उसने। मुझे मौन साधे देखकर मुस्कराती हुई हौले से बोली, 'तकलीफ, बन्दर और दुश्मन तीनों का स्वभाव एक जैसा होता है। जितना डरोगे, उतने ही हावी होंगे।' मैं उसका कायल हो गया यह सुनकर।

एक दिन प्रेमरस की बातें करते-करते मैं आवेश में उसे अपने हृदय से लगाने के लिए व्याकुल हो उठा। वह छिटक कर दूर जा खड़ी हो गई। क्षण भर के लिए उसकी कजरारी आँखें लाल हो उठीं। मैं सहम गया। धीरे-धीरे चलकर मेरे करीब आई वह और बड़े प्रेम से मधुर स्वर में बोली, 'डर गए, अब भला मैं तुम पर बिगड़ने लायक रह गई हूँ ? मगर एक फासला रखना, मर्यादा को तोड़ना और मर्यादा का अपने आप टूटना, अलग-अलग बात है।'

सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दे दी मैंने भी। उसके धैर्य और बुद्धिमानी की सराहना की और वचन दिया कि मैं सदैव वही करूँगा जिसमें वह प्रसन्न रहेगी। तन के सम्बन्ध से अधिक आत्मा के सम्बन्थ को अत्यधिक महत्व देती थी मोना।

खुदाई का काम शुरू होने वाला था। सारा इन्तजाम हो चुका था। अगले दिन मेरे सहयोगी रमाकान्त तिवारी दिल्ली से आ गए। उनके साथ उनकी पत्नी रमा जी भी थीं। घूमने के लिए आई थीं वह। तिवारी जी मेरे अधिकार में काम करते थे, लेकिन आयु में मुझसे थोड़े बड़े थे, इसलिए रमा जी को भाभी जी कहता था मैं। पढ़ी-लिखी, मिलनसार और हँसमुख महिला थी वह। मेरा कैम्प अलग था, लेकिन तिवारी जी के अनुरोध पर दोनों समय का खाना उन्हीं के साथ खाने लगा मैं।

एक दिन तिवारी जी अपने चपरासी को लेकर बाजार गए हुए थे। दोपहर का समय था। खाना खाने के बाद रमा जी के साथ बैठा इधर-उधर की बातें कर रहा था मैं। बीच-बीच में चुटकुले सुना-सुना कर मेरा मनोरंजन भी करती जा रही थीं यह। चाय पीने का समय जब हो गया तो नौकर चाय बनाकर ले आया।

रमा जी बिस्कुट का डिब्बा खोलकर नाश्ता करने बैठीं। दो-चार बिस्कुट मेरे गोद में भी फेंक दिया। उन बिस्कुटों को वापस करने के लिए उठा मैं। न जाने उनके मन में क्या आया कि मेरा हाथ पकड़ कर बिस्कुट का एक टुकड़ा मेरे मुँह में ठूँसने लगीं जबरदस्ती और जोर-जोर से कहकहे लगाकर हँसने लगीं। तभी मेरी नजर घूम गई कैम्प के दरवाजे की ओर। एकबारगी सकपका गया मैं। वहाँ मोना दोनों हाथ कमर पर रखे खड़ी थी। आँखें उसकी लाल हो रही थीं और चेहरा भी तमतमा रहा था उसका। बोली कुछ नहीं वह, लेकिन उसका मौन उसकी फटकार से भी अधिक दहला देने वाला था मन को। अगले दिन सबेरे तिवारी जी के साथ खुदाई का काम देखने चला गया था। जब लौटने लगा तो अचानक मेरी नजर मोना पर पड़ी। तिवारी जी और मेरे कैम्प की ओर से निकल कर दूर चली जा रही थी वह। मुझे आश्चर्य इस बात का हुआ कि मुझसे बिना मिले लौटी जा रही थी वह। मेरा माथा ठनका। किसी अज्ञात भय से काँप उठा मेरा मन। दौड़ा-दौड़ा कैम्प में पहुँचा — वहाँ का अप्रत्याशित दृश्य देखकर स्तब्ध रह गया एकबारगी। थर-थर काँपने लगा सारा शरीर।

अस्त-व्यस्त अवस्था में जमीन पर पड़ी तड़प रही थीं रमा जी। उनका शरीर तेजी से निश्चल होता चला गया। उस पिछड़े इलाके में दवा-इलाज का कोई इन्तजाम नहीं था। सभी ने अपनी ओर से भरसक प्रयत्न किया। कालू भी अपने अविश्वसनीय सुझाव देता रहा। लेकिन सब व्यर्थ सिद्ध होता चला गया। पूरा शरीर नीला हो चुका था रमा जी का अब तक और हम सबके सामने दम टूट गया उनका। तिवारी जी ने अपना सिर पीट लिया। मैं धम्म से बैठ गया जमीन पर। कालू को पक्का विश्वास था कि रमा जी को किसी भयंकर विषधर ने डस लिया था। उनके हाथ की उँगली पर दाँत के निशान थे, जिसमें से खून की बूँदें टपक रही थीं।

स्टाफ के लोगों पर मातम छा गया था। रमा जी के शव के सिरहाने पूरी रात सिर झुकाए उदास बैठे रहे तिवारी जी। मेरी मानसिक स्थिति कैसी थी बतला नहीं सकता। कालू भी उदास था और उसका चेहरा उतरा हुआ था। मोना को भी समाचार मिला मगर उस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। मुझे घोर आश्चर्य था। बार-बार मेरे मन में सन्देह का भाव उठ रहा था मोना के प्रति। मगर उस सन्देह की पुष्टि नहीं हो पा रही थी। पुष्टि हो भी जाती तो भला क्या कर लेता मैं ? दो दिन तक बराबर मेरे मस्तिष्क में तरह-तरह की संभावनाएँ उठ-उठकर परेशान करती रहीं मुझे। अत्यन्त खतरनाक युवती लगने लगी थी मुझे मोना। निश्चय ही कोई भयंकर विषधर साँप को पाल रखा होगा। उसी से डंसवा दिया होगा रमा जी को, इसमें सन्देह नहीं। यह सब सोचने-समझने और विचार करने के बावजूद अपने आपको मोना से अलग करने की बात सोच न सका मैं।

तिवारी जी उस खतरनाक हादसे की रिपोर्ट यदि विभाग में करना चाहते तो कर सकते थे, लेकिन नहीं किया उन्होंने। क्यों नहीं किया ? यह नहीं बतला सकता मैं। यदि उन्होंने रिपोर्ट किया होता तो मोना के पूरी तरह फँस जाने की सम्भावना थी। मुझसे भी जवाब-तलब किया जाता कि क्यों सम्बन्थ स्थापित किया था मैंने मोना और उसके दादा से ? क्या कारण था ? मैं कितनी भी सफाई देता, लेकिन एक न सुनी जाती मेरी और ...।

तिवारी जी के चले जाने के कारण खुदाई का काम बन्द हो गया था, लेकिन अगले आदेश तक रुकना पड़ा था मुझे वहाँ।

मोना की ओर से सतर्क हो गया था मैं। यह बात ताड़ गई थी वह। एक दिन दोपहर के समय मेरे कैम्प में आई और बड़े प्यार से मेरा हाथ थामकर अपनी ओर खींचती हुई रसभरे स्वर में बोली, 'बाबू, तुम मुझे कभी बुरा मत समझना। तुम्हारे लिए कभी बुरा नहीं बन सकती मैं। मगर हाँ ! तुम्हारी भलाई के लिए कालीमाई का रूप भी धारण कर सकती हूँ। किसी को भी चबा सकती हूँ। किसी का भी खून पी सकती हूँ मैं। समझ गये न ?' मोना का प्रेम-प्रदर्शन और अपनी सफाई में कही गई ये सारी बातों को सुनकर बहुत अच्छा लगा मुझे। अपलक निहारने लगा मैं उसे।

निश्चय ही जादूगरनी थी वह। उसके अंग-प्रत्यंग में आकर्षण था और भरी थी यौवन की मादकता। भला कैसे कहा जा सकता था उसे अपराधिनी ? आवेश से भर उठा मैं। वासना के वशीभूत होकर रोम-रोम काँपने लगा मेरा। उस परम सुन्दरी नवयौवना को खींचकर अपने हृदय से लगाने के लिए व्याकुल हो उठा मैं। मेरी व्याकुलता अपनी सीमा तोड़ रही थी। शायद मोना की भी यही स्थिति थी। वह भी वासना के नशे में बेहोश-सी होती हुई नजर आई मुझे। मेरे सीने पर अपना सिर टिकाकर आलिंगनबद्ध कर लिया उसने मुझे। फिर हम दोनों के होंठ एक-दूसरे के करीब और करीब होने लगे। उसकी गर्म साँसें मेरे चेहरे पर टकराने लगीं। अपने आलिंगन में धीरे-धीरे कसती जा रही थी वह मुझे। त्रिभुवन का राज्य पाने जैसी स्थिति में पहुँचने ही वाला था कि उसी पल जैसे कहीं बिजली गिरी। मुझसे छिटक कर एकदम अलग हो गई मोना। सारा शरीर पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा था उसका। चेहरे पर क्षमा-याचना का भाव लाकर जोर-जोर से साँस लेती रही वह।

एक सप्ताह के भीतर एक के बाद एक कई घटनाएँ घटीं। यदि वे न घटतीं तो कई अविश्वसनीय रहस्य अनावृत न हो पाते और यह कथा लिखने का अवसर भी न आता। शुरू से ही पूरे गाँव वालों की आँखों की किरकिरी बना हुआ था मैं। एक दिन उन्होंने पंचायत की और माथा को खूब जली-कटी सुनाई।

माथा बहुत धैर्यवान निकला। सिर झुकाए मौन साधे सुनता रहा सब कुछ — किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया उसने। लेकिन जब पंचायत ने चेतावनी देते हुए यह कहा कि बिरादरी में भ्रष्टाचार फैलने से पहले बिरादरी के कायदे-कानून के मुताबिक एक शीशी साँप का असली जहर और तीन थैली जड़ी-बूटियाँ जुर्माने के रूप में मुखिया को देकर बेटी की शादी जल्दी कर दो — तब माथा तनकर खड़ा हो गया अपनी जगह — एक बार लाल-लाल आँखों से चारों तरफ देखा सिर घुमाकर और फिर उसने पूछा, 'जब अंग्रेज हाकिम के

आदमी खुलेआम गाँव वालों के सामने मोना की माँ को उठाकर ले गये थे तब कौन-सी पंचायत उसे बचाने पहुँची थी ?'

माथा की ललकार सुनकर और भी भड़क उठे लोग। 'कहाँ की बात कहाँ लाकर लगाता है पापी ! पंचायत क्या अंग्रेज हाकिम से लड़ने जाती ?'

इस घटना ने अतीत की गड़ी परतें उघाड़ दीं। एकबारगी और उसी के साथ मोना के सौंदर्य का रहस्य भी खुल गया मेरे सामने। बात २० वर्ष पहले की थी। उस समय स्वतन्त्रता संग्राम अपनी चरम सीमा पर था। सर्वत्र जन-आन्दोलन की आग धधक रही थी। कितने निरीह लोग उस धधकती आग में जलकर भस्म हो रहे थे। माथा का एकमात्र पुत्र था मलुआ। २० वर्ष का जवान था वह। पिछले महीने ही उसका गौना आया था। पत्नी का नाम था मझनी। मझनी अति सुन्दर नवयुवती थी। लेकिन उसके ठीक विपरीत था मलुआ। बिल्कुल बदसूरत, काला भुजंग, न देखने में न सुनने में। सचमुच दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर था। लेकिन मझनी खुश थी। उसका सब कुछ था मलुआ। देवता से कम नहीं समझती थी उसे वह। सास न जाने कब की मर चुकी थी। परिवार में बाप-बेटे के अलावा और कोई नहीं था। दिन भर मग्न रहती थी अपने काम में वह।

एक दिन २५-३० वर्ष की आयु का एक स्वस्थ सुन्दर युवक बगल में झोला लटकाये गाँव में आया। वह थका-हारा था और कई दिनों का भूखा भी था। उसके शरीर पर खद्दर का कुर्ता-पायजामा था और सिर पर टोपी थी। उसका नाम था भानु सिंह। वह कुछ दिन गाँव में रहना चाहता था। उसने गाँव के मुखिया को बतलाया कि सर्प विष पर शोध करना चाहता है वह। इसलिए आया है वहाँ। फिर उसने मुखिया को अपनी बातों से ऐसा प्रभावित किया कि उसके रहने और खाने की व्यवस्था तुरन्त कर दी मुखिया ने।

धीरे-धीरे तीन महीने का समय बीत गया। अचानक एक दिन पूरे गाँव को घेर लिया पुलिस ने चारों तरफ से। हड़कम्प मच गया गाँव के लोगों में। घर की तलाशी ली जाने लगी। गाँव में पुलिस क्यों आई है ? यह समझ में नहीं आ रहा था लोगों को। सभी भयभीत थे। बाद में पता चला कि जिस सीधे-सादे सरल युवक को सर्प विष का खोजकर्ता समझ रहे थे, वास्तव में वह बहुत बड़ा क्रान्तिकारी था। जन-आन्दोलन का एक सक्रिय नेता था। पूरे तीन साल से फरार था। लूटमार, डकैती के अलावा कई अंग्रेज हाकिमों की हत्या भी की थी उसने। बड़ी सरगर्मी से उसकी खोज कर रही थी पुलिस।

जब पुलिस गाँव में आई थी उस समय मलुआ के घर में खाना खा रहा था भानु सिंह। भागने का मौका नहीं मिला उसे। पुलिस इंस्पेक्टर एक अंग्रेज युवक था। जॉनसन — बड़ा क्रूर और निर्दयी था वह। भानु सिंह के साथ मलुआ को भी गिरफ्तार कर लिया उसने, एक हत्यारे क्रान्तिकारी को अपने घर में पनाह देने के जुर्म में। किसी काम से गाँव के बाहर गया था माथा इसलिए बच गया वह। रोती-गिड़गिड़ाती मझनी पर अचानक नजर पड़ गयी निर्दयी जॉनसन की। देखा तो बस देखता ही रह गया उस रूपसी यौवना को। इन जंगली आदिवासियों के बीच यह ताजा गुलाब का फूल कैसे ? पानी भर आया उस कामांध के मुँह में। जबरदस्ती ले गया अपने साथ मझनी को वह। देखते रह गए गाँव वाले मुँह

बाये। किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई।

भानु सिंह का क्या हुआ ? यह तो बतलाया नहीं जा सकता, लेकिन मलुआ की लाश दूसरे दिन मिली अवश्य, दो मील दूर एक पोखरी में उतराई हुई। बेटे की निर्मम हत्या और बहू का अपहरण — पागलों जैसी दशा हो गई माथा की। उसी स्थिति में मझनी को खोजता हुआ मारा-मारा फिरा। जिला कलेक्टर तक अपनी पुकार पहुँचाई। मगर वे सभी एक ही थैले के चट्टे-बट्टे थे। कोई सुराग नहीं मिला मझनी का। पूरा एक साल बीत गया। एक दिन गाँव का गाड़ीवान बल्लू अपनी बैलगाड़ी में सामान लादकर बाजार गया था। सहसा उसकी नजर एक रोती-बिलखती असहाय नारी पर पड़ी। उसकी दशा पागलों जैसी थी। शरीर पर चिथड़ा लिपटा था। रह-रह कर अपना बाल नोच रही थी वह। बल्लू को पहचानने में देर न हुई। मझनी थी वह। वह अपनी बैलगाड़ी में बैठाकर गाँव ले आया उसे। गाँव वालों ने उसे कोई दोष नहीं दिया — माथा भी चुप रहा। मगर अपने आप स्वयं जलती रही मझनी। धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरी और एक महीने बाद उसने मोना को जन्म दिया और उसी समय मर गई। मोना कुछ तो अपनी माँ पर गई थी और कुछ अपने गोरे बाप पर, खैर !

गाँव वालों ने जब देख लिया कि माथा उनकी खुलेआम उपेक्षा कर रहा है तो उन्होंने दूसरे हथकंडे अपनाये। अपने आपको बिरादरी की इज्जत के ठेकेदार समझने वाले कुछ युवकों ने लोहे का कड़ा लगी लाठियाँ संभालीं और मेरे कैम्प में आ धमके, 'अफसर के बच्चे ! तू यहाँ गाँव की बहू-बेटियों के साथ रंगरेलियाँ मनाने आया है या सरकार की ड्यूटी बजाने। अपना भला चाहता है तो गाँव की ओर मुँह करना छोड़ दे, नहीं तो तेरे घर वाले तेरी जान को रोते फिरेंगे।'

कालू ने उन्हें समझा कर मामले को दबा दिया। मगर अपने अपमान के कारण मेरा बुरा हाल हो रहा था। आतंक के भाव मेरे चेहरे पर स्पष्ट झलक आये थे। उनके जाने के बाद कालू ने मुझे समझाते हुए भयभीत स्वर में कहा, 'साहब ! ये जरायमपेशा लोग हैं। मोना के चक्कर में क्यों आप साँप के फन पर पैर रखते हो ?'

मोना में न जाने कौन-सा आकर्षण था जिसके वशीभूत होकर पागल-सा हो गया था उसके लिए मैं। मेरे भीतर एक नये जीवन का संचार कर रही थी वह। उसे लेकर सपने देखने लगा था मैं। लेकिन उसके लिए पूरे गाँव वालों से अकेले भिड़ने का साहस भी नहीं था मुझमें। एक बार मन में आया कि वहाँ से चल दूँ। मगर विवशता थी। पहली यह कि अभी तक कोई नया आदेश नहीं आया था। दूसरी विवशता थी मोना हर पल छाई रहती थी मेरे मन-मस्तिष्क पर।

दो दिन से भूखा-प्यासा पड़ा था अपने कैम्प में। कालू भी गायब था। वह भी अब बिरादरी की बातों में आकर भीतर-ही-भीतर विरोधी बनता जा रहा था मेरा। लेटा हुआ था मैं उस समय। अचानक मेरे सामने आकर मोना खड़ी हो गई। अनुराग और प्रेम से भरी थी उसकी आँखें। अपनी सारी परेशानियों और सारी विवशता भूल गया मैं उसे देखकर। मेरे सिर के बालों में अपनी उँगलियाँ फिराती हुई स्नेह से कहने लगी वह, 'तुम चिन्ता मत करो बाबू !

डरो भी मत। वे सब तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं पायेंगे। अब तो मुझे भी जिद हो गई। जब मुझे पता चला तो सीधे उनकी छाती पर जा चढ़ी मैं और खूब खरी-खोटी सुनाते हुए कहा कि बाबू को किसी ने छुआ तो मैं खुद मरूँगी ही पर तुम सबको मिटाकर दम लूँगी। ये मत समझना कि मेरा कोई मददगार और कोई साथी नहीं। बाबू ! सरकारी आदमी हैं। पुलिस आएगी तो पूरे गाँव वालों का नाम गिनकर बताऊँगी। सच कहती हूँ बाबू ! मेरी फटकार सुनकर सबको जैसे साँप सूँघ गया।'

मोना की बात सुनकर एकबारगी दंग रह गया मैं। उसका यह रूप तो समर-भूमि में लोहा लेने जैसा था। क्या यह उसके खून का असर था ? मेरे लिए तो वह काली का अवतार बन गई थी। उसके साहस और उत्साह ने मुझे निर्भय कर दिया एकबारगी।

गाँव वाले एक पल भी गाँव में रहने देना नहीं चाहते थे। कालू बिल्कुल मेरा विरोधी बन गया था अब। केवल अतुल बाबू की छाया थी मुझ पर। मोना दूध लेकर रोज आती थी और थोड़ी देर रुककर चली जाती थी। उसके सान्निध्य और बातों में शान्ति मिलती थी मन को। तीन दिन बाद स्टाफ के लोग आ गए। तिवारी जी छुट्टी पर थे। वे नहीं आये। उनके स्थान पर वर्मा जी को काम देखना था। वे अति चुस्त-दुरुस्त अफसर थे। आते ही खुदाई का काम शुरू कर दिया उन्होंने — मैं भी अति व्यस्त हो गया। एक रात थककर गहरी नींद में सोया था। अचानक पीड़ा से कराह उठा और उसी के साथ नींद भी खुल गई। मेरा सारा शरीर जलने लगा। कान सन्-सन् करने लगा। गला सूखने लगे। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं पल-दो-पल में जलकर भस्म हो जाऊँगा।

मेरा चपरासी ननकू बगल में ही सोया था। वह जाग उठा। मेरी दशा देखकर उसका घबराना स्वाभाविक था। कुछ मिनटों में अफसरों और कर्मचारियों की भीड़ लग गई मेरे कैम्प में। अतुल बाबू भी दौड़े-दौड़े आए। मुझे चक्कर आ रहा था। कमजोरी बढ़ती जा रही थी और आँखों के सामने अँधेरा छाता जा रहा था। तभी कुछ धुँधला-सा दिखाई दिया। दौड़ती हुई कैम्प में दाखिल हुई मोना। एकबारगी चीख उठी मेरी दशा देखकर वह। फिर कसकर लिपट गई मुझसे। आलिंगन में बाँध लिया मुझे। वही आलिंगन जिसके लिए तरसा करता था मैं। लेकिन वह आलिंगन तब मिला जब मैं उसका सुख और आनन्द लेने की ही स्थिति में नहीं था।

बिलख-बिलख कर रोती जाती थी मोना और मुझे अपने बाहुपाश में कसती भी जाती थी। वह आलिंगन इतना उन्मत्त था जैसे वह अपने प्रेमी का अन्तिम आलिंगन कर रही हो। उसके आँसुओं से मेरा चेहरा भींग गया। लोगों के सामने बिना किसी संकोच के उसने मेरे होंठों पर अपने प्यासे होंठ रख दिए। फिर मेरे होठों को काटना शुरू कर दिया। लगातार इस तरह वह उछल-उछल कर दाँत काटती रही जैसे वह नागिन हो और डस रही हो मुझे — पूरी तरह उन्मादित हो गई थी और उसी स्थिति में उन्मत्त चुम्बन लेते हुए मेरा खून चूसती रही वह। कुछ देर बाद मुझे लगा जैसे मेरे शरीर का ताप कम होता जा रहा है। रोम-रोम से निकलने वाली आग की लपटें भी कम होती जा रही हैं। मेरी हालत बहुत कुछ सुधर गई थी पहले से। मेरा कण्ठ का सूखना भी बन्द हो गया था। आँखें खोलकर चारों

तरफ देखा मैंने — विभाग के अफसरों, कर्मचारियों के अलावा, माथा के साथ अतुल बाबू भी खड़े थे। सभी के चेहरे पर चिन्ता और घबराहट थी। हाँ, गाँव वालों में से कोई नहीं था वहाँ।

मोना अभी भी पागलों की तरह मुझसे लिपटी मेरे होठों और गालों को बेतहाशा काटती और चूसती जा रही थी। भावना जगी कि उसे रोकूँ ऐसा करने से, लेकिन शक्ति ही नहीं थी। हाथ-पाँव हिलाकर संकेत करने की स्थिति सुधरते ही अत्यधिक थकान का अनुभव होने लगा था मुझे। मेरी आँखें मूदने लगीं थकान के कारण। फिर न जाने कब सो गया गहरी नींद में। जब आँख खुली तो देखा साँझ हो चुकी थी और वहाँ कोई नहीं था। मेरा सिर मोना की गोद में था। पैर में एक जगह किसी चीज का लेप कर रही थी वह। माथा भी हाथ में एक मैला-कुचैला थैला लिए खड़ा था। शायद वही दवाइयाँ लाया था झोले में। मोना ने कोई जड़ी घिसकर पिलाई मुझे। तुरन्त ही सारे शरीर में शक्ति का संचार होता हुआ अनुभव हुआ मुझे। अब पूर्ण चैतन्य और पूर्ण स्वस्थ हो गया था मैं।

धीरे से पूछा मैंने, 'मुझे क्या हो गया मोना ? कैसे बच गया मैं ?' हौले से मुस्कराई और अभिसारिका नायिका की तरह मेरे वक्ष पर अपना सिर रखकर बोली, 'दुश्मनों ने तुम्हें जान से मारने के लिए रात में चुपचाप तुम्हारे बिछौने में साँप छोड़ दिया था। जिस साँप को छोड़ा था उसका काटा पानी तक नहीं माँगता। तुरन्त मर जाता है वह।

उसकी पीठ सहलाते हुए धीरे से पूछा मैंने, 'एक बात बतलाओ ! तुम तो मुझे छूने तक नहीं देती थी, लेकिन आज खुद ... —'

मेरी बात सुनकर मोना लजा गई और मुझे अपने आलिंगन में कसते हुए उसने कहा, 'जितनी आकुलता तुम्हें थी उससे कहीं ज्यादा आकुल मैं थी। दिन-रात तुम्हारे लिए तड़पती रहती थी। मगर लाचार थी, विवश थी। मेरे तुम्हारे बीच में इतनी बड़ी रुकावट थी जो कभी भी दूर नहीं हो सकती थी। भगवान् जो भी करता है अच्छा ही करता है। दुश्मनों की चाल ने उस रुकावट को हमेशा के लिए दूर कर दिया।'

'वह कैसे ?' 'मैंने उत्सुकता से पूछा।'

'तुम्हें कई बार बताना चाहा था कि बेटे की मौत और बहू के साथ हुए हादसे के कारण मेरे दादा हमेशा परेशान रहा करते थे। अकेले में फूट-फूट कर रोया करते थे। कोई सहारा नहीं था उनका। मुझे गोरी और सुन्दर देखकर मन-ही-मन घबराते रहते थे वह। जवान होने पर मेरे साथ भी वह हादसा हो सकता था, जो मेरी माँ के साथ हुआ था। इसी भय ने उनको मुझे 'विषकन्या' बनने की प्रेरणा दी। वे मुझे उसी साँप से रोज डसवाते थे, जिस जाति के साँप ने तुम्हें डसा था। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि दोनों साँपों की जाति एक थी, वर्ना बचा न पाती मैं तुमको। खैर ! दादा ने तो मेरी रक्षा कर दी, मगर वह रक्षा मेरे लिए अभिशाप बन गई। जीवन भर तड़पने के लिए छोड़ दिया उसने मुझे। उसी अभिशाप के कारण तुम्हें अपना नहीं पा रही थी। चाहकर भी दूर रहती थी तुमसे मैं। यदि आवेश के वशीभूत होकर अन्धी हो जाती तो तुम्हारा भी वही हाल होता, वही दशा होती, जो

तुम्हारे साहब की कुलटा औरत की हुई थी।'

मुँह बाये अवाक् सुनता रहा मैं। मोना आगे बोली, 'मेरा प्रेम और मेरी मंगलकामना ही मुझे तुमसे बराबर दूर रखती थी। अब उसी प्रेम ने और उसी मंगलकामना ने समीप ला दिया है। उस भयंकर विषधर के विष को बेअसर करने के लिए अपने रग-रग में फैले विष का प्रयोग करना पड़ा मुझे। तुम्हें दाँतों से काट-काटकर और तुम्हें आलिंगन में लेकर अपने विष के जरिए तुम्हारे शरीर के विष को खींचना पड़ा। मेरा प्रयोग सफल रहा। विषकन्या जो हूँ मैं ! अब ...अब ... मैं ... तु ... म्हें अचानक मोना के गले में शब्द अटकने लगे। जबान लड़खड़ाने लगी। शरीर भी नीला पड़ने लगा। आगे बोल न सकी वह। धड़ाम् से गिर पड़ी जमीन पर। दूसरे क्षण सारा शरीर ठण्डा हो गया उसका। मर चुकी थी वह —'

लाश से लिपट कर माथा रोने लगा फूट-फूट कर। मेरी मानसिक स्थिति कैसी थी उस समय, बतला नहीं सकता मैं। स्तब्ध अवाक् अपलक निहारता रहा मैं प्रेम को, स्नेह की, करुणा की और त्याग की उस साकार मूर्ति को जिसने अपना जीवन गँवाकर मुझे जीवनदान दिया था।

अध्याय १६
पत्नी की आत्मा

बहुत-से लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के बाद मृतक और उसके आत्मीयजनों के बीच का रिश्ता हमेशा के लिए खत्म हो जाता है। लेकिन मेरी आँखों के सामने ही एक ऐसी घटना घटी कि मुझे विश्वास करना पड़ा कि मृत्यु के बाद भी मृतक का अपने आत्मीयजनों से सम्बन्ध बराबर बना रहता है।

उन दिनों मैं डिब्रूगढ़ के पास तिनसुकिया के एक टी-स्टेट में काम करता था। मैं वहीं टी-स्टेट की कैम्प की मेस में रहता था। हम लोगों की मेस कैम्प के अन्तिम छोर पर जंगल से सटे हुए एक मकान में थी।

मेस में सात सदस्य थे। उनमें कोई भी मेरा हम उम्र न था। उनमें से दो सदस्य कितने दिन से मेस में रह रहे थे, किसी को मालूम न था। कहा जाता था कि उस मेस के संस्थापक वे ही दोनों थे। उनका नाम शैलेश बाबू और यतीन बाबू था। वे दोनों गहरे मित्र थे, एक-दूसरे के राजदार। शैलेश बाबू की उम्र ५६-५७ वर्ष की थी, लेकिन देखकर उन्हें ३५-३६ से ज्यादा कोई नहीं कह सकता था। इसके विपरीत ५५-५६ वर्ष के यतीन बाबू ६०-६५ वर्ष के लगते थे।

मेस के सात सदस्य तीन कमरों में रहते थे। शैलेश बाबू अकेले एक कमरे में रहते थे। मेरे आते ही उन्होंने मुझे अपने कमरे में शरण दे दी। उनकी चारपाई के सिरहाने उनकी स्वर्गवासी पत्नी का एक तैल-चित्र टंगा हुआ था। उस चित्र में कुछ ऐसा था कि देखने वाले सिहर उठते थे। मैंने भी पहले दिन जब वह चित्र देखा, तो अनुभव किया कि जैसे एक

ठण्डी लहर मेरे सारे शरीर में दौड़ गई हो।

आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण मुझे ट्यूशन भी करना पड़ता था। उसी कैम्प में मैं दो-तीन बच्चों को पढ़ा देता था। रात को देर से अपनी मेस में लौटता था।

एक रात मुझे लौटने में कुछ ज्यादा ही देर हो गई। वह पूर्णिमा की रात थी। ज्योत्स्ना चारों ओर फैली हुई थी। हर चीज साफ-साफ नजर आ रही थी। मैंने अपनी मेस की ओर देखा, तो मुझे लगा कि मकान की छत पर दो छायाएँ निश्चल बैठी थीं। मैं ज्यों-ज्यों नजदीक पहुँचता गया, मेरा सन्देह पक्का होता गया। मकान के पास पहुँच कर मैंने देखा, तो छत पर एक अधेड़ उम्र की औरत के साथ एक जवान लड़की बैठी हुई थी। उन दोनों के बाल पीठ पर बिखरे हुए थे। चूँकि उनकी पीठ मेरी ओर थी, मैं उनकी शक्लें न देख सका। मुझे यह सोचकर बुरा लगा कि किसी ने बुरी नीयत से बाहर से औरतें बुलाकर छत पर छुपा रखा है।

मैं चीखता हुआ-सा मकान के अन्दर घुसा, 'किसने औरतों को बुलाकर छत पर छुपा रखा है? यह तो बहुत बुरी बात है। मेस की इज्जत इस तरह तो मिट्टी में नहीं मिलानी चाहिए।'

तुरन्त ही सब-के-सब है 'क्या बात है? ... क्या बात है हैं?' कहते हुए मेरे इर्द-गिर्द जमा हो गये।

मैंने कहा, 'क्या बात है, देखना चाहते हैं, तो आइए मेरे साथ।'

सबको लेकर मैं बाहर आया। वे औरतें अब भी वैसी ही बैठी थीं। मैं हाथ उठाकर उनकी ओर संकेत करने को हुआ तो मेरा हाथ उठा-का-उठा ही रह गया और मेरी जबान तालु से सट गई। उन औरतों को जैसे ही हम लोगों की आहट मिली, वे हवा में उठीं और फिर उठती ही चली गईं, जब तक कि अदृश्य न हो गई। हम लोगों की साँस रुक गई। मैंने क्षमा-याचना की निगाहों से सबकी ओर देखा। सब वहाँ मौजूद थे, केवल शैलेश बाबू और यतीन बाबू न थे। फिर पता नहीं कहाँ से एकाएक यतीन बाबू आकर हम पाँचों को लगभग ढकेल कर अन्दर ले गए।

भूतों के बारे में सुना तो था, लेकिन देखा नहीं था। भूतों से इस तरह अचानक मुलाकात होगी, उम्मीद नहीं थी।

कुछ देर पहले जहाँ हल्ला हो रहा था, अब वहीं श्मशान की निस्तब्धता छा गई थी। मैं सिर झुकाये हुए अपने कमरे में आया। भीतर शैलेश बाबू चुपचाप बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे एकाध बार खामोश निगाहों से देखा। उनके चेहरे से लगता था कि वे उदास थे। मैं इस घटना से इस तरह भयभीत तथा लज्जित हो गया था कि मेरे मुँह से कोई आवाज ही नहीं निकल रही थी। मैं चुपचाप अपने बिस्तर पर बैठा कमरे की हर वस्तु को देख रहा था। जैसे ही मेरी निगाह उस तैल-चित्र पर पड़ी, मैं एक अज्ञात भय से काँप गया। शैलेश बाबू की स्वर्गीय पत्नी के उस चित्र की आँखों में जैसे इस समय अंगारे चमक रहे थे। लालटेन की धुँधली रोशनी में वे आँखें बड़ी भयंकर लग रही थीं। मुझे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे शैलेश

बाबू की पत्नी का वह चित्र नहीं, बल्कि वे स्वयं वहाँ खड़ी हैं और क्रोधभरी आँखों से मुझे घूर रही हों। मैंने भय के कारण उस ओर से मुँह फेर लिया। मैं कोई डरपोक नहीं था, फिर भी उस चित्र से मुझे डर लगने लगा।

शैलेश बाबू मुझे बहुत प्यार करते थे। लेकिन इस घटना के बाद वे मुझसे कुछ खिंचे-खिंचे से रहने लगे। इस स्थिति में वे खुद मुझे रहस्यमय लगने लगे।

एक महीने बाद की बात है। दुर्गापूजा की छुट्टी में सब घर गये हुए थे। मेस में सिर्फ यतीन बाबू, शैलेश बाबू, मैं और बावर्ची रह गये थे। यतीन बाबू और शैलेश बाबू छुट्टी में भी कहीं नहीं जाते थे। मुझे छुट्टी नहीं मिली थी, इसलिए मैं भी घर न जा सका था।

विजयादशमी की रात थी। मैं अपने यतीन बाबू के कमरे में बैठा पढ़ रहा था। इतने में नशे में धुत्त यतीन बाबू आये और मेरे सामने बैठ गए। कुछ देर तक वे मुझे निहारते रहे। फिर बोले, 'जानते हो, शैलेश क्यों तुम्हें इतना प्यार करता है ?'

मैंने पहले सोचा कि शायद वे नशे में बक रहे हैं। लेकिन फिर सोचा, नहीं, लोग कभी-कभी नशे में अपने मन की बातें करने लगते हैं। यही सोचकर मैंने जिज्ञासा से उनकी ओर देखा।

यतीन बाबू ने कहा, 'तुम्हारा चेहरा उनके दामाद से हू-ब-हू मिलता है।'

मैंने पूछा, 'उनका कोई दामाद भी है क्या ?'

'है नहीं, था ? एक नम्बर का लुच्चा ! साला पी-पीकर मर गया।'

'और शैलेश बाबू की लड़की ?'

वे चिढ़कर बोले, 'उस रात छत पर तुमने किनको देखा था ? किनको ? क्या वे तुम्हारी माँ और दादी थी ?'

दूसरा समय होता तो शायद मैं नाराज हो जाता। इस समय मैं नाराज न हुआ, आश्चर्य से उनकी ओर देखा।

वे कहने लगे, 'छत पर जो औरत थी, वह शैलेश की स्त्री थी और जो लड़की थी उसकी इकलौती बेटी थी। उस लुच्चे ने, जिसका चेहरा तुमसे मिलता-जुलता था, एक रात शराब के नशे में उस बेचारी का गला घोंटकर उसकी हत्या कर डाली थी। ... मैं और शैलेश बचपन के दोस्त हैं। जिस कमरे में शैलेश रहता है, उसमें मुझे जगह नहीं मिली, लेकिन तुम्हें मिल गई, इसलिए कि तुम्हारा चेहरा शैलेश के लुच्चे दामाद से मिलता-जुलता है। शैलेश उस लुच्चे को भी बड़ा प्यार करता था।'

मैंने देखा, यतीन बाबू की आँखों में आँसू तैर रहे थे। उनसे मैं कुछ और पूछने जा ही रहा था कि वे उठकर चले गये।

रिवाज के अनुसार मैं शैलेश बाबू को विजयादशमी का अभिनन्दन देने गया। चूँकि वे उम्र में मुझसे काफी बड़े थे, इसलिए मैंने उनके पैर छूकर उन्हें प्रणाम किया। वे बड़े उदास थे।

वे बोले, 'बैठो।'

मैं अपने बिस्तर पर बैठ गया। वे फिर स्वयं कहने लगे, 'जानते हो, मैं क्यों उदास हूँ ? इसी विजयादशमी के दिन मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी। उसकी मृत्यु भी शान्ति से नहीं हुई। इकलौती बेटी की अकाल-मृत्यु के शोक में उसकी मृत्यु हुई। वह मुझे बहुत प्यार करती थी। अब भी बहुत प्यार करती है।'

मैंने आश्चर्य से उनकी ओर देखकर पूछा, 'अब भी करती है ...'

'हाँ, अब भी करती है।'

मैंने कहा, 'आपकी यह बात समझना कठिन है ...'

वे एक अजीब मुस्कराहट के साथ बोले, 'अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है ? अभी तुमने दुनिया देखी ही क्या है ? तुम्हें क्या मालूम, वह रोज रात को भी पास आती है। मेरे पाँव दबाती है, सिर में तेल डालती है, गर्मी की रातों में मुझे पंखा झलती है ...'

'झू...' मेरे मुँह से अभी एक ही अक्षर निकल पाया था कि मेरी नजरें चित्र पर पड़ी और मेरी बात मेरे गले में ही घुट कर रह गई। चित्र में शैलेश बाबू की पत्नी की आँखें जैसे क्रोध से जल रही थीं।

उस रात मैं लेटने के बाद भी सोया नहीं। निरन्तर जागता रहा और बीच-बीच में शैलेश बाबू की चारपाई की ओर देखता रहा। शैलेश बाबू मसहरी के अन्दर गहरी नींद में सो गये थे। पता नहीं, कब मेरी आँखें लग गई। जब फिर मेरी आँखें खुलीं, तो मैंने आँखें फाड़कर शैलेश बाबू की चारपाई की ओर देखा। वहाँ का दृश्य देखकर मेरा सीना धक्-धक् करने लगा। मेरी साँसें रुक गई। पसीने से कुर्ता-पायजामा भींग गए। सिर से पैर तक चादर ओढ़कर मैं सोया था। चादर से मुँह निकाल कर मैं बाहर झाँक रहा था और देख रहा था। लाल धारीदार सफेद साड़ी पहने हुए एक स्त्री शैलेश बाबू के पाँव दबा रही थी। फिर वह उनके सिर में तेल डालने लगी। तभी अचानक मेरी तकिया चारपाई से नीचे गिर गई। आवाज सुनकर उस स्त्री ने क्रोधभरी नजरों से मेरी ओर देखा। पति-सेवा में बाधा होने के कारण वह काफी क्रोधित हुई। फिर वह धीरे से उठी और मसहरी से बाहर निकल कर तैल-चित्र के सामने जा खड़ी हुई और पलक झपकते ही गायब हो गई। तैल-चित्र उस समय हिल रहा था। भय से मेरे शरीर के सारे रोंगटे खड़े हो गये थे।

अब मुझे नींद क्या आती ? आश्चर्य और भय से मेरा बुरा हाल था। डर के मारे कभी आँखें मूँद लेता और कभी खोलकर इधर-उधर देख लेता। एक बार आँखें मूँदी तो मुझे ऐसा लगा, जैसे कोई मेरे सीने पर बैठकर मेरा गला दबा रहा हो। मैंने अचकचाकर आँखें खोलीं, तो वही तैल-चित्र वाली दो अंगारों-सी आँखें दिखाई दीं। मैंने चीखना चाहा, तो मेरी आवाज गले में ही घुटकर रह गई। गला सूख गया था। शैलेश बाबू की पत्नी ने, हाँ, वह शैलेश बाबू की पत्नी ही थीं, अब मेरे सीने से उठकर अपना एक घुटना मेरे पेट पर रख दिया और उससे मुझे दबाने लगीं। उनके हाथ अब भी मेरी गर्दन पर ही थे। मेरी किस्मत अच्छी थी। वे

मेरे सीने से उठकर अपना घुटना मेरे पेट पर रख रही थीं तो मेरी गर्दन पर उनके हाथों की पकड़ ढीली हो गई थी और मेरे मुँह से चीख निकल गई थी। फिर मैं बेहोश हो गया।

होश आया, तो मैंने देखा, शैलेश बाबू और यतीन बाबू मेरे मुँह पर पानी छिड़क रहे थे और मुझे पंखा झल रहे थे। शैलेश बाबू को देखते ही मेरे मुँह से चीख निकल गई, 'शैलेश बाबू मुझे बचाइए। आपकी पत्नी मुझे मार डालेंगी।'

दोनों मित्रों ने मिलकर मुझे शान्त किया। फिर उन्होंने मुझे चाय पिलायी। मेरी आँखें अपने-आप उस तैल-चित्र की ओर उठ गईं। वे आँखें अभी भी क्रोध की ज्वाला से धधक रही थीं।

नौकरी के सिवा मेरी जीविका का कोई दूसरा साधन न था वर्ना नौकरी छोड़कर मैं उसी वक्त वहाँ से भाग जाता। मैं दूसरे ही दिन शैलेश बाबू के कमरे से अपना सामान लेकर यतीन बाबू के कमरे में चला गया।

कुछ दिन बाद मुझे दूसरी जगह नौकरी मिल गई। मैंने स्टेट की नौकरी छोड़ दी।

मेस के सदस्यों से विदा लेकर मैं स्टेशन की ओर चला, तो शैलेश बाबू मुझे छोड़ने आए। डिब्रूगढ़ स्टेशन पर मैं गाड़ी छूटने का इन्तजार कर रहा था। डिब्बे के दरवाजे पर मैं खड़ा था। गाड़ी ने सीटी दी, तो यतीन बाबू अचानक सिसक उठे। मैं नीचे उतर कर यतीन बाबू के सीने से लग गया। फिर झुककर उनके चरण छुए।

वे भींगे स्वर में कहने लगे, 'मैं आज दूसरी बार अपना बेटा खो रहा हूँ। शैलेश का लुच्चा दामाद, उसकी बेटी का कातिल दामाद, मुझ बदनसीब का ही बेटा था ...'

उनकी बात पूरी भी न हो पायी थी, कि गाड़ी चल पड़ी। मैं शैलेश बाबू की ओर देख रहा था, कि मेरी आँखों के सामने वही तैल-चित्र वाली दो दहकती हुई आँखें आ गयी। उस समय उन आँखों में सिर्फ ममता भरी चमक थी, क्रोध नहीं।

अध्याय १७
एक प्रख्यात कवि का प्रेतात्माओं से साक्षात्कार

महाकवि विलियम ब्लैक व्यक्तिगत जीवन में अति संवेदनशील और संकोची थे। उनकी पत्नी कैथरीन के अलावा सिर्फ मैं ही एक ऐसा व्यक्ति था, जो इस अविश्वसनीय तथ्य से परिचित था कि वे रात में अपनी एकान्त शैया पर पड़े-पड़े जागते हुए सदियों पूर्व मृत ऐतिहासिक व्यक्तियों की प्रेतात्माओं से साक्षात्कार करते रहते थे।

एक बार मैंने विलियम ब्लैक से इस विषय पर लम्बी बातचीत की थी, जो इस प्रकार हैं -

'कभी क्लिओपेट्रा मुझसे बातें करने चली आती है और कभी मार्क ऐन्टोनी।' बात शुरू करते हुए उन्होंने मुझसे कहा था, 'एडवर्ड तृतीय का सूक्ष्म शरीर कई बार मुझसे भेंट करने

आ चुका है। उनके आग्रह करने पर मैंने तीन बैठकों में उनका एक तैल-चित्र भी बनाया था।'

'आपकी इस बात पर अविश्वास करने का कोई कारण मेरे पास नहीं है, मित्रवर, लेकिन ...'

'कहो, कहो, रुक क्यों गये ?'

'कभी-कभी मुझे संदेह होने लगता है कि कहीं आप निरे दृष्टि-भ्रम के शिकार तो नहीं हैं ? क्षमा कीजिएगा, मेरा ऐसा कहना आपको बुरा न लगे।'

ब्लैक ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, 'नहीं-नहीं, मैं तुम्हारी यह बात सुनकर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा ऐसा सन्देह करना स्वाभाविक ही है। प्रेतात्माओं के दर्शन की जो घटनाएँ मैंने तुम्हें सुनायी है, वे सचमुच घटी थीं। प्रेतात्माओं से हुए अपने साक्षात्कारों में मेरा दृढ़ विश्वास है। इसमें मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है।'

'ये प्रेतात्माएँ आपके पास कितने समय तक रहती हैं ?' मैंने पूछा।

'यह मेरी और उनकी सम्मिलित इच्छा पर निर्भर है। कभी ये मुलाकातें संक्षिप्त होती हैं और कभी लम्बी खिंच जाती हैं।'

'क्या मैं भी किसी प्रेतात्मा से भेंट कर सकता हूँ ?' मैंने फिर पूछा। ब्लैक कुछ सोचने लगे। फिर कुछ क्षणों के बाद वे बोले, 'तुम उन क्षणों में मेरे साथ रह सकते हो, पर तुम प्रेतात्माओं के सूक्ष्म शरीरों को देख पाओगे या नहीं, यह मैं नहीं बता सकता —'

'मुझे उन क्षणों में अपने साथ रहने की इजाजत तो दीजिए। आगे जो होगा, देखा जाएगा।'

'अच्छी बात है। तुम आज रात को ही आ सकते हो। हो सकता है कि आज ही कोई परिचित या अपरिचित प्रेतात्मा मुझसे मिलने के लिए आए। वैसे इन प्रेतात्माओं के 'मूड' के बारे में पहले से कुछ कहना कठिन है।'

'धन्यवाद ! मैं आज मध्य रात्रि से पूर्व हाजिर हो जाऊँगा।'

उस दिन मैं आधी रात से आधा घण्टा पहले महाकवि ब्लैक के निवास पर पहुँच गया। मेरे पहुँचने से पूर्व, ब्लैक ने एक असाधारण कलाकृति का सृजन किया था। उसे मुझे दिखाने के बाद वे उसी के बारे में मुझसे बातें करने लगे।

फिर बातों के बीच वे सहसा चिल्लाकर बोले, 'लो, एडवर्ड तृतीय की प्रेतात्मा आ गयी।'

'कहाँ हैं ?' मैंने चौंककर पूछा। क्योंकि मुझे कोई दिखायी नहीं दे रहा था। किसी 'आने' का कोई आभास भी नहीं मिला था।

'एडवर्ड तृतीय का सूक्ष्म शरीर मेज के निकट ही खड़ा है। तुम्हें चूँकि प्रेतात्माओं के दर्शन का अभ्यास नहीं है, इसलिए तुम उसे देख नहीं पा रहे हो।'

'क्या आप एडवर्ड तृतीय की प्रेतात्मा से पहले भी भेंट कर चुके हैं ?'

‘नहीं ! ये पहली बार मुझसे मिलने आये हैं।’

‘आपने इन्हें कैसें पहचाना ?’

‘मैंने नहीं, मेरी आत्मा ने इन्हें पहचाना है। कैसे ? इसका उत्तर देना मेरे लिए सम्भव नहीं है।’

‘वे कैसे दिखायी पड़ रहे हैं ?’

‘एकदम शांत और सन्तुष्ट दिखायी पड़ रहे हैं,’ महाकवि ब्लैक ने मेज के पार कहीं देखते हुए कहा, ‘उनका मुख पीला होते हुए भी ओज और दिव्य भाव से ओत-प्रोत है।’

इसके बाद कुछ देर तक ब्लैक एडवर्ड तृतीय की प्रेतात्मा से बातें करते रहे। ब्लैक मौन रहकर ही किसी सूक्ष्म माध्यम से अनुभूति के रूप में ’बातें’ कर रहे थे। आत्माओं से बातचीत के लिए हमारी भाषा निरर्थक सिद्ध होती है।

जब मुझे आभास हुआ कि ब्लैक और एडवर्ड तृतीय की ‘बातचीत’ में एक अंतराल आया है, तब मैंने साहस बटोरकर उनसे पूछा, ‘क्या आप एडवर्ड महोदय से मेरी ओर से एक प्रश्न पूछ सकते हैं ?

‘पहले मुझे प्रश्न तो बताओ।’

‘आप उनसे पूछिए कि वे जब जीवित थे, तब उन्होंने जो हत्याकाण्ड करवाये थे, क्या उनके बारे में सोचकर आज उन्हें ग्लानि नहीं होती ? क्या अब भी वे उन्हें उचित मानते हैं ?’

‘तुम मुझे प्रश्न बता रहे थे, तभी एडवर्ड ने उसे ’सुन’ लिया था। अब उनका उत्तर सुनो।’ ब्लैक ने मुझे बताया।

तब कुछ क्षण चुप रहकर ब्लैक ने कहा, ‘सम्राट कहते हैं कि उनके आदेशों के कारण लगभग पाँच हजार व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ा था। राजनीति में ऐसी हत्याएँ प्राय: अनिवार्य होती हैं। इसके अलावा, उनका कहना है कि हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि मृत्यु में शरीर का ही नाश होता है, आत्मा का नहीं। आत्मा अमर है। सम्राट के कथनानुसार, उन पांच हजार व्यक्तियों को उनका आभार मानना चाहिए कि उनके कारण उन्हें देह के बंधन से मुक्ति मिली।’

सम्राट् के विचार सुनकर मुझे लगा कि वे कितने क्रूर और स्वार्थी थे। मैंने ब्लैक से कहा, ‘सम्राट के ये विचार जानकर मुझे उनसे घृणा हो गयी है।’

ब्लैक ने हाथ के इशारे से मुझे चुप करते हुए कहा, ’बस यस ! अब सम्राट् के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से न निकालना, नहीं तो वे तुमसे अप्रसन्न होकर चले जाएँगे। देखो, इस समय भी वे तुम्हें रोषपूर्ण मुद्रा में घूर रहे हैं।’

‘जैसी आपकी इच्छा। मैं अब इनके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहूँगा।’

‘धन्यवाद ! अब मुझे उनका रेखाचित्र पूरा करने का अवसर मिल जाएगा।’

कुछ दिन बाद मैं फिर एक मध्य रात्रि में महाकवि ब्लैक से भेंट करने गया। उस रात इतिहास-प्रसिद्ध सेमिरामिस उनसे भेंट करने आये थे। मेरे सामने वे लगभग आधा घण्टा तक उनसे ’बातें’ करते रहे।

उसी रात ब्लैक ने मुझे उन रेखाचित्रों का संग्रह दिखाया, जिन्हें उन्होंने अनेक प्रख्यात व्यक्तियों के प्रेतों से अपने स्टूडियो के बहुकोणीय बिल्लोरी शीशों के पीछे से भेंट के दौरान चित्रित किये थे।

ब्लैक के निधन के बाद मैं कई बार उनकी विधवा कैथरीन से मिला था। उन्होंने मुझे बताया कि मृत्यु के बाद कई बार ब्लैक मध्य रात्रि में उनसे मिलने आ चुके थे।

मैंने श्रीमती ब्लैक से पूछा, ’वे कितने समय तक आपके पास रहते हैं ?’

‘एक घण्टे से लेकर दो-तीन घण्टे तक। उनकी मृत्यु के बाद उनके सूक्ष्म शरीर से होने वाली ये मुलाकातें मुझे बड़ा सुख और सुकून प्रदान करती हैं। जीवितावस्था में वे जैसे अपनी प्रिय कुर्सी पर बैठकर मुझसे बातें किया करते थे, उसी प्रकार अब भी उसी कुर्सी पर बैठकर बातें करते हैं।” ’

‘बातों के दौरान आपने उनसे कोई ऐसी बात भी सुनी, जो आपको विशेष महत्वपूर्ण लगी हो ?

‘हाँ ! उन्होंने मुझे बताया था कि मैं उनके रेखाचित्रों को किस व्यक्ति को किस दर से बेचकर अधिकाधिक धनराशि प्राप्त कर सकती हूँ।’

‘क्या आपको लगता है कि उनका सूक्ष्म शरीर आपसे मिलने के लिए भविष्य में भी आता रहेगा ?’ मैंने फिर पूछा।

‘हाँ, मुझे पूरा विश्वास है कि जब तक मैं जीवित हूँ, उनकी सूक्ष्म देह उपस्थित होकर सदा मेरा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। जब से उनकी प्रेतात्मा मुझसे मिलने के लिए आने लगी है, तब से मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं उनके परामर्श के बिना कोई काम नहीं करूँगी। मैं हर रात उनसे भेंट करने के लिए प्रस्तुत रहती हूँ।’

अध्याय १८
क्या वह प्रेतनी थी ?

अशरीरी आत्माओं द्वारा अलौकिक ढंग से काम लिये जा सकते हैं। जटिल कामों में उनसे भरपूर सहायता भी ली जा सकती है। मगर यह सब तभी संभव है जबकि उन्हें किसी विशेष तांत्रिक क्रिया द्वारा अपने वश में किया गया हो। और ऐसा मैंने कभी नहीं किया। क्योंकि एक बार भी उनके चंगुल में जो फँसा भले ही वह उच्चकोटि की आत्मा क्यों न हो

फिर उसका उद्धार नहीं। सम्पूर्ण जीवन नारकीय हो जाता है, हमेशा-हमेशा के लिये अशांति से भर जाता है मन। हमेशा विकल रहने लगता है चित्त। हर समय उस व्यक्ति के चारों तरफ मँडराती रहती हैं आत्मायें, और उसके माध्यम से अपनी अतृप्त कामनाओं और वासनाओं को पूरी करने की कोशिशें किया करती हैं। तंत्र बहुत ऊँची विद्या है। इसकी साधना विरला ही कोई कर पाता है। तांत्रिक साधना के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है। प्रगट रूप में जो लोग अपने को कहते हैं वास्तव में वे तांत्रिक नहीं हैं और न उसके चमत्कारों का संबंध ही तंत्र से है। सच तो यह है कि उनके अर्थों में इन चमत्कारों के माध्यम होती हैं वे अतृप्त आत्मायें जिनको वे वश में किये होते हैं। मगर जैसा कि बतला चुका हूँ - ऐसे लोगों का जीवन बड़ा दारुण होता है। हमेशा अशांति से भरा रहता है उनका मन। मृत्यु काफी कष्टमयी होती है। मरने के बाद अधोगति को प्राप्त होते हैं ऐसे लोग।

यह निर्विवाद सत्य है कि जहाँ प्रेतात्माओं अथवा अशरीरी आत्माओं पर शोध और खोज, चिन्तन-मनन एवं परिशीलन होता है वहाँ निम्न और उच्च से उच्च कोटि की आत्मायें अपने अस्तित्व का बोध कराने के लिए जहाँ एक ओर लालायित रहती हैं वहीं दूसरी ओर अपने विषय में और अपने जीवन के संबंध में बतलाने के लिये भी व्यग्र रहती हैं। निश्चित रूप से मेरे साथ ऐसा ही होता आया है। उस समय मेरी यह धारणा और भी पक्की हो गई जिस समय पहली बार मैंने प्रेत-विद्या पर खोज करने की दिशा में कदम उठाया था। प्रेत-विद्या सम्बन्धित तीन से चार अलभ्य और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें मेरे हाथ लग गयी थीं। उनको लेकर मैं एकान्त में पढ़ा करता था। मेरे पढ़ने का समय होता था सायंकाल और स्थान होता था काशी के चेतसिंहघाट की सुनसान सीढ़ियाँ। नित्य की भाँति उस दिन भी पढ़ने में तल्लीन था मैं। मृत्यु के समय कैसा अनुभव होता है ? और जब मृत्यु हो जाती है तब कैसा लगता है ? क्या मरने के बाद भावनाओं, विचारों और मानसिक स्थितियों में अन्तर पड़ता है ? उस समय इन्हीं विषयों को लेकर चिन्तन कर रहा था मैं। उस प्राचीन पुस्तक में इनके संबंध में विशद् वर्णन किया गया था।

किसी के सीढ़ियाँ चढ़ने की आहट से एकाएक मेरी निगाह ऊपर उठ गई। देखा, साँझ की स्याह कालिमा को चीरती हुयी एक श्वेतवसना युवती सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मेरी ही ओर बढ़ रही थी। दूसरे क्षण वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी मुस्कराती हुई। मैं भौंचक्का सा उसकी ओर देखने लगा। उसने निस्संकोच भाव से मेरा हाथ पकड़ कर इसी तरह मुस्कराते हुये कहा - आपने शायद मुझे नहीं पहचाना, मैं कल्याणी ! मैंने इसी साल बसन्त महिला कॉलेज में दाखिला लिया है। आपने ही इस योग्य बनाया कि मैं आज एम०ए० कर रही हूँ वर्ना ... किंकर्तव्यविमूढ़ चौक पड़ा मैं। किसी प्रकार अपने को सँभाल कर बोला - क्या तुम पंडित राधेश्याम त्रिपाठी की लड़की हो ? हाँ ! अब पहचाना आपने, अब ठठाकर हँसते हुये बोली वह ! अभी भी वह मेरा हाथ पकड़े हुये थी। बड़ा शीतल लग रहा था, उसका स्पर्श। दस साल पहले कल्याणी को पढ़ाता था मैं ! पंडित राधेश्याम जी नगवा मुहल्ले में रहते थे। कल्याणी के जन्म के दो वर्ष बाद पत्नी का देहान्त हो गया था। कल्याणी ही एकमात्र सन्तान थी त्रिपाठी जी की। दो-चार घरों की यजमानी थी। उसी से चलती थी उनकी

गृहस्थी। स्वभाव के सरल मृदु थे वह। मुझसे अकस्मात परिचय हो गया था। त्रिपाठी जी का पहली बार में ही उनकी दयनीय दशा देखकर द्रवित हो गया था मेरा मन। कल्याणी उस समय पन्द्रह वर्ष की थी और हाईस्कूल की परीक्षा दे रही थी। त्रिपाठी जी ने जब विनम्र स्वर में कल्याणी की सहायता करने की याचना की तो मैं उनके अनुरोध को टाल न सका। दूसरे दिन से ही पढ़ाने जाने लगा मैं। कल्याणी काफी मेधावी थी। लगन भी थी उसमें। उसके परिश्रम और मेरे सहयोग का परिणाम अनुकूल हुआ। कल्याणी ने प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। दो महीने बाद जुलाई में अहमदाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर मेरी नियुक्ति हो गयी।

जिस दिन मैं अहमदाबाद के लिये रवाना होने वाला था कल्याणी मुझसे मिलने आयी थी उस दिन। उदास आँखों से मेरी ओर देखती हुई बोली- भाई साहब ! जा रहे हैं आप ? हाँ कल्याणी ! मैंने भी उत्तर दिया। कब आयेंगे अब देखो। दीवाली की छुट्टी में आने की कोशिश करूँगा मुझे आशीर्वाद दीजिए आप ! आपके जाने के बाद आपका आशीर्वाद ही मुझे प्रेरणा देता रहेगा आगे बढ़ने के लिये। जब मैंने कल्याणी के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया तो उसकी उदास आँखें भर आयीं रूँधे हुये कण्ठ से बोली - अपना समाचार देते रहेंगे न आप ? हाँ - क्यों नहीं बराबर पत्र लिखूँगा तुमको।

दीवाली पर लौट न सका। जब गर्मी की छुट्टी में बनारस आया तो कल्याणी से मिलने गया। मगर जब घर पहुँचा तो दरवाजा बन्द था। पता चला कि कल्याणी की शादी हो गयी। ससुराल में है वह। त्रिपाठी जी अब अपने गाँव में रहते हैं। कभीकदा बनारस आते हैं। पूरे दस साल का अन्तराल और उसके बाद इस प्रकार अचानक चेतसिंह घाट पर कल्याणी से भेंट। मेरे बगल में बिल्कुल सट कर बैठ गयी वह। कार्तिक का महीना था। हवा में सिहरन थी। मगर कल्याणी के शारीरिक स्पर्श से भर गया उत्ताप से मेरा शरीर — इस प्रकार उसका बैठना विचित्र लगा। मैंने झट से अपना हाथ खींचा और थोड़ा अलग हट गया। फिर सूखे स्वर में बोला किस विषय में एम० ए० कर रही हो ?

'दर्शनशास्त्र में।'

बड़ा जटिल विषय है।

है तो, मगर आप थोड़ी सी मदद कर देंगे तो वह जटिलता दूर हो जायेगी और मुझे अच्छे नम्बर मिल जायेंगे। ठीक है, पढ़ा दिया करूँगा मैं। चले आया करना मेरे यहाँ। दोपहर के बाद खाली रहता हूँ। तीन बजे का समय ठीक रहेगा।

मेरा आना उचित न होगा आपके यहाँ, कल्याणी ने कहा, आप ही थोड़ा कष्ट कर चले आया करिये मेरे घर पर ! पिताजी हैं न ? नहीं ! फिर आकाश की ओर देखती हुयी बोली वह, उनका देहान्त हो गया चार साल पहले। पति कहाँ हैं ? यह प्रश्न सुनकर ठठा कर हँस पड़ी वह, और उसके दूध जैसे दाँत चमक उठे। न जाने क्यों चौंक गया मैं। मेरी नजरें कल्याणी के दाँतों से फिसल कर उसकी नजरों से जा मिलीं। कल्याणी की आँखों में गजब की चमक थी। उसके खुले बाल हवा में मंद-मंद झोंकों के साथ हिल रहे थे।

उसके चेहरे पर गजब की शोखी थी। पन्द्रह वर्ष की किशोरी अब मेरे सामने पच्चीस वर्ष की पूर्ण युवती के रूप में थी। मगर उसे देख कर किसी प्रकार की दूषित भावना या कामना जागृत नहीं हुई मेरे मन में। तुमने अपने पति के बारे में नहीं बतलाया कल्याणी, मैंने पुनः पूछा। इस बार कल्याणी गम्भीर हो गयी। थोड़ी देर बाद भी गले से बोली - कत्ल के मामले में आजीवन कारावास की सजा काट रहे हैं वह ! यह सुनकर एकबारगी चौंक पड़ा मैं — किसका कत्ल किया उसने ? क्यों किया 'यह सब जानकर क्या करेंगे आप ?' डूबते स्वर में बोली कल्याणी 'चलिये ! अब अँधेरा हो गया' यह कहकर मेरा हाथ पकड़ कर खींचा उसने।

पिता नहीं हैं, पति जेल में है। अनाथ है कल्याणी न जाने किसके सहारे पढ़ रही है वह। शायद पढ़कर अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है। यह सब सोचकर मन न जाने कैसा हो गया मेरा। फिर कुछ पूछा न गया मुझसे। रास्ते में स्वयं कल्याणी ने ही सब कुछ बतलाया। तीन-चार ट्यूशनें करती है वह। उसी से उसका और पढ़ाई का खर्च निकल जाता है। यह सब सुनकर एकबारगी मेरा मन द्रवित हो उठा। हौले से कहा मैंने, अपने को अब अनाथ और निस्सहाय मत समझो कल्याणी। मुझसे जो भी होगा वह करूँगा मैं तुम्हारे लिये। एम०ए० कर लो, कहीं कोई नौकरी मिल ही जायेगी। मेरी बात सुनकर कल्याणी कुछ बोली नहीं। मैं उसको मकान तक पहुँचा कर वापस लौट आया। दूसरे ही दिन से मैं पढ़ाने जाने लगा। कल्याणी और उसकी प्रतिभा में कमी नहीं आयी थी। दर्शन का जो सिद्धान्त मैं समझाता उसकी वह तुरन्त व्याख्या कर देती। स्तब्ध रह जाता मैं। उस समय तो मैं एकबारगी दंग रह गया जबकि कल्याणी ने मृत्योपरान्त जीवात्मा की मतिगति से सम्बन्धित योगवाशिष्ठ के एक कठिन श्लोक की विस्तृत व्याख्या की। ऐसा लगा मानो योगवाशिष्ट का दर्शन उसके जीवन में उतर गया हो। एक बार मैंने बातों के सिलसिले में कहा - कल्याणी, तुमको एकाकीपन खलता नहीं। इस पर वह गम्भीर होकर बोली - मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है। परिवार, सगे-संबंधी आदि क्या चीजें हैं ? छोटी सी जिन्दगी में जिससे मधुर संबंध स्थापित हो जाय वही अपना है। अवाक् रह गया उसकी यह बात सुनकर मैं। धीरे-धीरे एक महीने का समय निकल गया। कड़ाके की सर्दी पड़ने लगी थी। उस दिन बातों का सिलसिला ऐसा चल निकला कि रात के दस बज गये। जल्दी-जल्दी घर पहुँचा। घर पहुँचने पर ध्यान आया कि आलमारी की चाभी तो कल्याणी के मेज पर ही छोड़ आया था। आलमारी में रुपये-पैसे के अलावा आवश्यक वस्तुएँ भी थीं। एक बार मन में आया कि जाकर चाभी ले आऊँ लेकिन फिर सोचा कि कल्याणी के मकान के आस-पास के लोग भला क्या सोचेंगे। हो सकता है गलत अर्थ लगायें। इतनी रात को कल्याणी के यहाँ जाना ठीक नहीं होगा। दूसरे दिन सवेरे मैं कल्याणी के घर पहुँचा। उसके कमरे के दरवाजे से मैंने आवाज दी। पर कोई जवाब नहीं मिला। फिर मैं मकान के मुख्य द्वार पर गया। वहाँ अन्दर खट-पट हो रही थी। मैंने आवाज दी, तो कुछ देर बाद दरवाजा खुला और एक बूढ़ा-सा व्यक्ति प्रकट हुआ। किससे काम है ? बूढ़े ने पूछा। कल्याणी से। मैंने बताया। कल्याणी ? बूढ़ा चौंक कर बोला - मैं तो यहाँ अकेले रहता हूँ यहाँ कोई कल्याणी नहीं रहती। आप गलत मकान में आ गये हैं। एक क्षण को मुझको भी लगा कि मैं गलत मकान में आ गया था। लेकिन मैंने चारों तरफ नजर घुमा कर देखा तो मकान वहीं

था। मैं फिर बूढ़े से बोला - देखिये, मकान तो यही है, मकान यही है, तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ ? इस बार बूढ़ा झुंझला उठा। लेकिन मैं प्राय: रोज साँझ के समय कल्याणी को पढ़ाने आता हूँ। कल भी साँझ को आया हूँ। उसके कमरे की मेज पर मैं अपनी आलमारी की चाभी छोड़ गया था। आप जरा उस कमरे में जाकर देखिये तो, मेज पर चाभी पड़ी है या नहीं।

किस कमरे में ? मैंने उँगली के इशारे से सामने वाला कमरा बतला दिया जिसमें कल्याणी को पढ़ाता था मैं। बूढ़ा मेरी ओर विचित्र नजरों से एक बार देखा फिर बोला 'भैया' उस कमरे में अब कोई रहता ही नहीं। काफी अरसे से यह कमरा बन्द पड़ा है। सुना है कि पहले कोई त्रिपाठी जी रहते थे। उनके गत हो जाने पर कुछ दिनों तक उनकी लड़की और दामाद यहाँ रहे। बाद में वे दोनों कहाँ चले गये यह किसी को मालूम नहीं। इतना कह कर बूढ़ा खाँसने लगा। खाँसी जब बन्द हुई तो हाँफते हुये आगे कहने लगा - मैं तीन-चार महीने से यहाँ हूँ। मेरे ख्याल में तो भैया सारे घर में अँधेरा रहता है - सिर्फ उसी कमरे में रोशनी होती है। जब से आया हूँ तब से यही देख रहा हूँ। आपको अवश्य गलतफहमी हुयी है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है, कहते हुये बूढ़े ने दरवाजा बन्द करना चाहा। नहीं ! आप उस कमरे को खोलकर बस देखिये ! मुझे विश्वास है कि मेरी चाबी जरूर वहाँ होगी - मैंने अनुरोध भरे स्वर में कहा। अच्छा, बूढ़ा बोला - मैं देखता हूँ। काफी कोशिशों के बाद कमरे का जंग लगा ताला खोला जा सका। ताला खोलकर मैंने दरवाजे पर एक धक्का दिया। चरमरा कर खुल गया दरवाजा। मुझको अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। जिस सजे सँवरे कमरे में मैं रोज पढ़ाने आया करता था वह बदबू और अंधकार से भरा हुआ था। चारों तरफ धूल की मोटी पर्तें जमी हुयी थीं। मकड़ी के जाले थे। अचानक एक चमगादड़ फड़फड़ा कर मेरे सिर से टकराता हुआ बाहर निकल गया। सिहर उठा मैं। खड़ा होना मुश्किल हो रहा था। मेज कमरे के बीच में पड़ी थी। उस पर धूल की पर्तें जमी थीं। मेरी चाभी उसके एक कोने पर पड़ी थी। मैं चुपचाप अपनी चाभी उठाकर बाहर निकल आया।

वृद्ध ने कुछ बोलना चाहा, कुछ पूछना चाहा, मगर मैंने मौका नहीं दिया उसको। मस्तिष्क जैसे झनझना रहा था मेरा। वास्तविकता समझते देर न लगी मुझे। अपनी किसी विशेष अतृप्त कामनाओं की पूर्ति के लिए प्रेतात्मायें अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर स्थूल शरीर का निर्माण कर लेती हैं। निश्चय ही कल्याणी को अपनी शिक्षा की अधूरी कामना रही होगी जिसे पूर्ण करने के लिए स्थूल शरीर की रचना कर मुझसे सहयोग लिया था।

एक प्रकार से यह कहानी यहीं समाप्त हो जानी चाहिये मगर नहीं ! मेरा कौतूहल शांत नहीं हुआ था। कल्याणी की कैसे मृत्यु हुयी थी ? उसके पति ने किसका खून किया था? और क्यों किया था? यह सब कुछ जानने के लिए एकबारगी व्यग्र हो उठा मेरा मन। इतनी सुन्दर, सुशील, मेधावी और प्रतिभाशालिनी युवती की मृत्यु मुझे रहस्यमयी लगी। कालीबाड़ी मन्दिर में मेरे एक मित्र रहते थे। नामी तांत्रिक थे वह। नाम था तारानाथ भट्टाचार्य। वे प्रेतात्माओं का आवाहन कर प्रत्यक्ष उनसे बातें किया करते थे। मैंने उनसे सारी बातें बतलाते हुए कल्याणी की आत्मा का आवाह्न करने को कहा। भट्टाचार्य महोदय तुरन्त तैयार हो गये। अमावस्या की रात इस काम के लिये निश्चित हुई। साँझ के समय ही

मैंने आवाहन में लगने वाले तांत्रिक सामानों को कालीबाड़ पहुँचा दिया। रात में लगभग ग्यारह बजे होने वाला था आवाहन।

ठीक समय पर कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया। करीब दो फुट लम्बे चौड़े आईने के सामने घी के चार दीप जला दिये गये। पहले तांत्रिक विधि से पूजा की गयी फिर काले मुर्गे की बलि दी गयी। तारानाथ भट्टाचार्य का चेहरा सुर्ख हो रहा था उस समय। ऐसा लगता था मानो उनकी आँखें बाहर को निकल पड़ेंगी। वे अपलक सामने आईने में घटनाओं को चित्र की तरह देखा जा सकता था। एकाएक आईने में धीरे-धीरे दृश्य उभरने लगे, जिसमें कल्याणी भी थी। इसके बाद लगभग तीस-पैंतीस मिनटों के भीतर जिन घटनाओं को चित्रवत् मैंने देखा, एकबारगी स्तब्ध रह गया।

मेरे सामने कल्याणी की हृदयविदारक हत्या का दृश्य था। उसका पति छुरे से उसका सारा शरीर गोद रहा था। वह छटपटा रही थी, और चिल्ला रही थी, लेकिन वहाँ सुनने वाला कौन था ? अन्त में वह मर गयी। उसके पति ने उसकी लाश को उठाकर आँगन में पहले से ही खोदे गये गड्ढे में डाल कर मिट्टी से बन्द कर दिया उसे। दृश्य बदला, अब मेरे सामने पुलिस थी और कल्याणी का पति था, जिसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ीं थीं। पत्नी के कत्ल के इल्जाम में गिरफ्तार कर लिया गया था उसे।

अध्याय १९
जब पिछले जन्म की प्रेमिका 'माध्यम' बनी
पुनर्जन्म की एक अविश्वसनीय सत्य कथा

निशा से अत्यधिक प्रेम करता था मैं। ग्रेजूएशन कर रही थी वह मेरे साथ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में। सायंकाल गंगा किनारे प्राय: रोज ही मिलते हम दोनों और काफी देर तक करते सीढ़ियों पर बैठ कर प्रेमालाप — निशा को अपनी पत्नी बनाना चाहता था मैं और निशा भी विवाह के लिए तैयार थी। हम दोनों के बीच किसी भी प्रकार की पारिवारिक रुकावट नहीं थी और न तो कोई समस्या ही। बस एम०ए० करना था और उसके बाद करना था विवाह। लेकिन क्या विवाह हो पाया ? नहीं। विवाह का सौभाग्य नहीं लिखा था मेरे भाग्य में। एक मामूली सी बीमारी के कारण काल के मुँह में समा गयी हमेशा-हमेशा के लिए निशा। अवाक् और हतप्रभ-सा देखता मैं उसकी लाश को चिता की आग में धू-धू कर जलती हुई। ऐसा लगा जैसे जलती हुई चिता से उठकर मेरे बगल में आकर खड़ी हो गयी है निशा और धीमे स्वर में मेरे कानों में कह रही है - दुखी मत होओ, निराश और हताश भी मत होओ। मन को शान्त रखो। इस जन्म में शादी न हो सकी और एक दूसरे को न मिल सके, कोई बात नहीं, अगले जन्म में मिलूँगी तुमसे ...।

इसके बाद कई बार सपने में दिखलाई दी निशा। और जब दिखलायी पड़ती तो बस एक ही आश्वासन देती - शीघ्र मिलेंगे हम दोनो ... इन्तजार करो ... भुला मत देना मुझे ...।

‘फिर क्या हुआ ?’ मैंने सहज भाव से तिनकौड़ी महाशय से पूछा।

होगा क्या ? तिनकौड़ी महाशय आगे बतलाने लगे - मैं यह महसूस करता रहा था कि अदृश्य रूप में ही सही, पर वह मेरे आसपास ही कहीं है। बंगाल का प्रसिद्ध चित्रकार हूँ मैं। उसके चिरवियोग के बाद कई बार मैंने उसका चित्र बनाने का प्रयत्न किया। छरहरी काया, साँवली सलोनी, तीखे नैन-नक्श-वाली, कुल मिलाकर असाधारण रूप से सुन्दरी। बस एक ही दोष, दोष था।

‘वह क्या ?’ मैंने पूछा।

उसके चेहरे में उसकी निचली दन्तपंक्ति के सामने एक दाँत नहीं था, इसलिए जब वह हँसती तो थोड़ा मुँह दबाकर हँसती, ताकि वह ऐब कोई देख न सके।

निशा के मरने के बाद अपना दुःख भुलाने के लिए बहुत सारे प्रयत्न किये मैंने, लेकिन असफल रहा। शरीर की भूख नहीं, मन का रीतापन मिटाना चाहता था मैं, जो सम्भव नहीं था। विवाह न करने का निर्णय कर लिया था मैंने और उस निर्णय पर बराबर अटल रहा मैं। इसी तरह एकाकीपन में जीवन गुजार लिया। एक घटना अवश्य घट गयी मेरे सूने जीवन में, पर उसमें कुछ सुनाने लायक नहीं है।

थोड़ा रुककर कुछ सोचते हुए तिनकौड़ी महाशय आगे बोले - निशा ने जो गम दिया था, उसे भुलाने के लिए साधु-सन्तों का सत्संग किया, उनके उपदेश सुने, तीर्थ-यात्रायें की और मन को शान्त करने के लिए बहुत कुछ किया मैंने, लेकिन शर्मा जी, मन को शान्ति नहीं मिली, उसका संताप नहीं मिटा।

धीरे-धीरे बाईस वर्ष का समय व्यतीत हो गया। अब मेरी उम्र पैंतालिस वर्ष की हो चुकी थी। लेकिन इतने समय के बाद भी निशा को भुला न सका था मैं। एक दिन अचानक मेरा परिचय कुछ ऐसे लोगों से हो गया जो विभिन्न तरीकों से मृतात्माओं से सम्पर्क करते थे और करते थे उनका आवाहन — वे लोग मृतात्माओं के संबंध में अच्छा ज्ञान रखते थे — अनुभव भी था उन लोगों को। उनका कहना था कि सभी मृतात्माएँ भूत-प्रेत नहीं होतीं। कुछ उच्च स्तरीय आत्माएँ मनुष्यों की सहायता भी करती हैं। आप डॉ० किल्लर के नाम से परिचित होंगे शायद। हाँ ! वही डॉ० किल्लर - जो परामनोवैज्ञानिक हैं ? जी हाँ। तिनकौड़ी महाशय बोले - एक दिन समाचारपत्र में उनका एक शोध लेख पढ़ा, जिसके अनुसार उन्होंने अशरीरी आत्माओं के सूक्ष्म शरीर का फोटो लेने में सफलता प्राप्त कर ली है। किसी विशेष यंत्र की सहायता से एस्ट्रल के सूक्ष्म कणों से निकलने वाली विद्युत तरंगों की गति घटाकर फोटो लेने की प्रक्रिया अपनायी थी डॉ० किल्लर ने।

उसे देखकर मेरी उत्सुकता बढ़ी, और रुचि भी जगी। मृतात्माओं का आवाहन करने वालों के बीच बैठने लगा मैं। इसलिए कि शायद मेरा सम्पर्क कभी दिवंगत निशा की आत्मा से हो जाय।

एक थे शिशिर बाबू ! उम्र यही होगी साठ के लगभग। मगर शरीर से स्वस्थ थे। हमेशा

प्रसन्न रहते थे। किसी चीज का व्यापार था। सम्पन्न व्यक्ति थे। सन्तान के नाम पर बस एक लड़की थी। जिसका नाम था अनुपमा।

शिशिर बाबू आवाहन कर्ताओं के प्रमुख थे। यह समझ लीजिए मुखिया थे वह मण्डली के। आत्माओं के विषय में उनका अपना ज्ञान था और था अपना अनुभव — ज्ञान और अनुभव उन्हें कहाँ से और कैसे प्राप्त हुआ था, यह अपने आपमें रहस्यमय था। आश्विन का पितृपक्ष था। सेंट्रल एवेन्यू में मिल गये अचानक वह। कहने लगे - अरे भाई, तिनकौड़ी ! आज पितृपक्ष की अमावस्या है न आत्माओं का आवाहन करने के लिए यह मान्यता है कि आज के दिन कभी-कभी ऐसी आत्माएँ भी पृथ्वी पर आ जाती हैं, जिनको संसार छोड़े लम्बा अरसा हो चुका है। आज 'मण्डली' बैठेगी। आप अवश्य आइये। हो सके तो निशा का कोई फोटो भी लेते आइयेगा। यह सुनकर मन में एक विचित्र-सी हलचल मच गयी। सोचने लगा- क्या आज यह सम्भव हो पायेगा जिसकी प्रतीक्षा सालों से कर रहा था मैं ? क्या निशा की आत्मा से सम्पर्क हो सकेगा ? यदि हो गया तो...।

साँझ के समय पहुँच गया मैं शिशिर बाबू के मकान पर ! उनके लम्बे-चौड़े बैठकखाने के बिल्कुल बीच में एक लम्बी-चौड़ी मेज रखी हुई थी। जिसके एक ओर एक सुकोमल लड़की बैठी हुई थी। शिशिर बाबू थोड़ा हँसकर बोले - यह मेरी लड़की है, अनुपमा। आज यही आत्माओं का माध्यम बनेगी !

कुछ समय बाद बैठकखाने की सारी खिड़कियाँ बन्द कर दी गयीं। रोशन-दान खोल दिये गये ताकि ताजी हवा भीतर बराबर आती रहे। मेज के चारों ओर कुल सोलह व्यक्ति बैठे। पहले सारी बत्ती बुझा कर अँधेरा किया गया, फिर दो मिनट बाद कम पावर की हरी बत्ती जला दी गयी। एकाएक सारा वातावरण रहस्यमय हो उठा। सभी मौन साधे अपने-अपने स्थान पर निर्भाव बैठ रहे। मैं कुर्सी खिसका कर अलग बैठ गया।

अनुपमा की आयु बीस से अधिक नहीं थी। गोरा रंग, छरहरा बदन, सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व, एक बार जो देखे तो कुछ देर तक देखता ही रहे। स्वभाव की चंचल थी। रह-रह कर मुस्कराने लगती थी। शिशिर बाबू ने मुझे बतलाया कि इसी साल कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम०ए० किया है बंगला साहित्य में। गाने का भी शौक है। अच्छा गा लेती है। रामकृष्ण के प्रति बहुत लगाव है। मेरे कहने पर कभी-कदा 'माध्यम' बन जाती है। वैसे खुशदिल है अनुपमा, लेकिन कुर्सी पर बैठते ही गुम-सुम-सी हो जाती है। आज़ भी ऐसा ही हुआ है। मेरे विचार से 'माध्यम' ऐसा ही होना चाहिए कि कुर्सी पर बैठते ही अपने अस्तित्व को भूल जाय और आने वाली आत्मा उसमें अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो सके।

बैठकखाने में हरी बत्ती का हल्का प्रकाश फैला हुआ था। अगरबत्तियाँ जलाई गयीं। उनका सुगन्धित धुआँ धीरे-धीरे वातावरण में फैलने लगा। और उसी के साथ वातावरण रहस्यमय हो उठा। अचानक खट्-खट् की आवाज हुई और अनुपमा का सिर सामने को झुक गया। उसके हाथ में पेन्सिल थी और सामने था रखा कोरा कागज। एकाएक पेंसिल वाला दाहिना हाथ थर-थर काँपने लगा। पेंसिल बार-बार मेज से टकरा रही थी जिससे खट्-खट्

की आवाज हो रही थी। दबे स्वर में शिशिर बाबू मुझसे बोले- निशा का फोटो लाये हैं न !

मैंने सिर हिलाकर धीरे से कहा - हाँ !

तो उसे 'माध्यम' के सामने रख दीजिए।

मैंने ऐसा ही किया। अनुपमा का चेहरा उस समय लाल था। आँखें थोड़ी मुँदी हुई थी। हाथ तेजी से थरथरा रहा था, लेकिन सामने फोटो रखते ही थोड़ा कम हो गया। पेंसिल कागज पर जल्दी-जल्दी चलने लगी। मैं और शिशिर बाबू दोनों अनुपमा के बगल में बैठे हुए थे। दोनों आँखें फाड़कर उस हल्की रोशनी में उस कागज की तरफ देख रहे थे। कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों का जाल बिछा था। पर लिखा कुछ नहीं था। अनुपमा का दायाँ हाथ अभी भी काँप रहा था तेजी से। सिर कुछ और झुक गया था सामने। कानों के टाप्स में लगे पीले पत्थर दमक रहे थे। अगरबत्ती के धुएँ से मिली हरी रोशनी में उसका चेहरा पत्थर की मूर्ति की तरह भावशून्य हो गया था।

मैंने सामने की तरफ ताका। शिशिर बाबू अचकचाई दृष्टि से कभी बेटी के चेहरे को तो कभी हाथ को देख रहे थे। सहसा और रहस्यमय हो उठा वातावरण। मेरी आन्तरिक स्थिति विचित्र सी हो रही थी।

'आप कौन है ?' लिख कर अपना नाम बतलाइये। शिशिर बाबू ने कोमल स्वर में कहा।

अनुपमा का हाथ फिर थरथराया। इस बार की थरथराहट पहले से अधिक थी। ऐसा लगा कि आने वाली आत्मा काफी उत्तेजित है।

'क्या आप निशा हैं ?' शिशिर बाबू ने पूछा।

हाथ की थरथराहट बन्द हो गयी। उत्सुक हो उठा मैं। लगा, निशा अपना नाम लिखेगी। लेकिन उसके बाद जो कुछ हुआ उसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। उसके लिए कोई तैयार भी नहीं था। अचानक अनुपमा ने पेंसिल फेंक कर तन कर बैठ गयी कुर्सी पर।

अनुपमा ! आश्चर्य भरे स्वर में शिशिर बाबू ने कहा - क्या बात है ?

अनुपमा की आँखें पूरी तरह खुल गयीं और मेरी तरफ घूर कर इस तरह देखने लगीं कि सिहर उठा मैं। अनुपमा की वह सौम्य और अकलुषित दृष्टि वह नहीं थी, वह तो किसी दूसरी ही नारी की आग उगलती, क्रूर और हिंसक दृष्टि थी - जो मुझ पर पड़ रही थी। आखिर किसकी दृष्टि थी वह ? कौन हो सकती थी वह ?

अनुपमा ! शिशिर बाबू चिल्लाये !

अनुपमा ने उनकी तरफ देखा भी नहीं और अपने स्थान से उठ कर मेरे करीब आई और मुझसे कस कर लिपट गयी, फिर विद्रूप भरे स्वर में कहा - अब कहाँ जाओगे बच कर !

हक्का-बक्का रह गया मैं। चीख भी नहीं निकल सकी। उसी तरह विस्फारित दृष्टि से टुकुर-टुकुर देखता रहा अनुपमा की ओर। जो हिंस्र दृष्टि से अब भी देख रही थी मुझे ! उसकी

आँखों की भाषा समझ नहीं पा रहा था मैं। उस समय मुझे केवल यह अनुभूति हो रही थी कि परलोकगामिनी जो भी आत्मा अनुपमा की पार्थिव नेत्रों से मुझे देख रही है, वह मुझे अवश्य पहचानती है। उस क्षण कोई अलौकिक शक्ति आ गयी थी अनुपमा में। वह आलिंगनबद्ध तरीके से मुझसे लिपटी रही। मेरा सारा शरीर दर्द करने लगा था अब। मैं मंत्र-मुग्ध सा देखता रहा चुपचाप।

तभी शिशिर बाबू उठ खड़े हुए। उन्होंने अनुपमा को दोनों हाथों से झकझोरते हुए कहा - 'यह क्या हो रहा है ?'

अनुपमा ने उनकी ओर बिना देखे उन्हें ऐसा धक्का दिया कि लड़खड़ाकर जमीन पर गिर पड़े वह।

अनुपमा अपलक टकटकी लगाये मुझे देखती रही। उस समय उसकी दृष्टि सर्वथा अमानुषिक थी। दाँत पीस कर तेज आवाज में बोली वह - 'क्यों' आज पहचान नहीं रहे हो मुझे ?... मैं वही आरती हूँ , जिसको तुमने पूरे एक साल, रखैल बना कर रखा था। आज पहचानने में दिक्कत हो रही है। 'आरती ! पन्द्रह साल पहले की स्मृति एकाएक ताजी हो गयी। निशा की सहेली थी आरती। कलकत्ता के हाजरा रोड के किसी कन्या पाठशाला में अध्यापिका थी वह। निशा ने ही परिचय कराया था उससे। अत्यधिक रूपवती और सुन्दर थी वह। खुल कर बातें होती थीं हम दोनों की आपस में। वह मेरे प्रति आकर्षित थी और मैं भी उसके प्रति। लेकिन सीमा के आगे नहीं बढ़े थे हम दोनों। निशा की मृत्यु के बाद कुछ दिनों तक शराब से अपने गम को दूर करने की कोशिश करता रहा। और फिर मन के सूनेपन को दूर करने के लिए आरती का सहारा लिया था। आरती मेरे मन की पीड़ा और व्यथा को समझती थी। वह जानती थी कि शराब उस पीड़ा को और उस व्यथा को कभी भी दूर नहीं कर सकती। शायद यही समझ कर उसने एक दिन अपना तन समर्पित कर दिया मुझको। लेकिन शर्मा जी ! शराब और आरती का यौवन, मेरे मन के रीतेपन को दूर न कर सका। इसी बीच गर्भवती हो गयी आरती। अब मुझसे शादी करने के लिए बार-बार कहने लगी। मैं कोई न कोई बहाना बना कर टाल देता था। निश्चय ही वह मेरे गले को हड्डी बन गयी थी ? पीछा छुड़ाने की भी काफी कोशिश की मैंने, लेकिन सफलता नहीं मिली मुझे। मैं महसूस करने लगा कि अब ज्यादा दिन तक प्रेम का स्वांग नहीं कर पाऊँगा। कोई न कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा मुझे।

इतना कहकर थोड़ी देर चुप रहे तिनकौड़ी बाबू ! शायद कुछ सोच रहे थे वह।

मैं थोड़ा उतावला हो रहा था। तिनकौड़ी बाबू को आगे बोलने के पहले ही बोला- पिण्ड छुड़ाने के लिए कौन सा रास्ता अपनाया आपने ? 'हत्या' का ! धीमे स्वर में बोले तिनकौड़ी बाबू मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए। मेरे साथ आरती भी शराब पीने लगी थी। धीरे-धीरे उसकी आदत बन गयी शराब — कुछ दिन बाद हद से ज्यादा पीने लगी थी। अन्त में होश गँवा बैठती थी। एक रात मैंने उसको खूब शराब पिलायी। मैं पिलाता गया और वह पीती गयी — अन्त में बेहोश हो गयी वह। शराब की बेहोशी बहुत खतरनाक होती है। हार्ट फेल होने की सम्भावना अधिक रहती है। मैं धीरे से गाड़ी निकाली और उसमें आरती

को किसी तरह बिठाया और 'हाईवे' पर छोड़ आया उसे ।

'फिर क्या हुआ ?' थोड़ा व्यग्र होकर पूछा मैंने ।

'होगा क्या ?' विद्रूप स्वर में बोले तिनकौड़ी बाबू - 'किसी ट्रक के नीचे दब कर मर गयी आरती । लाश को पुलिस ले गयी । पोस्टमार्टम के बाद लावारिस समझ कर लाश को पुलिस ने जला दिया नीमतल्लाघाट पर ।'

'तुम' आश्चर्य से कहा मैंने।

हाँ ! मैं तुम्हारी आरती। तुमने यह कैसे समझ लिया कि एक अध्यापिका किसी से प्यार नहीं कर सकती। तुमने धोखा दिया मुझे । लेकिन सच्चे हृदय से तुमसे प्यार करती थी मैं । तुमको खुश रखने के लिए ही शराब पीने लगी थी । यदि यह जानती होती कि तुम्हारा हृदय काला है और तुम प्यार का नाटक कर रहे हो मेरे साथ तो सतर्क हो जाती मैं ! ... ऐसी बात नहीं है आरती, मैंने सफाई देने की कोशिश की, तुम्हारी सहायता से मैं अपने मन का सूनापन दूर करना चाहता था । लेकिन जब ऐसा नहीं हो पाया तो ... तो', का मतलब यह कि तुमने मार डाला मुझे, यही न ? जोर से गरज कर बोली आरती । कमरे में खलबली मच गयी । सभी लोग भयभीत थे कि किसी मुसीबत में फँस गये । केवल शिशिर बाबू स्थिर रहे ।

अनुपमा चीख-चीख कर कह रही थी - पा लिया, पा लिया...अब कोई मुझको इससे अलग नहीं कर सकता । फिर उसने मुझे चूम लिया । मेरा दम घुटने लगा । लेकिन उसकी पकड़ से छूट पाने में मैं असमर्थ था — उस समय उसकी और मेरी ताकत का कोई मुकाबला नहीं था —

अचानक चीख मार कर अनुपमा मुझसे अलग हो गयी और धड़ाम से जमीन पर गिर गयी और बेहोश हो गयी । कमरे में निस्तब्धता छा गयी । शिशिर बाबू पाषाणवत् खड़े सब कुछ देखते रहे । फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ कर अपनी बेटी के करीब पहुँचे । वह छू सकते, इससे पहले उठ कर बैठ गयी वह — इशारे से कहा - उसका स्पर्श न करें ।

शिशिर बाबू ठिठक गये । अब उनकी आँखों में आतंक का भाव उभर आया । आज अनहोनी पर अनहोनी घट रही थी । कारण समझ में नहीं आ रहा था । ऐसा तो कभी नहीं हुआ था ।

अनुपमा की दृष्टि अब भी अस्वाभाविक थी । अब भी वह मुझे ही देख रही थी । बात साफ थी - अब कोई दूसरी आत्मा उसमें प्रवेश कर गयी थी । और वह आत्मा मुझे पहचानती थी । जमीन पर बैठे ही बैठे उसने मेरी तरफ ताक कर कहा - तिन् अरे तिनकौड़ी ! आवाज जानी पहचानी-सी लगी लेकिन एकाएक समझ में न आया कि किसकी थी ।

अनुपमा फिर बोली - तूने मुझे पहचाना नहीं, मैं तेरी माँ हूँ। अच्छा हुआ आज अमावस्या को काली माँ का दर्शन करने के बाद इधर से गुजरी और यहा तमाशा देख लिया मैंने । आरती बहुत दुष्ट आत्मा है । अतृप्त होने के कारण पागल जैसी हो गयी है । मैं न आती तो अनुपमा की काफी दुर्गति करती । अच्छा हुआ भाग गयी । 'माँ' ! मेरे मुँह से निकला । इस

एक शब्द में ही मन को बड़ी शान्ति मिली। बीस साल पहले माँ दिवंगत हुई थी। निश्चय ही अभी तक वह परलोकवास कर रही थी। नया जन्म नहीं मिला था उसे। 'माँ' की आत्मा अपने स्वाभाविक स्वर में बोली - तिन् बेटा ! निशा की आत्मा का आवाहन मत करो ! वह तुमको बहुत चाहती थी। तुम्हारे बिना परलोक में अधिक समय तक न रह सकी और यहाँ चली आयी तुम्हारी खोज में।

मेरी खोज में ?

हाँ बेटा ! तुझे पाने के लिए वह फिर मृत्यु लोक में लौट आयी। प्रेमी-प्रेमिका का मिलने का वादा अगर पक्का होता है तो मरने के बाद दोनों एक दूसरे को खोज ही लेते हैं। निशा अपनी खोज में सफल हो गयी ! माँ जब तुम इतना जानती हो तो यह भी बतला सकती हो कि निशा कहाँ है इस समय ?

अरे पगले ! माँ की आत्मा जरा हँसकर बोली - तेरे बिल्कुल पास। तेरे सामने ही तो है वह।

'मेरे सामने ?'

'हाँ', तू उसे पहचान नहीं पाया! पहचानता भी कैसे, अनुपमा के रूप में उसका जो पुनर्जन्म है। मैं पहचान करा सकती हूँ, पर तब तू उससे शादी करेगा न ? गृहस्थी बसाने की उसकी साध को पूरी करेगा न, बोल ... माँ की ये सारी बातें सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। विस्मय में पड़ गया मैं।

तभी माँ की आत्मा की प्रेरणा पर हँस दी अनुपमा। वह मुँह दबा कर ही हँसी, लेकिन अब पहचान लिया मैंने ! अनुपमा की निचली दन्तपंक्ति के सामने के दो दाँत नहीं थे। अनुपमा के रूप में निशा से मेरी भेंट होगी, इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी मैंने। अनुपमा पूरे पच्चीस साल छोटी थी मुझसे। शादी करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। शिशिर बाबू वहाँ खड़े-खड़े सब सुन रहे थे। पुनर्जन्म पर उनका पूरा विश्वास था। अनुपमा की शादी करने के लिए झटपट तैयार हो गये वह। पहले मुझे संकोच हो रहा था बाद में सोचा, केवल शरीर का ही तो परिवर्तन हुआ है, आत्मा तो निशा की है। उसी महीने बड़े धूमधाम से शादी हो गयी मेरी अनुपमा के साथ। निशा की साध पूरी हो गयी थी। अनुपमा के रूप में निशा को ही देखता था मैं। लेकिन मेरी प्रसन्नता और मेरी खुशी अधिक समय तक न रह सकी। आरती का आक्रमण होने लगा अनुपमा पर। उसके शरीर में प्रवेश कर तरह-तरह का उत्पात मचाने लगी वह। मेरी गृहस्थी चौपट होने लगी। अशान्त हो उठा मेरा जीवन। इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ कि किसी प्रकार इस महाविपत्ति से छुटकारा दिलाये आप। मैं इन दिनों कलकत्ता में रहता था। तिनकौड़ी महाशय का कलकत्ता में होजरी का अच्छा कारोबार था। अपनी उसी समस्या को लेकर मेरे पास आये थे वह। वैसे तो उनकी समस्या काफी जटिल थी, लेकिन, सुलझा दिया मैंने ! आरती की आत्मा हट गयी अनुपमा के शरीर से। धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी वह। अब तो उसे नाती-पोते हो गये हैं। कलकत्ता कभी जाता हूँ तो मुझसे मिलने अवश्य आती है अपने बाल-बच्चों के साथ अनुपमा।

परिशिष्ट

१ आत्मा की वैज्ञानिक खोज

हाल ही में कुछ प्रयोगों से ऐसा लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब वैज्ञानिक आत्माओं को अपनी प्रयोगशाला में कैद करके कृत्रिम आत्माओं का निर्माण भी करने लगेंगे। जी हाँ ! इन दिनों वैज्ञानिकों का एक वर्ग आत्मा के अस्तित्व को जानने, इसके गुण-धर्म को पहचानने और इसके रूप-रंग को परखने में लगा हुआ है।

वास्तव में आत्मा शरीर का वह तत्व है, जो मृत्यु के उपरांत प्रकृति में विलीन हो जाती है। वैसे तो आध्यात्मवादियों के मुख से आत्मा की चर्चा एक आम बात है, किन्तु यदि वैज्ञानिक आत्मा की सत्ता पर सेमिनार आयोजित करने लगे तो यह आश्चर्यजनक ही लगेगा और प्रयोगशालाओं में आत्मा की खोजबीन की जाने लगे, आत्मसत्ता की तस्वीरें उतारने के प्रयास होने लगे, आत्मा को तराजू पर तौलने की कोशिश की जाये तो निश्चय ही यह आश्चर्य की बात है।

अमेरिकी चिकित्सक मैक्डूगल का नाम आत्मा पर शोधकार्य करने वाले वैज्ञानिकों में अग्रणी है। उन्होंने मरणासन्न रोगियों को अपने प्रयोग का आधार बनाया है। उन्होंने मरणासन्न रोगियों को ऐसे बिस्तर पर लिटाए रखा, जिसमें अति संवेदनशील भारसूचक यंत्र लगे हुये थे। ये यंत्र एक ग्राम के हजारवें भाग तक का वजन शुद्धतापूर्वक माप सकते थे। उन्होंने रोगी की साँस से लेकर उनके द्वारा ली जाने वाली औषधि तक के आँकड़े रखे, पर इससे एक आश्चर्यजनक परिणाम सामने आया। रोगी के प्राण निकलते ही भारसूचक यंत्र की सुईयों में हरकत हुई। शरीर का वजन एकदम से एक औंस कम हो गया। इस प्रयोग को कई बार दुहराया गया, पर नतीजा ज्यों का त्यों रहा। हर बार रोगी के शरीर से प्राण निकलते ही उसके शरीर के वजन में एक चौथाई औंस से डेढ़ औंस तक की कमी आ जाती थी।

इसी तरह विलसा फ्लाइड चैंबर के एक कक्ष में कुछ जीवित चूहे और मेढक रखे गये। परीक्षण के दौरान इन्हें बिजली के झटके दे-देकर मौत की गोद में सुला दिया गया। मरने के बाद क्या होता है? जब इसकी फिल्म उतारी गयी तो पाया गया कि मृत प्राणियों की हू-ब-हू आकृति उस रासायनिक कुहरे में तैर रही है। यह आकृति शांत या स्थिर नहीं थी, बल्कि वैसी ही हरकतें कर रहीं थीं, जैसे कि जीवितावस्था में प्राणी किया करते हैं। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों से लेकर चूहे-मेढक आदि जैसे विकसित प्राणियों तक की मरणोत्तर हरकतों के संबंध में इस चैंबर ने इतना प्रमाण तो दे ही दिया है कि खुली आँखों से नहीं दिखने वाले पदार्थ से भी हल्की कोई सत्ता अवश्य विद्यमान रहती है और उसे विशेष पदार्थों से देखा भी जा सकता है, जिसे वैज्ञानिकों ने आत्मा का नाम दिया है।

२ प्रेतनी की इच्छा

यह घटना सन् १९१३ की है। रीवाँ में नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, आई.ए.एस., रिटायर्ड

ट्रांसपोर्ट कमिश्नर अपनी पत्नी, तीन पुत्रों तथा दो पुत्रियों के साथ रहते थे। बड़ी पुत्री सरला का विवाह मथुरा में हुआ। सरला को उसके पिता अन्य बच्चों से अधिक चाहते थे। सरला की उम्र २५ वर्ष की थी। गर्मियों में सरला अपनी ससुराल से अपने पिता के पास रीवाँ आयी। उस समय वह गर्भवती थी। प्रसव के समय उसकी तबीयत अचानक खराब हो गयी। उसे तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। सरला ने एक पुत्र को जन्म दिया। परन्तु दो घण्टे बाद ही जच्चा-बच्चा दोनों की मृत्यु हो गयी।

कुछ दिनों बाद एक रात नरेन्द्रनाथ दालान में सो रहे थे, करीब १२ बजे अचानक उन्हें ऐसा लगा कि कोई उनकी चारपाई हिला रहा है। वे चौंककर उठे, तो उन्होंने देखा, उनकी मृत पुत्री सरला उनके आमने खड़ी थी।

वे अचकचाकर उसकी ओर देख रहे थे, कि उसने कहा, 'पिताजी, आप हमारे साथ चलिए।'

'बेटी, तू क्या कह रही है?' हकलाकर पिता ने कहा, 'अभी तेरे भाई-बहनों की शादी नहीं हुई है। मैं तेरे साथ चलूँगा, तो उनका क्या होगा?'

इतने में नरेन्द्रनाथ जी की पत्नी वहाँ आ गयीं। उन्होंने अपने पति से पूछा, 'आप किससे बातें कर रहे थे? इतनी रात को कौन आया था?'

नरेन्द्रनाथ जी ने पूरी बात अपनी पत्नी को बतायी, तो वे घबरा उठीं।

उसके बाद सरला अक्सर अपने पिता के पास आने लगी। सुबह या शाम, यहाँ तक कि बाथरूम में भी, जब भी वह अपने पिता को अकेले पाती, उनके पास आ जाती और एक ही बात कहती, 'पिताजी, आप हमारे साथ चलिए।'

रात में पुत्र और पत्नी ने नरेन्द्रनाथ जी की चारपाई अपनी चारपाइयों के बीच में लगाना शुरू कर दिया। तब आधी रात को सरला अपने पिताजी के पास न आकर उन्हें दूर से ही पुकारने लगी।

जन्माष्टमी का दिन था। नरेन्द्रनाथ अपने बैठक में बैठे हुए कुछ पढ़ रहे थे कि अचानक किसी की पदचाप ने उनका ध्यान भंग कर दिया। उन्होंने सिर उठाकर दरवाजे की तरफ देखा, तो सरला अपने हाथों में एक थाल लिये हुए उन्हीं की ओर चली आ रही थी। अपने पिता के करीब आकर सरला ने कहा, 'पिताजी, देखिये, मैं आपके लिए खीर बनाकर लायी हूँ। आपको खीर बहुत पसन्द है।'

नरेन्द्रनाथ ने साहस बटोरकर कहा, 'सरला, आखिर तुम क्या चाहती हो?'

'पिताजी, मैं तो आपको देखने आती हूँ। बस, आप मेरे साथ चलिए।' सरला ने कहा।

करीब पन्द्रह दिनों तक यही क्रम चलता रहा। सरला बराबर अपने पिता के पास आती रहीं।

एक दिन सरला अपने प्रयास में सफल हो गयी। वह अपने पिताजी को अपने साथ लिये हुए चली जा रही थी। नरेन्द्रनाथ जी अपनी पुत्री के पीछे-पीछे जैसे नींद में चले जा रहे थे। नदी के किनारे पहुँचकर सरला ने अपने पिता से कहा, 'पिताजी, आप नदी में कूद जाइए।'

पुत्री की यह बात सुनते ही उनकी तंद्रा टूट गयी। वे हाँफते हुए घर वापस आये।

इस घटना से वे और उनके घर वाले भयभीत हो उठे। वे रीवाँ छोड़कर अपने गाँव चले आये। उनका गाँव रीवाँ से चालीस मील दूर था। लेकिन सरला ने वहाँ भी उनका पिंड न छोड़ा।

गाँव में नरेन्द्रनाथ के कुछ हितैषियों ने सरला की आत्मा की शान्ति के लिए पूजा-पाठ कराने की सलाह दी। नरेन्द्रनाथ जी ने पूजा-पाठ कराया, तब जाकर सरला का आना बन्द हो गया। उसकी आत्मा को शान्ति मिल गयी।

३ प्रेत ने दिया सुराग

उस व्यक्ति का नाम मोहन सिंह था। वे अण्डमान में लकड़ी का व्यापार करते थे। अपने कारोबार की स्थापना बहुत अच्छे ढंग से कर चुके थे, फिर भी जाने क्यों अण्डमान में उनका मन नहीं लगता था। अपने मित्रों से बात-बात में घर लौट जाने की इच्छा व्यक्त करते थे। कहाँ पंजाब और कहाँ अण्डमान, दोनों के बीच में दूरी भी काफी है। मोहन सिंह सात-आठ वर्ष पूर्व अण्डमान आये थे। इस बीच वे कभी पंजाब नहीं गये थे। एकमात्र पत्रों का माध्यम छोड़कर अपने देश से संबंध रखने का और कोई जरिया ही नहीं था उनके पास।

उसके बाद मोहन सिंह फिर कभी दिखाई नहीं पड़े। सभी परिचितों ने यही सोचा, वह अपने घर लौट गये होंगे। जाते वक्त किसी से कुछ कहकर भी नहीं गये, यही सबको आश्चर्यजनक लगा।

देखते-देखते उनको गये एक साल बीत गया। मोहन सिंह के कारोबार की देख-रेख सुधीर नाम का एक युवक कर रहा था। यह भी वहीं का एक व्यवसायी था।

एक दिन वहीं का एक व्यक्ति किसी कार्यवश उसी क्षेत्र में कुछ दूर गया था — वहाँ वह गया था, वह जंगली इलाका था। काम खत्म करके जब वह वापस लौट रहा था, तभी एकाएक उसकी नजर एक खेत में पड़ी। उसने देखा, सड़क के पास खेत के किनारे मोहन सिह खड़े हैं।

'अरे, मिस्टर सिंह, आप यहाँ ! मैंने तो सोचा था, आप अपने घर लौट गये हैं, फिर आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?' उसने पूछा।

मोहन सिंह ने उसके प्रश्न का जवाब नहीं दिया। उल्टा, मुँह घुमाकर उसी जोते हुए खेत में

जोरों से भागना शुरू कर दिया। उसके बाद उस व्यक्ति की आँख के सामने ही दस कदम जाते-जाते जादू की भाँति गायब हो गये।

वह व्यक्ति स्तंभित हो गया। वह उस यात्रा से चिंतित मन वापस आया और जान-पहचान के सभी लोगों से सविस्तार इस घटना का जिक्र किया। सुनकर सभी लोग चौंक पड़े। उस व्यक्ति ने घटना को यहीं खत्म नहीं होने दिया। उसने स्थानीय आदिवासियों को लेकर इसका पता लगाना शुरू कर दिया।

आदिवासी लोग अपने नियमानुसार उस मेड़ के किनारे की जगह की परीक्षा करके बोले, 'यहाँ पर किसी विदेशी व्यक्ति का सिर गड़ा हुआ है —'

और मोहन सिंह जिस जगह से अदृश्य हुए थे, उस जगह की भी परीक्षा करने के बाद आदिवासियों ने कहा, 'जमीन के नीचे कोई लेटा हुआ है।'

उन दोनों जगहों को खोदना प्रारंभ किया गया। थोड़ा-सा खोदने के बाद ही उसी जगह विकृत धड़ और सिर दिखाई पड़ा। लाश के साथ कुछ ऐसी चीजें भी पायी गयीं, जिससे बड़ी आसानी से प्रमाणित हो गया कि वह लाश मोहन सिंह की ही थी।

पुलिस ने सुधीर को गिरफ्तार कर लिया। पहले तो उसने किसी भी तरह गुनाह कुबूल नहीं किया। लेकिन जब सुना कि मोहन सिंह ने स्वयं दिखाई देकर अपनी लाश का पता लगाने में सहायता की है, तब उसका सारा प्रतिरोध समाप्त हो गया। उसने गुनाह कुबूल करते हुए कहा, 'मोहन सिंह के कारोबार पर मेरी नजर बहुत दिनों से थी। मोहन सिंह के घर वापस जाने की इच्छा को सुनकर ही मैंने सारा काम समाप्त किया। सोचा, इसी समय मोहन सिंह को गायब कर देने से कोई मुझ पर किसी प्रकार का संदेह नहीं कर सकेगा। हुआ भी ऐसा ही था, किन्तु भाग्य ने मेरा साथ नहीं दिया। इस नाटकीय ढंग से लाश का पता लग जाने के बाद मेरी सारी योजना असफल हो गयी।'

थोड़ी देर बाद सुधीर जेल के अन्दर अपने गुनाहों का एहसास कर रहा था।

४ स्वप्नों में दिवंगतों से मिलन सम्भव

लोग कहते हैं कि जो व्यक्ति इस लोक से चला जाता है, वह फिर नहीं मिलता है। विश्व की प्रख्यात परामनोविज्ञानवेत्ता इलेन बर्टलेट इसे सही नहीं मानती हैं। उनका कहना है कि आप जब चाहें तब अपने परिवार के प्रिय दिवंगत प्राणी से मिल सकते हैं। यह मिलन जाग्रत अवस्था में नहीं, अपितु निद्रा की स्थिति में स्वप्न में ही हो सकता है। स्वप्न में दिवंगत आत्मा से मिलने के लिए इच्छुक व्यक्ति को अपने जागने के समय अपना ध्यान उसमें केन्द्रित करना होगा।

स्वप्न विशेषज्ञा इलेन बर्टलेट यह मानती हैं कि मृत्यु जीवन के एक अन्य समपृष्ठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सूक्ष्म शरीर का विचरण उस विभाजक को पार कर जाता है, जिसके उस पार वे आत्माएँ रहती हैं, जो इस संसार से विदा हो चुकी हैं। यहीं पर सूक्ष्म

शरीर अपनी प्रिय दिवंगत आत्माओं में मिलता है। मृत्यु नये समारम्भ के लिए मार्ग प्रशस्त करती है — स्वयं जीवन मृत्यु की एक प्रक्रिया है।

इलेन पिछले पन्द्रह साल से स्वप्न का अध्ययन कर रही हैं और इस पर तथा अन्य विविध विषयों पर व्याख्यान दे रही हैं। वह स्वप्न को यथार्थगत अनुभूति मानती हैं। उनका कहना है कि स्वप्न में आप किसी मृत व्यक्ति के साथ होते हैं तो सचमुच आप वहीँ होते हैं, जहाँ दिवंगत आत्मा है। आप उस आवरण को पार करके उसके पास चले जाते हैं, जो आपके और उसके बीच में स्थित है।

अनेक व्यक्तियों ने स्वप्न में अपनी दिवंगत पत्नियों के साथ रहने के सुख का अनुभव किया है। ऐसा नहीं हो सकता कि आपसे दिवंगत प्राणी स्वप्न में बार-बार मिलता रहे। यह तभी संभव होगा जबकि दिवंगत आत्मा को यह पता लग जायेगा कि आप उससे मिलने के लिए उत्कंठित हैं। इस उत्कंठा का आभास दिवंगत आत्मा को तभी होगा, जबकि आप अपने मन में उससे मिलने का बार-बार आग्रह करें।

इस सन्दर्भ में इलेन ने एक ऐसी ८० वर्षीया वृद्धा का दृष्टान्त दिया है, जिसका पति पन्द्रह साल पहले मर गया था। उसने जागने की स्थिति में अपने पति का ध्यान किया और अन्तर्मन में बार-बार उससे मिलने का आग्रह किया। उसका आग्रह साकार हुआ और स्वप्न में उसका पति उससे मिला।

स्वप्न विशेषज्ञा इलेन के अनुसार यदि स्वप्न में मृत्यु होती है, तो उससे डरने की आवश्यकता नहीं है। स्वप्न में मृत्यु देखने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि आप मरने जा रहे हैं।

५ मृत्यु के बाद क्या याद आता है ?

मृत्यु और जीवन से संबंधित सभी भाषाओं में अनेक शब्द हैं। उनमें देश, धर्म या जाति का कुछ संबंध नहीं है। जैसे कि 'अंतिम इच्छा', 'डेथविश', 'डेथनेल', 'डेथफोबिया,' 'लाइफलाइफ' 'लाइफलैस' आदि। फिर 'जीवन' का संबंध तो "अस्तित्व" के साथ है और 'मृत्यु' का 'विनाश' के साथ। 'मृत्यु' पर चर्चा करना या मृत्यु को जन्म से ही अस्वीकार करना तथा जीवनकाल में मृत्यु का 'भय' रखना तो प्रचलित मानसिक स्थिति है ही। मृत्यु 'मर्त्य' का स्मरण करवाती है। इस बात की अनुभूति कि 'मेरे साथ भी ऐसा हो सकता है' लगातार मौत का डर बनाए रखता है। डॉक्टर, उपदेश देने वाले तथा 'साधु-महात्मा' भी मृत्यु पर आसानी से नहीं बोलते। जीवन तथा मृत्यु को अधिकतर धर्म तथा अध्यात्म फिर 'पैरा' स्तर तक ही सीमित रखा जाता है। जीवन को भौतिक रूप में तो 'शरीर' ही कहेंगे। परन्तु मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से इन भौतिक रूपों के अतिरिक्त भी 'गति' है जिसका अनुभव भी अनेक 'शरीरों' ने किया है। कई व्यक्तियों को मृत्यु का पूर्व संकेत प्राप्त हो जाता है तथा कई को मृत्यु के समय अनेक 'अदृश्य' अनुभव होते हैं। 'मौत के निकट' का अनुभव 'नियर डेथ' एक्सपीरियंस विश्वभर में अनेक लोगों को हुआ है। स्पष्ट है कि 'शरीर' से पहले भी 'कुछ' है और बाद में भी। हम केवल जो देख रहे हैं वही तो 'जीवन' नहीं है, न

ही वह मृत्यु है। फिर क्या है यह सब ?

विश्वभर के सभी धर्मों ने 'मृत्यु उपरान्त' क्या होगा, इस विषय पर टिप्पणी की हैं। हिन्दू धर्म में 'पुनर्जन्म' निश्चित है, अर्थात् 'लाइफ आफ्टर लाइफ'। इस्लाम में 'मृत्यु' के उपरांत 'जन्नत' या 'दोज़ख़' हैं, पुनर्जन्म नहीं। ईसाई धर्म में 'हेवन' या 'हेल' है परन्तु पुनर्जन्म जैसी कोई चीज नहीं। बौद्ध धर्म में 'रीइनकारनेशन' यानी पुन: अवतरण या पुन: देह धारण होता ही है। परन्तु विश्वभर में जिन लोगों ने 'मृत्यु' को देखा है तथा पुनर्जन्म भी लिया है, वे सभी धर्मों के लोग हैं। अत: इसमें अन्तरात्मा का धर्म से अधिक सम्बन्ध नहीं रहता है। इतना अवश्य है कि जिस सामाजिक या धार्मिक परिप्रेश्य में लोग रहते हैं वे अपने अनुभव भी उसी पृष्ठभूमि में ही व्यक्त करते हैं। ईसाई धर्म में पुन: देह धारण का सिद्धान्त नहीं है परन्तु ईसा मसीह का 'रीजरेक्शन' तो हुआ, पुन: जीवित हुए तथा उन्होंने सलाखों तथा भालों के अपने शरीर में खुदे निशान अपने अनुगामियों को दिखाए। ४५०० वर्ष पूर्व 'ओसीरस' जिसे कि जीवन उपरान्त देवता माना जाता था, उनकी पूजा मिश्र में की जाती थी। रेमसेज द्वितीय ने मिश्र में 'मृत्यु' के बाद मानव अंगों को बड़ी बोतलों में डालकर, शरीर को 'ममी' बनाकर रख दिया। यूरोपीय देशों में भी बाम लगाकर सालों-साल शरीर को सँभाल के रखा जा सकता था। इसी प्रकार अनेक लोगों ने 'मृत्यु' को देखा है। विशेषत: वे व्यक्ति जो अंतिम रूप से बीमार रहते हैं यानी कि 'टर्मीनली सिक' मरीज। जिन व्यक्तियों को डॉक्टर, चिकित्सक रूप से 'मृत' घोषित कर देते हैं, उन्हें 'मृत्यु' से साक्षात्कार होता है। वह समय जब 'शरीर' त्यागा जाता है उस समय 'मैग्नेटिक एनर्जी जोन' में उस व्यक्ति का सम्पर्क बना हुआ है। 'गूढ़ रहस्यमयी' यानी ऑक्कल्ट में विश्वास रखने वालों को अनेक 'जीवन-मृत्यु' दर्शन हुए हैं। हेलन वेमबाच ने अपने शोधकार्य में ७५० लोगों से भेंटवार्ता की तथा 'सम्मोहात्मक चिकित्सा' के द्वारा लोगों को 'जन्म' से पूर्व साक्षात्कार करवाया है।

क्या वास्तव में बिना नींद या स्वप्न के निद्रा हो सकती है ? स्वप्न तब आते हैं जब मस्तिष्क की ओर अधिक रक्त जाता है। अधिकतर जब हल्की नींद आ रही हो, स्वप्न 'लाए' भी जा सकते हैं। अस्तित्व तथा ज्ञान जब अन्तरात्मा में सम्मिलित हो जाए तो 'स्वप्नों' की अनुभूति होती है। वैसे आध्यात्मिक रूप से इस लम्बे ऊर्जा-क्षेत्र में जीवन एक पड़ाव ही है। जीवन के पार अनन्त अनुभव है। संवेदिक अवगमों में जिसमें कि मुख्यतया देखना, सुनना या छूना है, इसके पार है 'मृत्यु' का अनुभव। मृत्यु के उपरांत जो हो रहा है वह 'सेंसरी परसेप्शन' से परे है। जो व्यक्ति 'मृत्यु' के बाद 'वापस' आए हैं उनके अनुभव लगभग एक समान ही पाए जाते हैं। जीवन में अनेक कठिनाइयों तथा विषमताएँ आती हैं। फिर भी हम जीवन से जकड़े रहते हैं तथा मृत्यु से डरते हैं। विनाश में 'कितने लोग मृत हुए' इससे मापा जाता है, इससे नहीं कि बचे हुए व्यक्तियों के दु:ख तथा पीड़ा क्या है ? मृत्यु का डर सबके मनोविज्ञान में 'भयभीत' करने वाला शब्द है। इसी कारण स्वर्ग, नरक या पुनर्जन्म जैसे शब्दों का जन्म भी हुआ। पर क्या हमें मृत्यु का भय है या मृत्यु पूर्व होने वाली पीड़ा या 'खो बैठने' का भय ?

मौत से 'श्वास' या प्राण तो शरीर में नहीं रहते, फिर भी 'वजूद' एक अदृश्य स्वरूप में बना

रहता है। 'कॉस्मिक सेल्फ' में वह मिल जाता है। शरीर से ऊर्जा मुख्यत: हाथों के पंजों से, मस्तिष्क से तथा नाभि के आसपास के स्थानों से निकलती हैं जिसका वस्तु उदाहरण 'गुस्से' को दिया गया है। इसका प्रमाण भी है कि गुस्सा आने पर हाथों के पंजों से लपटे निकलती हैं। गुस्सा आने पर मस्तिष्क पर इतना प्रभाव पड़ता है कि मानसिक संतुलन भी भंग हो जाता है। रोना, उदास हो जाना तथा शरीर का थक जाना कुछ चिह्न हैं। सभी आध्यात्मिक प्रचारक भी यही कहते हैं 'गुस्से' पर विजय पाओ। यह 'स्वयं' का ही विनाश करता है। इसके विपरीत है 'प्रेम'। जब किसी की ओर स्नेहपूर्ण प्रेम-भावनाओं का आदान-प्रदान होता है तो साकार ऊर्जा क्षेत्र की वृद्धि होती है। जीवन में भी सुंदरता प्रतीत होती है। मन प्रसन्न रहता है तथा सुविचार भी आते हैं। इन्हीं विचारों तथा भावनाओं पर ही संसारेतर संबंध 'जीवन-मृत्यु' के बंधनों से पार जा सकते हैं। इस प्रकार जिसे हम जीवन मानते हैं वह मौत हो सकती है, जो 'मृत्यु' है वह वास्तव में जीवन हो सकता है। यही कारण है कि हम एक आकृति सी बना लेते हैं - शिव, राम, कृष्ण, ईसा, दुर्गा या गुरुनानक। किसी ने अपनी आँखों से देखा तो नहीं, फिर भी नाना प्रकार की कृतियाँ विभिन्न स्वरूपों में अपनी धारणा के अनुसार पाई जाती हैं। जिसे सभी लोग स्वीकार कर लेते हैं। इसमें 'समय' समाप्त हो जाता है। जीवन तथा मृत्यु भी सांस्कृतिक संकल्पना है। जब हम इसे एक 'स्वरूप' से परे देखे तो समझ भी सकेंगे, महसूस भी कर सकेंगे। 'उसकी आत्मा को ईश्वर शांति दे', इसका क्या तात्पर्य है, 'आत्मा' क्या है और उसे शांति क्यों चाहिए ? और उस आत्मा को 'शांति' कौन देगा ? और फिर मृत्यु के बाद हमारा तो उस व्यक्ति से 'संबंध' समाप्त है फिर हम उसके लिए क्यों प्रार्थना करते हैं ? इसमें ही कितने परस्पर विरोध हैं क्योंकि हम 'आत्मा' के लिए शुभ माँग रहे हैं, इसका तात्पर्य है कि हमारा सम्बन्ध है उस ऊर्जा से जो विचर रही है ब्रह्माण्ड में।

अमेरिकी लेखक बट्टी एड्डी ने अपनी पुस्तक 'दि लाइफ वियाँड' में अपने मृत्यु के अनुभवों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सभी अनुभवों में एक बात बराबर है कि जिन व्यक्तियों से हमारे भावात्मक प्रेम तथा आत्मीयता के संबंध हैं सभी ने उन्हें ही 'मृत्यु' उपरान्त अनुभवों में देखा है। जिस प्रकार 'जीवनकाल' में भी हम उन्हीं व्यक्तियों के लिए व्याकुल रहते हैं जिनकी ओर प्रेम शुभ भावनाएँ हैं उसी प्रकार मृत्यु उपरांत भी यही श्रृंखला चलती है।

६ प्रेतात्मा की उभरती तस्वीर

अधिकांश धर्मग्रंथों में मोह, आसक्ति, प्रेम आदि के परित्याग की सीख मिलती है। प्राचीन काल के ऋषि और मनीषी इस तथ्य से अवगत थे कि जब कोई व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं और वासनाओं की तृप्ति होने के पहले ही मर जाता है तो अतृप्त रहने के कारण उसकी आत्मा प्रेतयोनि में भटकती रहती है और जिस व्यक्ति अथवा वस्तु से उसका प्रेम अथवा विद्वेष रहता है, उसके इर्द-गिर्द मँडराती रहती है। कभी-कभी तो जीवित व्यक्ति की गहरी संवेदनाएँ भी प्रेतात्मा को उपस्थित होकर अपना परिचय देने के लिए बाध्य करती हैं। इसी प्रकार की एक घटना अमेरिका की एक विधवा महिला श्रीमती एलिस बेल के साथ

घटित हुई थी।

कैलीफोर्निया में रहने वाली श्रीमती बेल शाम को अपने कर्यालय से थकी-माँदी लौटी थी। थोड़ा आराम करने के बाद उन्होंने बेलचा उठाकर अंगीठी में कोयला डालना शुरू किया। वह एक बार ही कोयला डाल पायी थी कि भय से काँपने लगी। बेलचा एकदम नया तथा चमकदार था। यह देखकर वह आश्चर्य में पड़ गयी कि उस पर राबर्ट कैनेडी का प्रतिबिम्ब उभर आया था। प्रतिबिम्ब में उभरा उनका चेहरा, उनकी हत्या के वक्त का था। सिर पीछे की ओर झुका था, आँखें अधखुली थीं और शून्य की ओर देख रहा था। सफेद-स्याह चेहरे पर खून के धब्बे स्पष्ट झलक रहे थे।

श्रीमती बेल की आँखें बेलचे पर टिकी रह गयीं। वे द्रवित हो उठी। सहसा उन्हें महसूस हुआ कि वह कोई स्वप्न देखते-देखते भ्रमित हो गयी है। उन्होंने बेलचे के ऊपर उभरे प्रतिबिम्ब को हाथ से छूकर देखा, तो वह और भी हैरान हो उठीं। ठण्डे मौसम के बाबजूद बेलचे का वह भाग, जिस पर प्रतिबिम्ब उभर आया था, गर्म था जबकि बेलचे के अन्य हिस्से ठण्डे थे।

श्रीमती बेल को अपनी आँखों पर अविश्वास होने लगा। यह सोच कर कि वह राबर्ट कैनेडी की प्रशंसिका रही हैं तथा उनकी हत्या से उन्हें गहरा धक्का लगा था, अत: किसी ने मनोरंजन की नीयत से यह चित्र तो नहीं बना दिया है। उन्होंने बेलचे पर उभरे चित्र को हाथों से रगड़ा, किन्तु उसका अस्तित्व ज्यों का त्यों रहा।

अब श्रीमती बेल ने सोचा कि यदि यह उनकी चेतना का भ्रम है तो यह चित्र किसी अन्य को नजर नहीं आना चाहिए। अपने भ्रम की पुष्टि के लिए वह बेलचे को मुलायम कपड़े में लपेटकर अपने पड़ोसी बोलोन दम्पति के यहाँ पहुँची। उनके समक्ष कपड़े में से निकालकर बेलचे को रखते हुए श्रीमती बेल ने पूछा- 'क्या आपको कुछ दिखाई पड़ रहा है ?' श्रीमती बोलोन ने तेज स्वर में कहा - 'यह तो राबर्ट कैनेडी हैं, जिनकी हत्या कर दी गयी थी।' श्रीमती बोलोन को छूने पर बेलचे में गर्मी का अहसास हुआ, जैसा श्रीमती बेल को हुआ था।

बेलचे पर उभरा चित्र किसी व्यक्ति ने बनाया है अथवा अन्य किसी रहस्यमय कारण से वह चित्र बना है, इस बात के परीक्षण के लिए चित्रकला विशेषज्ञ को बुलवाया गया। बेलचे पर उभरे रंगीन चित्र पर तेजाब आदि डालकर परीक्षण किया गया। रेगमाल रगड़ा गया, किन्तु चित्र पूर्ववत बना रहा। विशेषज्ञ ने घोषणा की कि यह चित्र मानव निर्मित नहीं है, इसके पीछे किसी दैवी शक्ति का हाथ है। उसका प्रमाण बेलचे का गरम होना है।

अगले दिन लोगों की भीड़ बेलचे पर उभरे चित्र को देखने के लिए श्रीमती बेल के निवास के बाहर उमड़ पड़ी। पत्रकार कैमरों के साथ आ धमके। उन्होंने बेलचे पर उभरे चित्र की फोटो लेने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें निराशा ही हुई। फिल्म पर कोई चित्र नहीं आया, साथ ही बेलचे पर उभरा चित्र लगभग २२ घण्टे पश्चात स्वत: लुप्त हो गया। यह घटना आम चर्चा का विषय बनी तथा 'सण्डे मिरर' पत्र ने सबसे पहले इसे प्रकाशित किया।

बाद में प्रख्यात परामनोविज्ञानी डॉक्टर टिमोरी बेल जोन्स ने बेलचे पर उभरे कैनेडी के चित्र के बारे में विस्तृत खोजबीन के बाद उनकी आत्मा की उपस्थिति को स्वीकार करते हुए कहा कि कैनेडी की मृत्यु से श्रीमती बेल को मानसिक आघात लगा था। उनकी संवेदनाओं ने सूक्ष्म आध्यात्मिक वातावरण केन्द्रीभूत होकर उस चित्र की सृष्टि की, जो किसी भी वास्तविक चित्र से कम यथार्थ नहीं था — उनके अनुसार बेलचे का गर्म होना, इस बात का प्रमाण है कि कैनेडी की मृतात्मा द्रवित होकर उक्त चित्र में उपस्थित हो गयी थी। उन्होंने कहा कि इस प्रकार की उष्णता एवं कोमलता से बने प्रतिबिम्ब मानस पटल पर ही प्रतिबिम्बित होते हैं। कैमरे की फिल्म इतनी संवेदनशील नहीं होती कि उस पर इस प्रकार के चित्र उभर सकें।

७ मृत्यु के समय कितनी वेदना

ऐसा विश्वास किया जाता है कि मृत्यु के समय दारुण वेदना होती है। इसकी पुष्टि तभी हो सकती है जब कोई ऐसा व्यक्ति जो मृत्यु से जूझता हुआ उसे परास्त करके लौटा हो और उस समय उसने जो कुछ देखा या महसूस किया, वह उसे बतलाए। आज हम आपको कुछ ऐसे ही व्यक्तियों के सम्बन्ध में बताते हैं जिन्होंने मौत से संघर्ष किया और उस पर विजय पायी।

तो सुनिये अर्नाल्ड सीग्रिट का उसी के शब्दों में : 'मैं और मेरे चार मित्रों ने, जिनमें दो फोटोग्राफर, दो अखबार के रिपोर्टर थे, एल्प्स पहाड़ की कारपोस्टाक नामक चोटी पर चढ़ने का प्रयास किया। हमारी पार्टी में सबसे ऊँचे शिखर पर मैं था। यह चोटी दो हजार फुट से अधिक ऊँची थी, नीचे बहुत गहरा गड्ढा था, एकाएक मेरा पैर फिसल गया और मैं उस गड्ढे में गिरने लगा। मैं जिस चोटी के किनारे पर बैठा था वह मेरे बोझ से अपने मुख्य भाग से बिल्कुल अलग हो गयी। मैंने अपने बचाव की बड़ी चेष्टा की, परन्तु सफल होने के लिए अवसर ही नहीं था। क्षण भर में ही मैं कलाबाजियाँ खाने लगा। उस समय तेज आँधी चल रही थी। अतएव मैं उतनी शीघ्रता से नीचे नहीं आया, इसलिए मुझे सोचने-समझने का कुछ समय मिल गया। धीरे-धीरे मैं नीचे की ओर को जा रहा था। मुझे बड़ा आनन्द आ रहा था, मैं यह जानता था कि मैं मरा नहीं हूँ परन्तु मुझे किंचित मात्र भी भय नहीं था। यदि मुझें अपनी जान बचाने के लिए प्रयत्न करने का अवसर मिल जाता तो मैं भय से जरूर काँप जाता। अब मैं ऐसी स्थिति में था जहाँ किसी तरह की सहायता मिलना मुश्किल था। अत: मुझे चिन्ता की कोई गुंजाइश ही नहीं थी।

एक क्षण के लिए मुझे अपनी बेशकीमती घड़ी का ध्यान आया, जो अब शीघ्र ही चूर-चूर हो जाने वाली थी, यह विचार उठा और वैसे ही शान्त हो गया। मैंने ऊपर की ओर देखा, मेरे साथी आँखें फाड़-फाड़ कर मुझे देख रहे थे। वह तो यह कहिए कि आँधी मुझे पहाड़ से उड़ा लायी थी, इसी से जमीन पर पहुँचने में विलम्ब हो गया था अन्यथा अभी तक तो मुझे मर जाना चाहिए था।

मेरा मस्तिष्क बहुत तेजी से कार्य कर रहा था। मुझे समय का कुछ भी ध्यान नहीं था। हालाँकि वायुमण्डल में मैं कुछ ही क्षण रहा हूँगा। किन्तु मुझे ऐसा लगा था कि जैसे मैं काफी देर से वहाँ हूँ। रह-रह कर मुझे अपनी पत्नी और बच्चों का ख्याल आ रहा था। मैं सोच रहा था कि वे शीघ्र ही मुझसे दूर होते जा रहे हैं, मुझे इसका दुःख तो अवश्य हुआ किन्तु जैसे ही यह याद आया कि मेरी मृत्यु के बाद मेरी पत्नी को बीमे की रकम मिल जायेगी, मुझे हँसी आ गयी। एक महीना पूर्व ही मैंने बीमा कराया था। इसके बाद मुझे परम सुख महसूस होने लगा। अब मैं अपने हाड़-मांस के शरीर का परित्याग करके मुक्तिलोक में प्रविष्ट हो रहा था, झगड़ा-दुःख, दरिद्रता मुझसे दूर होते जा रहे थे, परम सुख का रहस्य मुझे मालूम हो गया, मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि ये सूर्य, पहाड़ और जंगल सब एक मधुर स्वर गा रहे हैं। यह राग मेरे कानों को बड़ा प्रिय लग रहा था। मेरा शरीर किसी से रगड़ खाकर छिल गया, मुझे इसका कुछ भी ध्यान नहीं था। वास्तव में नीचे घिसटते हुए मैं कई नुकीली चट्टानों से टकरा गया था, इससे मेरे शरीर में कई घाव हो गये थे। मैं धीरे-धीरे नीचे की ओर आ रहा था। एकाएक मेरा गिरना रुक गया और मैं एक घने वृक्ष के ऊपर अटक गया।

मेरे साथी मुझे खोजते हुए आये। उनका विश्वास था कि मैं अवश्य मर गया हूँगा, वे मुझे उठाकर एक मकान में ले आये, मुझे एक गर्म बिस्तर पर लिटा दिया गया। मैं जीवित हूँ इसका एक भी चिह्न मुझमें नहीं था, परन्तु मैं स्वयं अच्छी तरह होश में था और परमानन्द की स्थिति में था। मेरे एक परिचित डाक्टर आये, मेरी अच्छी तरह परीक्षा करने के बाद बोले, 'बचने की आशा बहुत कम है।' मुझे स्त्रियों के रोने की आवाज सुनायी दे रही थी। मेरी इच्छा हुई कि मैं उन्हें बता दूँ कि मैं मरना चाहता हूँ, क्योंकि मरना बहुत ही सुखद है।

कुछ दिनों तक मेरी चिकित्सा चलती रही इस दौरान मैं पूर्ण सुख में था। अब मेरा मस्तिष्क शीघ्रता से काम नहीं करता था। अब मुझे पीड़ा और बेचैनी का अनुभव हो रहा था। मुझे ऐसा लगने लगा था कि यदि मैं पुनर्जीवित हो गया तो मुझे घोर कष्ट होगा। अपनी मृत्युकालीन सुखावस्था के समाप्त होने का मुझे प्रायः अफसोस होता था।

लंदन के फायर ब्रिगेड के एक कर्मचारी जेम्स बर्टन ने अपनी घटना सुनाते हुए कहा, 'एक बार लंदन की आलसेगेट रट्रीट के एक मकान में आग लग गयी। मैं आग बुझा रहा था। एक बड़ा शहतीर मेरे ऊपर गिरा और मैं बेहोश हो गया। मैं आठ घण्टे मकान के मलबे में दबा रहा। मजदूरों ने जब मेरे ऊपर से ईंट और मलबा हटाया तो मुझे देख कर वे समझने लगे कि मैं मर गया हूँ। तीन घण्टे तक बराबर मैं मुर्दे की तरह पड़ा रहा। डॉक्टरों ने मुझे देखा और कहने लगे, 'यह अभी मरा नही है।' इसके बाद मुझ पर विशेष ध्यान दिया गया, मैं अच्छा होने लगा।

बर्टन ने कहा - 'मुझे मृत्यु बड़ी आनन्दपूर्ण लग रही थी। इन आठ घण्टों में मुझे परमानन्द महसूस हो रहा था। एक क्षण के लिए मुझे अपनी पत्नी का स्मरण हो आया। किन्तु एक क्षण बाद ही मेरी दशा बदल गयी और मैं फिर आनन्द की गति में बहने लगा। चारों ओर से मधुर स्वर सुनायी दे रहा था। वास्तव में मैं अपने जीवन में कभी इतना सुखी नहीं था।

मुझे कोई कष्ट नहीं था, हालाँकि मैं अपने जिस्म को हिला-डुला नहीं सकता था पर मेरा मस्तिष्क बराबर काम कर रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था मानो मैं गुलाब के फूलों की सेज पर हूँ और अप्सराएँ मेरी सेवा कर रही हैं।

स्विट्जरलैंड के खेलॉन हरमन ने तो अपनी बड़ी अजीब कहानी सुनायी। एक बार वे माउंट सैंट बरनार्ड पर बर्फ के तूफान में भटक गया। खोजने पर उन्हें संज्ञाहीन अवस्था में पाया गया। उन्होंने बताया कि मार्ग की तलाश में घण्टों भटकता रहा। अन्त में निराश होकर बर्फ पर गिर पड़ा। इसके बाद मुझे होश नहीं रहा। मुझे इतना याद है कि मैं अत्यंत सुख महसूस कर रहा था। मेरे हाथ-पैर बर्फ से ठिठुर गये थे। बर्फ का गिरना मुझे बड़ा अच्छा लग रहा था। मैं चाह रहा भी कि कोई विघ्न पैदा न करे और ऐसा ही चलता रहे।

७.१ आश्चर्यजनक दुर्घटना

डॉ० बर्न्ट ने अपनी घटना सुना कर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने बतलाया- सितम्बर के दिन थे। एडिनबरा में मैं बर्फ पर स्केटिंग कर रहा था। दिन में मौसम काफी गर्म हो गया था। कई स्थानों पर बर्फ की तह पिघल कर पतली हो गयी थी। मैं झील के उस भाग पर स्केट कर रहा था जहाँ और कोई नहीं था। मैंने एक हलकी सी आवाज सुनी, मेरे पैर नीचे की ओर धँसने लगे। मैंने अपने बचने के लिए हाथ-पैरों को इधर-उधर मारा किन्तु कुछ न हुआ। मैं एक बड़े छिद्र में घुसा जा रहा था। मैं उस अधजमे पानी के अन्दर समा गया और जब मैं उपर उठा तो अपने को बर्फ की सतह के नीचे पाया। मेरे कपड़े भी जिस्म पर बुरी तरह चिपक गये थे। मेरी शक्ति जवाब दे रही थी। मैं संज्ञाशून्य हुआ जा रहा था। यहाँ तक कि मेरा श्वास भी बन्द हो गया। मेरे पेट और फेफड़ों में पानी भर गया।

जिस समय मैंने अपनी रक्षा के प्रयत्न बन्द कर दिये तो मुझे बड़ा आनन्द आने लगा। मैं जानता था कि मैं अब मर रहा हूँ फिर भी मुझे परमानन्द महसूस हो रहा था। मुझे न ठण्ड लग रही थी और न मेरा दम ही घुट रहा था। मुझे ऐसा लगता था कि मैं एक नर्म काँच पर लेटा हूँ और मेरे चारों ओर मधुर संगीत हो रहा है। ऐसी मीठी ध्वनि मैंने अपने जीवन में कभी नहीं सुनी थी। मुझे ऐसा लगता था मानो कोई उपर की ओर उठा रहा है। मेरे चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश व्याप्त था। वह प्रकाश अलौकिक-सा प्रतीत होता था। संगीत की ध्वनि मन्द पड़ने लगी। नाटक के दृश्यों की भाँति मेरे गत जीवन की घटनाएँ मेरी आँखों के सामने दौड़ने लगे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुझे वही घटनाएँ दिखायी देती थीं जिनमें आनन्द ही आनन्द था। मेरी इच्छा हुई कि अपने मित्रों को देखूँ, तुरन्त ही वे मुझे दिखायी देने लगे। मैंने उनसे खूब बातें कीं। मैंने देखा कि मेरी प्रेयसी मेरे पास खड़ी है और रो रही है। मैंने कहा, 'मैं मर रहा हूँ फिर शीघ्र ही मिलेंगे। अभी थोड़ा समय है।' जीवन में मेरी इच्छा थी कि अपनी प्रेयसी को संसार के सुंदर-सुंदर दृश्य दिखाऊँ। क्षण भर में वे सारे दृश्य भी मेरे और मेरी प्रेयसी के सामने आ गये। मैंने उसे फिर मिलने का आश्वासन दिया।

मेरा ऐसा विश्वास है कि जब मैं पानी के नीचे था तो मेरे शरीर का संबंध मस्तिष्क से टूट गया था। मेरा मस्तिष्क बराबर क्रियाशील बना रहा और शारीरिक कष्टों से दूर रहा और

विचारों से आनन्द ही आनन्द लेता रहा था।

८ मृत्यु न कष्टदायी होती है, न ही भयानक

मृत्यु के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी न होने के कारण यह डरावनी लगती है। मनुष्य चेतन है इसलिए उसका एक स्थिति में बने रहना संभव नहीं है। प्रकृति के सब रूपों में परिवर्तन होता रहता है तो जीवन-यात्रा में भी गतिशीलता क्यों नहीं रहेगी? यात्राक्रम के इन पड़ाव को ही जन्म और मृत्यु कहते हैं। इसमें न तो कुछ अप्रत्याशित है और न आश्चर्यजनक। फिर मरण में भय किस बात का ?

मृत्यु के सम्बन्ध में लोग विचार ही नहीं करते। उसकी संभावनाओं और तैयारी के संदर्भ में उपेक्षा बरतते रहते हैं। फलत: समय आने पर मरण अविज्ञात रहस्य के रूप में सामने जाता है जो भयानक एवं कष्टदायक होता है। अज्ञात की ओर बढ़ने और विचार करने पर ही महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं। इतिहास उन व्यक्तियों, महापुरुषों से भरा है जिन्होंने जनप्रवाह से विपरीत अज्ञात दिशा में बढ़ने का साहस भरा पुरुषार्थ दिखाया है। मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्व को अपनी योग साधनाओं के माध्यम से देखकर आत्मा के अजर-अमर होने की घोषणा की है। इस तथ्य की पुष्टि अब परामनोवैज्ञानिक नवीन शोधों द्वारा हो रही है।

मरणकाल में अनुभूतियों के संबंध में जो संकलन किये गये हैं उनसे पता चलता है कि वह घड़ी न कौतुक-कौतूहल जैसी होती है न कष्टदायक, जिसे असह्य कहा जा सके, सब कुछ उतनी ही सरलता से सम्पन्न हो जाता है जितना कि रात्रि में सोते समय वस्त्रों को उतारना।

ओंटेरियो (कनाडा) केस्टल क्षेत्र मानव-सम्पदा निर्देशक हर्व ग्रिफिन हृदय के मरीज थे। सन् १९७४ में उन्हें मात्र तीन दौरे पड़े और फिर बीस साल से अधिक हृदय के दौरे पड़े। हर बार डॉक्टरों द्वारा मृत घोषित किये जाने पर कुछ मिनटों बाद पुन: जीवित हो उठते थे। डॉक्टरों ने उसे एक अनहोनी घटना के रूप में स्वीकार किया। मृत्यु के पश्चात् उन्हें जो अनुभूति होती थी वह लगभग एक-सी थी। ग्रिफिन का कहना कि 'प्रत्येक मृत्यु के उपरांत उन्होंने अपने को उज्वल तेज प्रकाश से घिरा पाया, जिसमें गर्मी की अनुभूति होती थी। मुझे याद है वह बिजली के कड़कने से निकलने वाले प्रकाश जैसा था। ध्यान से देखने पर पाया कि वह मेरी ओर बढ़ रहा है। मेरे और प्रकाश के बीच में काली छाया थी जो उस तेज प्रकाश से मेरी रक्षा कर रही थी। उस समय हमने स्वयं को एक मुड़े हुए शरीर के रूप में अनुभव किया। इसके साथ ही काली छाया के तैरने की अनुभूति हो रही थी। इतने में पुनः उज्ज्वल प्रकाश मेरी ओर बढ़ी। डर तो नहीं लगा पर रहस्यात्मक अनुभूति से रोमांचित हो उठा। सोच रहा था कि कहीं यह प्रकाश पूरी तरह घेर न ले। ठीक उसी समय हमारा एक पुराना परिचित प्रकट हुआ जो सेलेटी रंग का शर्ट पहने था। अतिनिकट हो सकने के कारण मैं उसको छू सकता था। उसने निडर भाव से कहा 'आ जाओ' सब ठीक है। अचानक मुझे सीने पर तेज आघात महसूस हुआ। आवाज भी सुनाई दी 'क्या मैं बिजली के झटके दूँ,'

दूसरी ओर से आवाज आयी 'नहीं, अभी नहीं। उसकी पलकें झपक रही हैं। इसकी आयु अभी पूरी नहीं हुई। इसे जिन्दा रहना चाहिए।' इसके बाद मैं अस्पताल में पड़े अपने शरीर में वापस आ गया।

हर्व ग्रिफिन की अनुभूति अस्पष्ट होते हुए मरणोत्तर जीवन का ही नहीं, एक ऐसे लोक के अस्तित्व का प्रतिपादन करती है जहाँ स्थूल शरीर की मर्यादाएँ समाप्त हो जाती हैं। मृत्यु को जीवन का अंतिम अतिथि मानकर उसके स्वागत की पूर्व तैयारी की जाती रहे। उसके साथ सुखद प्रयासों के लिए आवश्यक साधन जुटाने में तत्परता बरती जाए तो मरण वैसा ही आनन्ददायक एवं उत्साहवर्धक होगा जैसे सुरम्य स्थानों के लिए नियोजित पर्यटन।

९ प्रेतात्माओं से साक्षात्कार

बीसवीं सदी की शुरुआत के साथ वैज्ञानिकों ने जिस तरह की उपलब्धियाँ प्राप्त करनी शुरू की थीं उससे यह विश्वास हो चला था कि निकट भविष्य में ही वे मृत्यु पर विजय पाकर मरणोत्तर जीवन पर पड़े रहस्य के पर्दे को बेनकाब कर देंगे। मगर बीसवीं सदी का तीन चौथाई से ज्यादा भाग बीत गया, फिर भी मृत्यु और मरणोत्तर जीवन का रहस्य जहाँ का तहाँ बरकरार है। हालाँकि मृत्यु के बाद मानवी चेतना किस रूप में रहती है, इस बारे में अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने अनेक प्रकार से खोजबीन की हैं और अपने निष्कर्ष निकाले हैं। इन अनुसंधानकर्ताओं में बार्थर लाडार्ट, ग्रेस रोशर, एन्थोनी बोर्गिया, एफन हैस्लोफ आदि परामनोवैज्ञानिकों के नाम विशेष रूप से उलेखनीय हैं। इन्होंने अपने अलग-अलग शोधों के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि 'जीवन का अस्तित्व' शरीर, आत्मा और मन इन तीनों से मिलकर होता है। मृत्यु में केवल शरीर ही नष्ट होता है मन और आत्मा नहीं, तथा 'मृत्यु' मात्र आत्मा को शरीर से पृथक करने वाली प्रक्रिया भर है।

इन वैज्ञानिकों ने अपने शोधों के दौरान दिवंगत आत्माओं से सम्पर्क स्थापित किये तथा मरने के बाद पुनः जी उठे लोगों से साक्षात्कार किये। 'वियोन्ड दि होराइजन' नामक पुस्तक की लेखिका ग्रेस रोशर को गोर्डन नामक एक व्यक्ति की आत्मा ने अपने अनुभव सुनायें। जिन्हें उन्होंने अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में गोर्डन की आत्मा से हुए साक्षात्कार का विवरण इस तरह प्रस्तुत किया गया है-

'वह सितम्बर का महीना था' लंच लेने के पश्चात मैं धूप में बैठी कुछ पत्रों का जवाब लिख रही थी। मैंने एक पत्र का जवाब लिखकर उसे लिफाफे में बन्द किया और पता लिख दिया। मैंने अपने एक हाथ में पेन पकड़ रखा था, जो पैड की ओर झुका था। मैं सोचती जा रही थी और जवाब लिखती जा रही थी। अचानक किसी ने कहा- 'मैडम रोशर ! अपने हाथों को वहीं रहने दो और फिर देखो क्या होता है?' मैं चौकी, फिर सँभली। मेरा पेन बगैर मेरे हाथ हिलाये स्वयं चल रहा था। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि मेरे अन्दर कोई अदृश्य शक्ति विद्यमान है। मेरे हाथों की मदद लिये बगैर पेन में हरकत पैदा कर रही है। धीरे-धीरे कागज पर ये शब्द उभर आये 'स्नेह सहित मैं हूँ गोर्डन !' ये शब्द आपस में मिले हुए थे और लिपि मेरी अपनी लिपि से एकदम भिन्न थी। शब्द बहुत छोटे एवं कुछ गोलाई लिये

हुए थे।

श्रीमती रोशर के मन में यह प्रश्न उठा कि यह कौन लिख रहा है ? गोर्डन है या स्वयं मैं ही लिख रही हूँ? इन प्रश्नों के मन में उठते ही तुरन्त पेन ने लिखना शुरू कर दिया 'मैं हूँ गोर्डन ! गोर्डन !' संभवतया नाम इसलिए दोहराया गया था कि मैं संतुष्ट हो जाऊँ कि लेखक स्वयं गोर्डन ही है, क्योंकि ये सारी बातें मेरे पूर्व अनुभवों से परे की थी। इसलिए इस सम्बन्ध में मैंने कुछ कहना उचित नहीं समझा। गोर्डन से मेरे संबंध बड़े घनिष्ट रहे थे। उसका काफी समय पूर्व देहावसान हो चुका था। इस घटना से मैंने जाना कि वह मुझसे सम्पर्क रखना चाहता है। यह विचार करके मैं कागज का पैड और पेन लेकर बैठ गयी। तुरन्त एक क्षण में गोर्डन ने लिखना शुरू कर दिया। उसने लिखा- 'मैं तुम्हें कुछ लिखना चाहता हूँ, मुझे तुमसे कुछ कहना है।'

इसके बाद गोर्डन की आत्मा ने जो कुछ लिखा, यह सब उसी ढंग का था, जैसा कि जीवनकाल में उसकी मान्यताएँ और आकांक्षाएँ थीं तथा वह ग्रेस रोशर से प्राय: उन मान्यताओं और आकांक्षाओं के संबंध में चर्चा करता था।

कनाडा की सुप्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिका मिसेज जेन शेरवुड की पुस्तक 'पोस्टमार्टम जनरल' प्रकाशन के बाद काफी चर्चित हुई थी। उन्होंने उस पुस्तक में एक ऐसे व्यक्ति के जीवनक्रम तथा मरणोपरान्त उसकी प्रेतात्मा द्वारा दिये गये विवरणों को संकलित किया। व्यक्ति का नाम था 'स्काट'। वह बड़ा ही दुस्साहसी व्यक्ति था। उसकी मृत्यु मोटर साइकिल से दुर्गम पहाड़ी की खौफनाक यात्रा के दौरान हो गयी थी। जेन शेरवुड ने प्रेतविद्या विशारदों के साथ प्रेतात्माओं का आह्वान किया, तो स्काट की आत्मा ने उपस्थित होकर 'दुर्घटना के समय मुझे कोई भी अनुभव नहीं हुआ। बाद में मैंने अपने को ऐसे संसार में पाया जहाँ न प्रकाश था और न ही अँधेरा। कुछ समय के लिए मैंने अपने को सचेत पाया, बाद में पुन: अचेतना भी छा गयी। फिर वह कब टूटी मुझे मालूम नहीं। जब होश आया तो अपने आपको अजीब दुनिया में पाया, जहाँ मेरे सिवा कोई न था। वहाँ मुझे अपनी आवाज सुनायी दे रही थी। मैं चीखा, पर कोई जवाब नहीं मिला। धीरे-धीरे वातावरण बदला और रोशनी की किरणें बिखरीं। ऐसा लगा हेमन्त ऋतु का मौसम है और मैं निर्वस्त्र हूँ पर सर्दी नहीं लग रही थी।

इसी प्रकार 'मोर अबाउट लाइफ ऑन द वर्ल्ड अनसीन' के लेखक एन्थोनी बोर्गिया ने एक प्रेतात्मा से साक्षात्कार के दौरान पूछा था- 'क्या परलोक में नरक जैसी कोई जगह है ?' इसके उत्तर में प्रेतात्मा ने बताया- 'विभिन्न धर्मों ने नरक की जैसी रूपरेखा खींची है, ऐसा कोई स्थान परलोक में नहीं है। ऐसी बस्तियाँ अवश्य हैं जहाँ लोगों का मन घुटन महसूस करता है। इन बस्तियों में कोई प्रतिबंध नहीं है। जब चाहें दुखद वातावरण से छुटकारा पा लें। लेखक ने जिसकी आत्मा से साक्षात्कार किया, वह जीवित अवस्था में उससे परिचित था। बोर्गिया ने बताया कि बेन्सन नामक उक्त व्यक्ति ठीक ऐसी ही धारणाएँ अपने जीवनकाल में भी देखता था। उसकी मृत्यु ४५ वर्ष की उम्र में हुई थीं। उसकी आत्मा ने कहा 'यहाँ आयु का कोई भी बन्धन नहीं है। यदि कोई व्यक्ति वृद्धावस्था में मरता है, तो

भी उसकी दशा जवानों जैसी ही होती है।' बेन्सन अपने जीवनकाल में कहा करता था कि बचपन, बुढ़ापा और जवानी शरीर की नियति है। ईसाई धर्म से उसकी ईर्ष्या थी, इसलिए मरणोपरान्त भी उसका सूक्ष्म शरीर इसी प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त करता रहा।

मृत्यु के बाद के अनुभव भिन्न-भिन्न होते हैं। 'इन द डॉन बियॉन्ड ऑफ' के लेखक टामस ने एक प्रेतात्मा का मृत्यु के समय का अनुभव इस तरह दिया है - 'मेरा हृदय बैठा जा रहा है, जैसे प्रकाश खत्म हो रहा है। अँधेरा आया, फिर वायुमण्डल में कुछ प्रकाश फूटा। मुझे अपने उन बच्चों की आवाजें सुनायी दे रही थीं, जो पहले ही चल बसे थे। फिर मूर्च्छा के बाद मैंने देखा कि मेरे लड़के, मेरे भाई तथा अन्य रिश्तेदार, जो मर चुके थे, मेरे पास ही थे।'

इसी पुस्तक में एक चर्च के पादरी की मृत्यु और उसके पुनः जी उठने की चर्चा की गयी है। बिलवार्न नामक उक्त पादरी ने बताया- 'मृत्यु के समय मुझे ऐसा लगा कि कोई धागा मुझे अन्तरिक्ष से जोड़े हुए है जो कुछ ही देर में कट गया और मैं प्रकाशवान अन्तरिक्ष में तैरने लगा, जहाँ घण्टियों की आवाजें सुनायी दे रही थीं।' एडवर्ड रेण्डेल ने एक प्रेतात्मा से साक्षात्कार किया तो उसने बताया 'मरने के बाद मैंने अपने चारों ओर उन व्यक्तियों को देखा, जो पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। मैंने पहले अपने को ऊपर उठते देखा फिर नीचे पाया। मेरी तमाम वेदना खत्म हो गयी थी। मुझे जो आत्माएँ लेने आयी थी, उन्होंने ही बताया कि मैं मर चुका हूँ। कुछ व्यक्तियों को मरने के समय सुरंग में से गुजरने का अनुभव होता है, कुछ को तैरने जैसा अनुभव होता है। लेखक आर्थर फिडले ने लिखा है- 'मरणासन्न व्यक्ति को अतीत की सारी घटनाएँ क्रमानुसार दिखायी पड़ती हैं।'

उपर्युक्त साक्षात्कारों से यह बात प्रमाणित होती है कि मृत्यु के समय हर मनुष्य की वैसी ही मन:स्थिति होती है जैसी उसके जीवनकाल में होती है। दरअसल मरने के बाद नया जीवन मिलता है। उस जीवन में कौन-सी संभावनाएँ उपलब्ध हो सकती हैं, इसकी नींव भी इसी जीवन में पड़ जाती हैं। अतएव अगले जीवन को सुखमय बनाने के लिए जीवन को आनन्दित, पवित्र और शुद्ध बनाना आवश्यक है, ताकि मरने के बाद वैसी ही मन:स्थिति बनी रहे।

१० मृत्यु जीवन का अन्त नहीं

'आत्मा की खोज' विषय लेकर शोधकार्य करने वाले अमरीका के एक विज्ञानवेत्ता डॉ० स्टीवेंसन कुछ समय पहले भारत आए थे। यह पुनर्जन्म को आत्मा के चिरस्थायी अस्तित्व का अच्छा प्रमाण मानते हैं। शायद इसी कारण उन्होंने भारत को अपने शोधकार्य के लिए विशेष उपयोगी समझा। भारतवर्ष की धार्मिक मान्यता में पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है इसलिए यहाँ पर पिछले जन्य की स्मृतियों बताने वाले बालकों की बातें दिलचस्पी से सुनी जाती हैं, जबकि अन्य देशों में ऐसी स्थिति नहीं है। ईसाई और मुस्लिम ग्रन्धों में पुनर्जन्म को मान्यता नहीं है।

डॉ० स्टीवेंसन ने संसार भर की लगभग ६०० ऐसी घटनाएँ एकत्रित कीं, जिनमें किन्हीं व्यक्तियों द्वारा बताये गये उनके पूर्वजन्मों के अनुभव प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं। इनमें से १७० प्रमाण अकेले भारतवर्ष के हैं। इनमें बड़ी आयु के लोग कम हैं- अधिकांश तीन वर्ष से लेकर छह वर्ष तक के बालक हैं। नवोदित कोमल मस्तिष्क पर पूर्वजन्म की छाया अधिक स्पष्ट रहती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ वर्तमान जन्म की जानकारियाँ इतनी अधिक लद जाती हैं कि उस दबाव से पिछली स्मृतियों विस्मृति के गर्त में खो जाती हैं।

पूर्वजन्म का स्मरण किस प्रकार के लोगों को रहता है, इस संबंध में डॉ० स्टीवेंसन का मत है कि जिनकी मृत्यु किसी उत्तेजनात्मक आवेशग्रस्त मन:स्थिति में हुई हो, उन्हें पिछली स्मृति अधिक रहती है। दुर्घटना, हत्या, आत्महत्या, प्रतिशोध, कातरता, अतृप्ति, मोहग्रस्तता का विक्षुब्ध घटनाक्रम प्राणी की चेतना पर गहरा प्रभाव डालता है और वे उद्वेग नये जन्म में भी स्मृति-पटल पर उभरते रहते हैं। अधिक प्यार, अधिक द्वेष जिनसे रहा होता है वे लोग विशेष रूप से स्मरण रहते हैं।

भय, आशंका, अभिरुचि, बुद्धिमत्ता, कला-कौशल आदि की भी पिछली छाप बनी रहती है। जिस प्रकार की दुर्घटना हुई हो, उस स्तर का वातावरण देखते ही अकारण डर लगता है। जैसे- किसी की मृत्यु पानी में डूबने से हुई हो तो उसे जलाशयों को देखकर अकारण ही डर लगने लगेगा। जो व्यक्ति बिजली कड़कने और गिरने से मरा है, उसे साधारण पटाखों की आवाज भी डराती रहेगी। आकृति की बनावट और शरीर पर जहाँ-तहाँ पाये जाने वाले विशेष चिन्ह भी अगले जन्म में उसी प्रकार के पाये जाते हैं। एक स्मृति में पिछले जन्म में पेट का ऑपरेशन-चिन्ह अगले जन्म में भी उसी स्थान पर एक विशेष लकीर के रूप में पाया गया। पूर्वजन्म की स्मृति सँजोये रहने वालों में आधे से अधिक ऐसे पाये पाये हैं जिनकी मृत्यु पिछले जन्म में बीस वर्ष से कम की आयु में हुई। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे भावुक संवेदनायें समाप्त होती जाती हैं और मनुष्य बहुधंधी, कामकाजी तथा दुनियादार बनता जाता है। भावनात्मक कोमलता जितनी कठोर होती जाएँगी, उतनी ही उसकी संवेदनाएँ झीनी पड़ेंगी और स्मृतियाँ धुँधली पड़ जाएँगी।

डॉ० स्टीवेंसन के शोध-रिकॉर्ड में एक ऐसी पाँच वर्ष की लड़की की भी घटना है, जो हिन्दीभाषी परिवार में जन्म लेकर भी बंगला गीत गाती थी और उसी शैली में नृत्य करती थी, जबकि कोई बंगाली उस घर-परिवार के समीप भी नहीं था। इस लड़की ने अपना पूर्वजन्म सिलहट का बताया। इस जन्म में वह जबलपुर में पैदा हुई। पर उसने पूर्वजन्म की जो घटनाएँ तथा स्मृतियाँ बतायी वे पता लगाने पर ९५ प्रतिशत सही सिद्ध हुई।

१०.१ दुर्घटना के बाद पुनर्जन्म

इंगलैण्ड में पुनर्जन्म की एक विचित्र घटना कुछ समय पूर्व ही प्रकाश में आई है। नार्थम्बरलैड में एक सज्जन पोलक की दो लड़कियों सड़क पर किसी मोटर की चपेट में आकर मर गई थी। बडी लड़की ११ वर्ष की थी - जोआना। छोटी छह वर्ष की - जैक्लीन।

दुर्घटना के कुछ समय बाद श्रीमती पोलक गर्भवती हुई तो उन्हें न जाने क्यों यही लगता

रहा कि उनके पेट में दो जुड़वाँ बच्चे हैं। डाक्टरी जाँच करायी गई तो वैसा कुछ प्रमाण न मिला। पर बाद में पोलक के लड़कियाँ ही जन्मी। एक का नाम रखा गया गिलियन तथा दूसरी का जेनिफर। इन दोनों के शरीर पर वे निशान पाये गये जो उनके पूर्वजन्म में थे। इतना ही नहीं, उनकी आदतें भी वैसी ही थीं, जैसी मृत लड़कियों की। इन लड़कियों को मरी हुई बच्चियों के बारे में कुछ बताया नहीं गया था, पर वे बड़ी होकर आपस में पूर्वजन्म की घटनाओं की चर्चा करती हुई पायी गईं। समयानुसार उन्होंने अनेक संस्मरण बताकर तथा अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं की जानकारी देकर यह सिद्ध किया कि उन दोनों ने पुन: जन्म लिया है।

कोपेनहेगन (डेनमार्क) की एक सात वर्षीया लड़की लीना मार्कोनी अपने पूर्वजन्म के बारे में बताया करती थी। वह अपने को फिलीपीन निवासी किसी होटल मालिक की लड़की कहती थी और पिछले जन्म का नाम मारिया एस्पिना बताती थी। ग्यारह वर्ष की उम्र में वह मरी और फिर वह कोपेनहेगन में पैदा हो गई। ये सभी बातें आश्चर्यजनक थी। विशेषतया ईसाई परिवार की लड़की के लिए जिसमें पुनर्जन्म की मान्यता का प्रचलन नहीं है। इस पूर्वजन्म की स्मृति के बारे में बताये गये देश तथा स्थान पर जाँच-पड़ताल की गई तो उसका कथन सही पाया गया।

सामान्यत: यह कहा जाता है कि ईसाइयों और मुसलमानों में पुनर्जन्म को मान्यता नहीं है, पर उनके धर्मग्रंथों में इन मान्यताओं का बारीकी से अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि प्रकारान्तर से वे भी पुनर्जन्म की वास्तविकता को मान्यता देते हैं और परोक्ष रूप से उसे स्वीकार करते हैं।

इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स के बारहवें खण्ड में अफ्रीका-ऑस्ट्रेलिया और अमरीका के आदिवासियों के सम्बन्ध में यह अभिलेख है कि वे सभी समान रूप से पुनर्जन्म को मानते हैं। मरने से लेकर जन्म होने तक की विधि-व्यवस्था में मतभेद होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि इन महाद्वीप के आदिवासी आत्मा की सत्ता को मानते हैं और पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं।

१०.२ असाधारण प्रतिभा

बहुत छोटी आयु में असाधारण प्रतिभा का होना भी पुनर्जन्म का एक प्रामाणिक आधार है। मनुष्य का स्वाभाविक विकास एक आयुक्रम के साथ जुड़ा हुआ है। तीव्र मस्तिष्क कितना ही क्यों न हो, उसे क्रमबद्ध प्रशिक्षण की आवश्यकता तो रहेगी ही। यदि बिना किसी प्रशिक्षण अथवा उपयुक्त वातावरण के छोटे बालकों में असाधारण विशेषताएँ देखी जाएँ तो उसका समाधान भी उनके पूर्वजन्मों के संग्रहीत ज्ञान को ही कारण मानने से हो सकता है।

पूर्वी जर्मनी का विलक्षण प्रतिभासम्पन्न तीन वर्ष का बालक हामेन केन मस्तिष्क विद्या के शोधकर्ताओं का आकर्षण केन्द्र रहा है। यह बालक इतनी छोटी उम्र में जर्मन भाषा की पुस्तकें पढ़ने लगा था तथा हिसाब के सामान्य प्रश्नों को हल करने लगा था। इतना ही नहीं

उसने फ्रेंच भाषा को भी अच्छी तरह सीख ली थी। सामान्य मानवी विकासक्रम से सर्वथा भिन्न प्रकार की इस प्रगति ने मस्तिष्क वैज्ञानिकों को चकित कर दिया।

संसार के इतिहास में ऐसे जन्मजात प्रतिभाशाली बालकों की संख्या बढ़ी है। साइबर नेटिक्स विज्ञान के आविष्कर्ता वीनर ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय पाँच वर्ष को आयु से ही देना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय भी उसका मस्तिष्क बड़े व्यक्तियों जैसा विकसित था और युवा वैज्ञानिकों की पंक्ति में बैठ कर वह उसी स्तर के विचार व्यक्त करता था। उसने १४ वर्ष की आयु में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। ऐसा ही एक अन्य बालक पास्कल १५ वर्ष की आयु में एक प्रामाणिक विद्वान ग्रंथ लिखकर प्रकाशित करा चुका था। मोजार्ता सात वर्ष की आयु में संगीताचार्य बन गया था। गेट ने ९ वर्ष की आयु में यूनानी, लैटिन और जर्मन भाषाओं में कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था।

इस प्रकार के अनेकानेक प्रमाण आए दिन सामने आते रहते हैं, जिनसे पुन:जन्म मान्यता की पुष्टि होती है।

११ यमदूतों की भूल

फर्रुखाबाद जनपद की सदर तहसील में अरर्बिजापुर एक गाँव है। २२ मार्च, १९७१ को दिन के करीब बारह बजे गाँव के एक किसान गयादीन की मृत्यु हो गयी। वह कई दिनों से बीमार था। उसके घर पर रोना-धोना मच गया। उसका एक पुत्र फर्रुखाबाद बाजार कफन खरीदने गया। पास-पड़ोस के लोग गयादीन के शव के पास एकत्र हो गये थे। शव को एक चादर से ढँक दिया गया था।

कफन आ गया, तो लोग शव को अन्त्येष्टि के लिए ले जाने की तैयारी में जुट गये। गयादीन का साढू गाँव में ही रहता था, लेकिन उस समय कहीं गया हुआ था। अर्थी उठाने से पूर्व लोगों ने उसके आने का इंतजार कर लेना उचित समझा। यों करीब ढाई घण्टे इंतजार में गुजर गये। साढू आया, तो लोग अर्थी उठाने के लिए उठे।

तभी लोगों ने देखा, शव में कुछ हरकत हुई और कुछ ही क्षण बाद साँस चलने के चिह्न भी दृष्टिगोचर होने लगे। सब लोग चकित होकर शव की ओर देख रहे थे। एक आदमी ने गयादीन का मुँह खोल दिया। लोगों ने देखा, गयादीन की नाड़ी भी चल रही थी। गयादीन का साढू बोला, 'भाई साहब तो जिन्दा हैं। तुमलोग इन्हें मरा हुआ समझ बैठे थे। अभी इनकी जिन्दगी बाकी मालूम देती है।'

गयादीन ने आँखे खोल दी। जो लोग अब तक रो रहे थे, गयादीन के पास आकर हँसने लगे। गयादीन ने पीने के लिए पानी माँगा। पानी पीकर गयादीन बैठ गया। लोगों ने उससे पूछा, 'आपको क्या हो गया था! हम लोग तो आपको मरा हुआ समझ कर श्मशान ले जाने की तैयारी कर रहे थे।'

गयादीन बोला, 'बताता हूँ,' बीमारी से गयादीन का स्वर क्षीण था। उसने सबको अपनी

आपबीती सुनायी- 'मैं बिस्तर पर पड़ा था कि दो आदमी मुझे पकड़कर ले गये। मैं बहुत तड़फड़ाया, लेकिन वे नहीं माने। मैं ललचायी आँखों से अपने बाल-बच्चों को देख रहा था। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर घसीटा तो मैं लाचार हो गया। वे लोग मुझे गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे ले गये और वहाँ मुझे खड़ा कर बोले, 'देखो, अब तुम्हारे घर वाले तुम्हारे लिए रो रहे हैं। वे तुम्हें श्मशान ले जाएँगे और जला देंगे।' मैं बहुत उत्सुकता से अपने घर और परिवार के लोगों की ओर देख रहा था।

'उन्होंने पुन: मेरी बाँहें पकड़ी और मुझे लेकर आकाश में उड़ने लगे। मैं बहुत तेजी से उनके साथ-साथ उड़ा जा रहा था। वे मुझे एक बहुत सुन्दर स्थान पर ले गये। यहाँ एक विशाल भवन बना था। उसका फाटक बहुत बड़ा था और दरवाजों-दीवारों का रंग सुनहरा था। फाटक के बाहर सेमल का एक बहुत जबर पेड़ खड़ा था। उन्होंने मुझे वहीं खड़ा कर दिया। थोड़ी देर में चार आदमी और मेरी ही तरह बाँधकर वहाँ ले आये गये। उन्हें भी उसी सेमल के पेड़ से बाँधा गया और उन पर मार पड़ने लगी। वे चिल्लाने, गिड़गिड़ाने लगे। उन्हें बड़ी बेरहमी से मारा-पीटा जा रहा था।

कुछ देर बाद एक लम्बी दाढ़ी वाले महात्मा वहाँ पर आये। वे मुझे कुछ पहचाने-से लगे। मैंने उन्हें नजदीक से देखा, तो वे मुझे गाँव के जमींदार साहब जान पड़े।

मैंने उन दाढ़ी वाले महात्मा को अपने गाँव का जमींदार समझकर प्रणाम किया और उनसे कुशल-क्षेम पूछा, तो उन्होंने मुझे दुत्कार कर फटकार दिया। वे दोनों आदमी, जो मुझे पकड़कर ले गये थे, वहीं हाथ बाँधे हुए खड़े थे। दाढ़ी वाले ने उन दोनों को खूब फटकारा और बोले, 'यह गयादीन नहीं है, वह दूसरा गयादीन चमार है। इसे हटाओ।'

उनके ऐसा कहते ही मुझे यहाँ से धकेल दिया गया। धकेलने से पहले मुझे लोहे की एक छड़ से मारा भी गया। उसका दाग मेरी पीठ पर कहीं पड़ा होगा।'

गयादीन के शरीर पर से कपड़ा हटाकर देखा गया, तो उसकी पीठ पर एक काला दाग बना हुआ था।

गयादीन अपनी कथा सुना रहा था और सब लोग आश्चर्यचकित हो सुन रहे थे। तभी सहसा गाँव के एक कोने से, जहाँ हरिजन-बस्ती थी, रोने की आवाजें सुनायी पड़ी। वहाँ कैसा रोना-धोना मच गया, इसका पता लगाने एक व्यक्ति उस बस्ती की ओर गया। लौटने पर उसने बताया कि हरिजन-बस्ती का गयादीन चमार अचानक गुजर गया। थोड़ी देर पहले वह स्वस्थ और भला-चंगा था। यह अपनी भैंस को गाँव के तालाब में पानी पिलाकर लौटा था। भैंस को खूँटे से बाँधकर वह खड़ा हुआ ही था कि सहसा उसे अपने शरीर में, विशेषकर छाती में कुछ पीड़ा महसूस हुई। खाट पर लेटते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसकी मृत्यु पर ही उसके घर के लोग रो रहे हैं।

इस घटना की सत्यता की जाँच करने मैं स्वयं उस गाँव में गया। गयादीन किसान आज भी जीवित है, कोई भी उसके पास जाकर जाँच कर सकता है।

१२ संन्यासी की आत्मा

यह घटना अक्टूबर, १९७४ के दूसरे या तीसरे सप्ताह की है। शहर से करीब ५० किलोमीटर दूर सिंहावल नाम का एक कस्बा है जहाँ कुछ सरकारी कार्यालय भी हैं। इन सरकारी कार्यालयों के पास ही पशु-चिकित्सालय भी है। पशु-चिकित्सालय के प्रभारी डॉ० श्री शंकर सिंह से ही सम्बन्धित यह घटना है।

चिकित्सालय के बहुत पुराने और कच्चे मकान का एक हिस्सा कुछ ही साल पहले बरसात के दिनों में धराशायी हो गया था। इस कारण चिकित्सालय के लिए एक नया मकान बनवाया गया। उद्घाटन समारोह के बाद चिकित्सालय को नये मकान में ले जाने की तैयारी की गयी। इन्हीं दिनों एक रात जब डाक्टर सिंह सो रहे थे, स्वप्न में उन्हें एक प्रेतात्मा दिखायी दी। प्रेतात्मा ने डॉ० सिंह से कहा कि अस्पताल के पुराने मकान का जो हिस्सा बचा है, वह गिरेगा नहीं। अत: तुम अस्पताल को उसी मकान में रहने दो।

सुबह डॉ० साहब ने कई लोगों से स्वप्न की यह बात बतायी। तब वहाँ के रहने वाले पुराने लोगों ने बताया कि अस्पताल के पुराने मकान में एक प्रेतात्मा रहती है, जो एक संन्यासी की है। वह संन्यासी शंकर भगवान का भक्त था और उसी मकान में रहता था।

लेकिन डाक्टर साहब को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और उन्होंने उस प्रेतात्मा को गाली-वाली बकते हुए ललकार दिया कि अस्पताल हटाकर हम नये मकान में जरूर ले जाएँगे, देखें वह क्या कर लेता है?

उनकी ये बातें सुनकर पुराने लोगों ने उन्हें समझाया और ऐसा करने से मना किया। पर डाक्टर साहब ने उनकी परवाह न की।

दूसरी रात को जब डाक्टर साहब सोने की तैयारी कर रहे थे, प्रेतात्मा अचानक छाया-रूप में प्रकट हुई और बोली, 'ऐ रे, तैं हमका गारी देत रहै ? तोरे में अत्ता हिम्मत होय त आव हमारे साथ !'

डाक्टर साहब ताव में आ गये। वे बाहर निकलकर तीन-चार पड़ोसियों को अपने साथ लेकर उस छाया के पीछे चल पड़े। छाया अस्पताल के पास पहुँचकर रुक गयी और बोली, 'चल भीतर हमरे साथ!'

डाक्टर साहब ने पाँव उठाया, तो उनके साथ के लोगों ने उन्हें पकड़ लिया।

वहाँ से अपने घर लौटते समय डाक्टर साहब अपने साथ के लोगों से आगे बढ़ गये। परन्तु अपने घर पहुंचने के पहले ही वे बहुत जोर से गिर पड़े। पीछे आने वालों ने उन्हें उठाया, तो उन्होंने बताया कि किसी ने उन्हें बहुत जोर से पटक दिया था। परन्तु वहाँ आस-पास कोई भी नहीं था। सभी लोगों ने समझा कि अवश्य ही वह संन्यासी की प्रेतात्मा होगी।

दूसरे दिन संन्यासी की क्षुब्ध आत्मा को शान्त करने के लिए पूजा-पाठ किया गया। लेकिन डाक्टर साहब तो अपनी जिद पर अड़े हुए थे। उन्होंने प्रसाद खाने से इनकार कर दिया।

दूसरे ही दिन डाक्टर साहब बीमार पड़ गये और करीब महीना भर बीमार पड़े रहे।

अब डाक्टर साहब करीब-करीब स्वस्थ हो गये हैं। चिकित्सालय अब भी पुराने मकान में ही है। पर शासन क्या पुराने मकान में चिकित्सालय रहने देगा? अगर नहीं, तो कौन अधिकारी चिकित्सालय को नये मकान में ले जाने का दुस्साहस करेगा?

अन्य महत्वपूर्ण योगपरक ग्रन्थ

सत्य घटनाक्रमेण आधारितः पारलौकिक कथा श्रृंखला

१ तृतीय नेत्र **(**सत्य घटनाओं पर आधारित सिद्ध साधक सत्सङ्ग एवम् योग-तान्त्रिक साधना प्रसङ्ग**)**

उन दिनों मेरा अधिकांश समय प्रारब्धानुसार गुप्त प्राणायाम साधना में व्यतीत होता था, लेखनी रुक-सी गयी थी। काल की स्थिरगम्यता मानों अनुभवजन्य किसी योगलब्ध भाव की प्रतीक्षा मात्र थी। दैव भाव से मेरे हाँथों में एक साथ कई कृतियाँ आ गई जिनमें 'तृतीय नेत्र' भी था। कौतूहलवश कतिपय पृष्ठों के अवलोकन मात्र ने योगानन्द कृत एक विशिष्ट पुस्तक की याद दिला दी - ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी। लेकिन लेखक "अरुण कुमार शर्मा" एक गृहस्थ अध्यात्म अन्वेषी लगे जिनका योगाभ्यास से दूर-दूर तक कोई सरोकार नहीं था, परन्तु इनकी कृतियाँ प्राणायामजन्य सत्य घटनाओं की अद्वितीय साक्ष्य थी।

स्वयं लेखक के शब्दों में -

'तृतीय नेत्र' में मैंने जो कुछ लिखा है और जो कुछ व्यक्त किया है, उस पर आप विश्वास करें या न करें यह आपकी अन्तरात्मा पर निर्भर है।

मैंने अपने पाण्डित्य, अध्यात्मिक ज्ञान और अपनी विद्वता को प्रदर्शित करने का कभी भी प्रयास नहीं किया है और न तो ख्यातोपलब्धि के लिए कभी कलम उठाने का ही प्रयत्न किया है मैंने।

पृथ्वी विशाल है। काल का प्रवाह अनन्त है। कभी तो कोई काल के प्रवाह में पड़कर इस पृथ्वी पर जन्म लेगा और जन्म लेकर मेरे बौद्धिक श्रम का मूल्य समझेगा। मेरे आध्यात्मिक ज्ञान को हृदयंगम करेगा और महत्व देगा मेरे पाण्डित्य को।

कालचक्रानुसार इन कृतियों का वैदिक ज्ञान-सागर-प्रचार-प्रसार-कृत्य के अन्तर्गत विश्व के प्रत्येक कण में प्रवाह स्वतः निसृत हो रहा है। इस आध्यात्मिक ज्ञान की किरणें प्राचीन क्रिया योग संस्थान द्वारा परिष्कृत रूप में प्राचीन सनातन वैदिक मठ की अंतरात्मा में स्थापित हो चुकी हैं।

ऐसी ही एक कृति पी० डी० ऑसपेंसकी की टर्शियम ऑरगॅनॉन थी। प्रकृति की अबूझ पहेलियों का ये भी एक पहलू था।

प्रस्तुत कथा संग्रह तृतीय नेत्र के अन्तर्गत चतुर्दश कथाओं का संग्रह है। ये अपने आप में विशिष्ट तो हैं ही, रहस्य रोमांच से भरपूर और सनसनी खेज भी हैं। यद्यपि ये अविश्वसनीय लगे किन्तु इनमें अतिशयोक्ति नहीं है। लेखक की भाषा में प्राञ्जलता और भाषा पर अधिकार भी है।

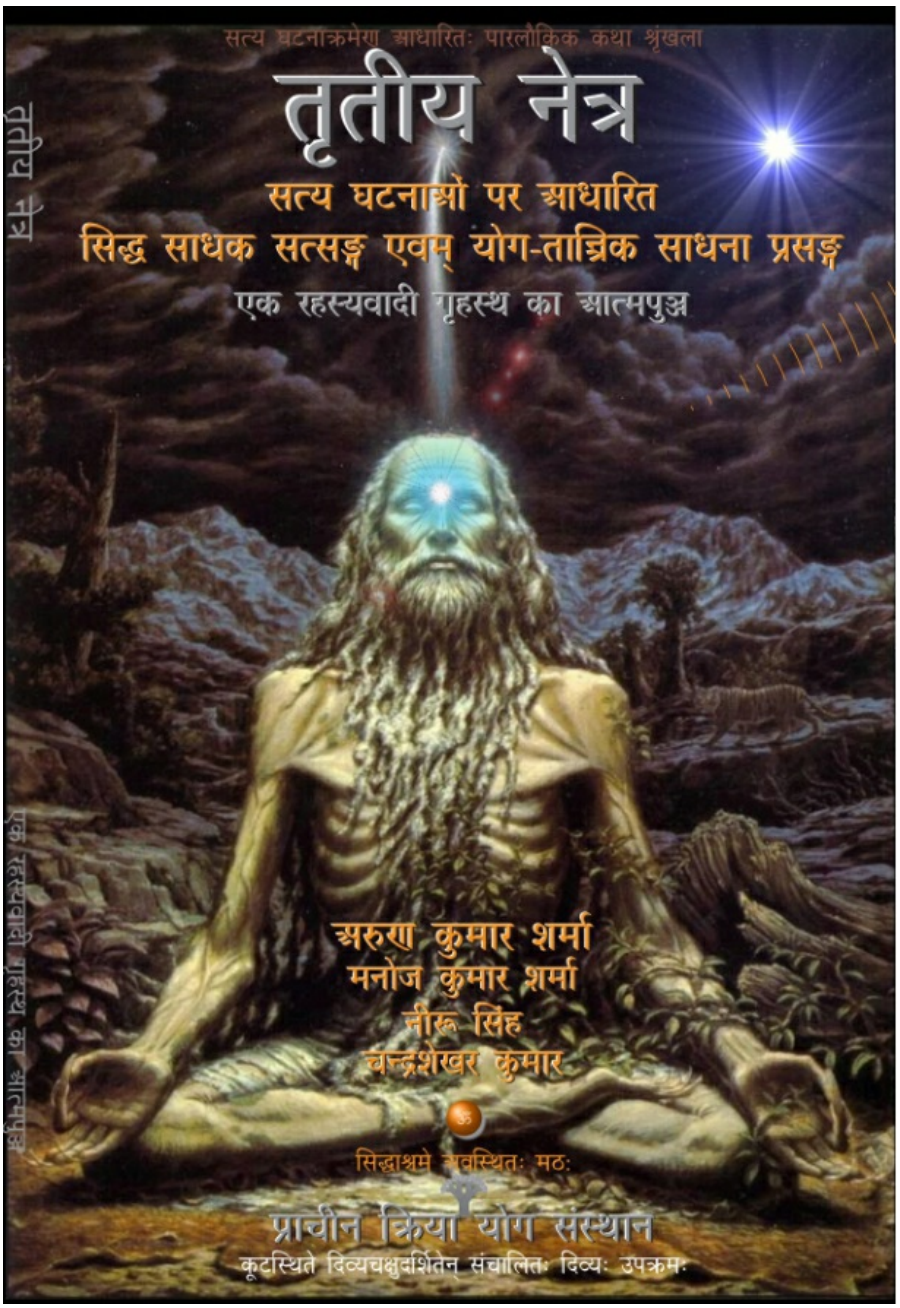

आशा है प्रस्तुत कथा-संग्रह भी अन्य कथा-संग्रहों की भांति पाठकों को प्रीतिकर होगी।

प्रस्तुत संस्करण का निर्माण प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) द्वारा किया गया है। इस प्रक्रिया में

कंप्यूटर प्रणाली की अत्याधुनिक विधियों (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++ इत्यादि) का पूर्ण प्रयोग किया गया है।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से भ्रूमध्य अवस्थित तृतीय नेत्र को जागृत किया, जिसका विस्तृत विवरण भविष्य में एक ग्रन्थ रूप में साधकों के लिए उपलब्ध होगा ।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।

२ **The Third Eye (Tantric Yoga Stories Based on True Events)**

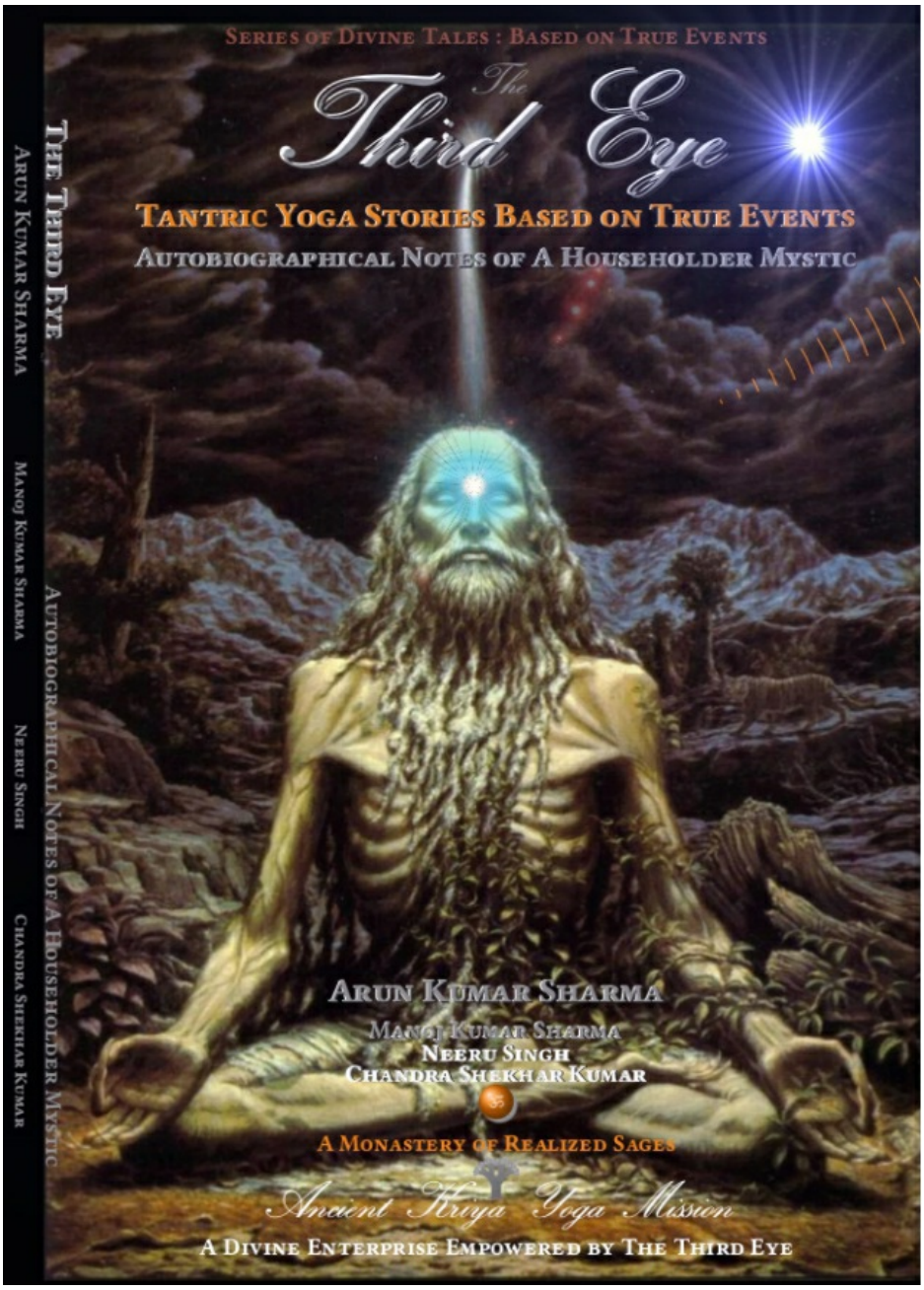

३ आकाशचारिणी (सत्य घटनाओं पर आधारित योग-तान्त्रिक कथा प्रसंग)

प्रस्तुत कथा संग्रह आकाशचारिणी के अन्तर्गत सत्रह कथाओं का संग्रह है। ये अपने आप में विशिष्ट तो हैं ही, रहस्य रोमांच से भरपूर और सनसनी खेज भी हैं। यद्यपि ये अविश्वसनीय लगे किन्तु इनमें अतिशयोक्ति नहीं है। लेखक की भाषा में प्राञ्जलता और भाषा पर अधिकार भी है।

इसी पुस्तक से

...सावन-भादों का महीना था। बादलों से अटकर काला पड़ गया था आकाश। गहन निःश्वास सी पुरुवा हवा हा-हाकार करती हुई किले में दानव की तरह खड़े पेड़ों और फैली हुई झाड़ियों को कँपा दे रही थी। घोर निस्तब्ध रात्रि। निबिड़ रात्रि का गहन अन्धकार। यदा-कदा अभिशप्त किले में निवास करने वाली प्रेतात्माओं की एक साथ हँसने और रोने की भयानक तीखी आवाजों से किले का निस्तब्ध वातावरण बार-बार काँप उठता था और उसी के साथ मेरा मन भी दहशत से भर जाता था। सहसा मेरी दृष्टि स्याह आकाश की ओर उठ गयी। क्यों उठ गयी थी? नहीं जानता। मगर दृष्टि उठते ही आकाश के श्याम पटल पर बादलों के बीच मैंने जो कुछ देखा उसने मुझे एकबारगी रोमान्चित कर दिया।

गहरे अन्धकार में डूबे हुए मेघाच्छन्न आकाश में मैंने देखा एक सुन्दर स्त्री तीव्र गति से उड़ती हुई पूरब से उत्तर दिशा की ओर चली जा रही थी। उसके काले बाल बिखर कर हवा में लहरा रहे थे। उस स्त्री की गति कभी तीव्र हो जाती तो कभी मन्द। सबसे आश्चर्य की बात थी कि मैं उस घोर अन्धकार में भी स्पष्ट देख रहा था उस आकाशचारिणी योगिनी को। निश्चय ही वह कोई उच्चकोटि की योगसाधिका थी। देखते ही देखते वह निविड़ अन्धकार के आगोश में समा गयी। ...

आशा है प्रस्तुत कथा-संग्रह भी अन्य कथा-संग्रहों की भांति पाठकों को प्रीतिकर होगी।

प्रस्तुत संस्करण का निर्माण प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) द्वारा किया गया है। इस प्रक्रिया में कंप्यूटर प्रणाली की अत्याधुनिक विधियों (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++ इत्यादि) का पूर्ण प्रयोग किया गया है।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या को पुनः प्राप्त किया — खेचरी विद्या अनन्त सिद्धिदात्री है जिसमें आकाशगामिनी विद्या सिद्धि भी एक है — साधकों के लिए यह ज्ञातव्य है कि आकाशगामिनी विद्या प्राप्ति के अनेक पथ हैं यथास्वरूप गुरुकृपाजन्य शक्तिपात, लम्बनिरोधनी योग, वायुपान पद्धति, कालिकागुह्य साधना इत्यादि — इसी भाँति खेचरी विद्या से अन्य सिद्धियाँ हस्तगत योग्य हैं यथास्वरूप मृत्युञ्जयी, अनिमेषि, गुडाकेशि इत्यादि —

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

'आकाशगमिता' सिद्धों की अति विशिष्ट अवस्था है, जिसका बहुआयामी विस्तृत विवरण 'खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या रहस्य कुञ्जिका' ग्रन्थ में उल्लिखित है।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।

♉ **The Flying Yogini (Tantric Yoga Stories Based on True Events) (Autobiographical Notes of A Householder Mystic)**

The present collection of true stories under **The Flying Yogini** entails seventeen stories. These unique and sensational stories are choke full of mysteries and adventures. Although these were incredible but do not exaggerate them. Written in an autobiographical tone, the author has demonstrated a unique lucid style and thorough command over the Hindi language in which the book was written originally. This is an attempt to preserve the original style in this English translation.

The present edition is published by Ancient Kriya Yoga Mission (A Divine Enterprise Empowered by The Third Eye)(A Monastery of Realized Sages). In the process, advanced computer systems (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++) have been utilized to its fullest extent.

An Excerpt from this book

… It was a month of monsoon. The sky was blackened being laced full with clouds. The outcry of eastern wind was so fierce, like a very deep cosmic exhalation, that the fort's daemon-like erect trees and widespread bushes were trembling. Pin-drop silence of the diabolical night. Intensive dense darkness of night. Occasionally, the quiet environment of the cursed fort used to tremble due to dwelling evil spirits' laughing and crying simultaneously in a horrible and shrill voice. With this, my mind was filled with dread. Out of sudden, my eyes were up to the dark sky. Why? I don't know. But whatever I saw between the clouds of the sky's black panels, I got goose bumps.

In the loury sky, submerged in intensely deep darkness, I saw a beautiful woman flying swiftly towards north from east. Strands of her black hair fluttered in the air. Her speed fluctuated between high and low. It was really astonishing to find my self seeing the flying yogini clearly amid thick darkness of the sky. Indeed, she was a higher order adept in yoga. Right in front of my eyes, she submerged gradually in the silent darkness.…

We hope that the present collection of stories will be equally pleasing and engaging to the readers.

'Aakashgamita' (Flying) is a very special state of adepts, the detailed description and multi-dimensional aspect of which is described in detail in the epic **'Unlocking Aakashgamini Vidya : The Art and Science of Flying**

: Khechari Adepts'.

This body is just an instrument of meditation and the individual is nothing, the individual have nothing.

A profound sage and householder mystic of Ancient Kriya Yoga Mission has regained the 'Khechari Siddha Aakashgamini Vidya' (The Art and Science of Flying with Mastering Khechari) with his intense devotion to Yoga and arduous practice of esoteric Pranayama (The Art and Science of Breathing). 'Khechari Vidya' is progenitor to innumerable miraculous spiritual powers, among which the art and science of flying is one such Vidya. Sadhaka (Practitioner of Yoga) should be aware of the fact that there are many paths for regaining and mastering 'Aakashgamini Vidya' (the art and science of flying), for instance, 'Shaktipaat' (transfer of divine energy with the grace of the Guru), Lamnirodhni Yoga, Drink Air Therapy, Austere Mysterious Sadhna of Kali (Divine Energy) etc. In a similar way, the 'Khechari Vidya' begets other divine spiritual powers worth mastering, for instance, 'Mrityunjayi' (Conquering Death), 'Animeshi' (Unwinking State), 'Gudaakeshi' (Conquering Sleep) etc.

Ancient Kriya Yoga Mission is committed to demonstrate the simple and transparent techniques of ancient science of living.

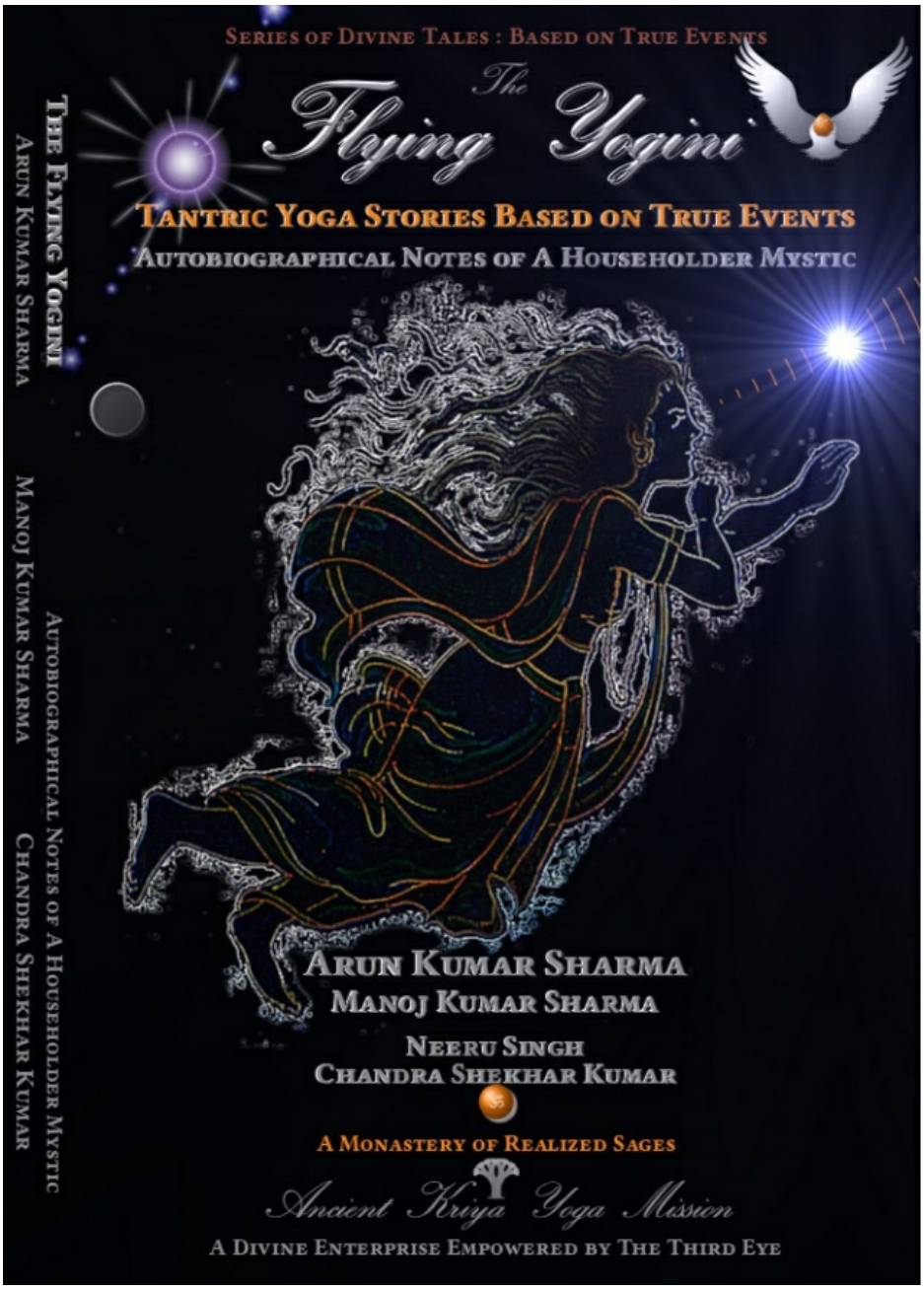

This book is dedicated to all *Sadhakas*.

कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित भाष्य श्रृंखला

१ हनुमान चालीसा कुंजिका (एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुंज)

इस पुस्तक की रचना का आधार अन्तःपुर में 'हनुमान चालीसा' के गूढ़ अर्थों एवं अलौकिक अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन है। इस पारलौकिक स्पंदन को लेखनी में समाहित

करना अति दुष्कर होता अगर ये कार्य सिद्ध साधन निर्देशित न होता। अनिर्वचनीय, अलौकिक एवं अद्भुत आनंद से परिपूर्ण इस साधना यात्रा में हनुमद्प्रज्ञता साख्य भाव दर्शित तथा सम्पूर्ण समर्पण के आभिर्भावभूत लक्षित हुई। इसी विशिष्ट अवस्था की समग्रता का समावेश इस रचना में लेखनीवश समाहित है।

This book is an outcome of inner revelations of mystical meanings of *Hanuman Chalisa*. Penning down itself was full of eternal vibrations which resembled as if being dictated by a *Siddha*. This journey was full of inexplicable ecstasy and joy, laced with complete surrendering to witnessing the state of *Hanuman*. It depicts transcendental qualities and attributes of this state in its totality.

'हनुमान' सिद्धों की अति विशिष्ट अवस्था है, जिसका बहुआयामी विस्तृत विवरण 'हनुमान चालीसा' में उल्लिखित है। साधनाकाल में साधक अपरिमित चरणों से गुजरता है। किसी भी चरणविशेष के पड़ाव का निर्धारण उसकी विशिष्टता एवं साधक की अंतर्दशा से होता है। इस साधनाक्रम में साधक की बाह्य दशावलोकन से उसकी अन्तर्दशा का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता है। बाह्य लक्षण यथा शरीर का भयानक कम्पन एवं उत्तोलन (वायु में तैरना) इत्यादि से दर्शक हत्प्रभ एवं विस्मित हो उठता है। जबकि साधक स्वयं साक्ष्य भाव से इन बाह्य लक्षणों को सरलता एवं सुगमता से स्वीकार करते हुए साधनारत रहता है।

Hanuman is a special state of *Siddhas*, the qualities of which are described by *Hanuman Chalisa*. A *Sadhak* passes through infinite number of states during his *Sadhana*. Period of stay in any state varies depending on the peculiarities of that state as well the predicament of the *Sadhak*. During this course, the outer symptoms may not be described and grasped as aptly as inner symptoms. Outer symptoms like trembling and/or levitation of body often lead to bewilderment and amusement of the beholder. Whereas being in the same state, it leads to calm acceptance and grasp of what is happening to someone else being in that state.

साधना बहुआयामी होती है जिसका निर्धारण साधक की अद्वितीयता एवं प्रारब्धता से ही हो पाता है। साधक अपनी अध्यात्म यात्रा चाहे किसी भी मार्ग से आरम्भ करे, कालांतर में अनुकूलतावश वो अतर्निर्दिष्ट मार्ग पर स्वतः अग्रसर हो जाता है। एकमात्र महत्वपूर्ण सूत्र है :

पूरी सत्यनिष्ठा एवं दृढ़ लगन से स्वयं की खोज में समर्पित रहो।

There is no single prescribed path for *Sadhana*, simply because it varies from *Sadhak* to *Sadhak*, the root of which is often buried deep in one's Providence(*Prarabdha*). Hence no matter which path a *Sadhak* adopts for his

journey to start with, he will get aligned to the best path, most suitable one for him, in due course of time, gradually. The single most important key is :

Continue seeking in with utmost Sincerity and Devotion.

विभिन्न मार्गों की विशिष्टताओं से अभिन्न साधक कालांतर में स्वयं को 'सिद्ध लोक" के पहले पायदान में पाता है। शनैः शनैः उसे ये ज्ञात होता है की ऐसी अगण्य अवस्थाएं एवं उनसे सम्बंधित स्थान सिद्ध लोक में मुद्रित हैं जिनमे से एक विशिष्ट (अवस्था + स्थान) 'हनुमान' है। साधनाकालांतर उसे इस तथ्य का स्पष्ट बोध हो जाता है कि साधनाभ्यास मूलतः क्रमिक है परन्तु साधनागत विशिष्ट अवस्था आकस्मिक है जोकि प्रारंभिक चरणों में अनैच्छिक रूप से घटित होती है।

Hence irrespective of the peculiarities and idiosyncrasies associated with various paths, the *Sadhak* finds himself in a special state all of a sudden, often termed as being at one place in *Siddha Loka*. Gradually, he realizes that there are infinite such states, hence places in *Siddha Loka*, one of which is *Hanuman*. It becomes clear to him that practice (*Sadhana*) is gradual, but being in any such state is all of a sudden, involuntary ones during early stages of *Sadhana*.

कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित भाष्य श्रृंखला

हनुमान चालीसा कुंजिका

एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुंज

Unlocking Hanuman Chalisa

Revelations of a Householder Mystic

चन्द्रशेखर कुमार

Ancient Kriya Yoga Mission

लेखक ने अपनी आध्यात्मिक यात्रा का आरम्भ प्रचलित प्राणायाम यथा अनुलोम विलोम, कपाल भाती, भस्त्रिका एवं भ्रामरी के नित्य एक से तीन घंटे तक सामान्य अभ्यास प्रक्रिया से किया। कुछ वर्षों के उपरांत उन्हें एक गूढ़ प्राणायाम पद्धति (वायुपान विधान) का रहस्योद्घाटन हुआ जोकि मूलतः भस्त्रिका सदृश प्रतीत होती थी। इसका विस्तृत विवरण अन्य पुस्तक : *Drink Air Therapy To Kill Diabetes: A Path To Self-Cure And Immortality* : (आंग्ल भाषा में उपलब्ध) में है। कालांतर में अन्य गूढ़तम प्राणायाम प्रक्रिया का अन्तः प्राकट्य करण हुआ जिसका मूल अंग : भस्त्रिका प्राणायाम सदृश प्रणाली का सतत, सरल एवं स्वतः अनरवरत अभ्यास : है।

The author started his journey with typical *Pranayam* like *Anulom Vilom*, *Kapal Bhati*, *Bhastrika* and *Bhramari*, practicing for 1 hour to 3 hours daily, in morning and evening. After a couple of years, he was attuned to an esoteric *Pranayam* akin to *Bhastrika*, the details of which are described in another book, *Drink Air Therapy To Kill Diabetes: A Path To Self-Cure And Immortality*. A couple of years later, he was revealed another esoteric *Pranayam*, which was again akin to *Bhastrika* with 24 x 7 hours in play.

इतिहासवेत्ता 'हनुमान चालीसा' को गोस्वामी तुलसीदास की अप्रतिम कृति मानते हैं। कालांतर में साधक को ये सत्य विदित होता है कि इसका प्रत्येक 'शब्द' अक्षुण्ण, पारलौकिक एवं अक्षय है जिसका प्रादुर्भाव सामान्यतः अगोचर है। ये सर्वदा गुंजायमान है एवं सिद्धों द्वारा इनके अनवरत तथा अदभूत कालातीत जप का श्रवण साधक को उपयुक्त काल में होता है।

Historians often attribute the composition of *Hanuman Chalisa* to *Goswami Tulsi Das*, whereas a *Sadhak* realizes, when time is ripe for him, that the particular *Shabda* is eternal, ever present, everywhere, perceptible to one only when one is ready during his course of *Sadhana*, including listening to these being chanted/sung by *Siddhas*, all the time, beyond the time.

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

This body is just an instrument of meditation and the individual is nothing, the individual have nothing.

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।

This book is dedicated to all *Sadhakas*.

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

Ancient Kriya Yoga Mission is engaged in disseminating simple techniques of ancient science of living.

२ **Drink Air Therapy to Kill Diabetes (A Path To Self-Cure And Immortality)**

Drink Air Therapy is an ancient practice for Self-Realization.

This book is written for preparing common mass to embrace a very simple but powerful self-help mechanism of drinking air(not breathing air) to eradicate Diabetes(both Type 1 and 2) from root and foster longevity with healthy body and mind.

Ancient Kriya Yoga Mission is engaged in disseminating simple techniques of ancient science of living.

These simple techniques are meant to be practiced by anyone without any external assistance and guidance.

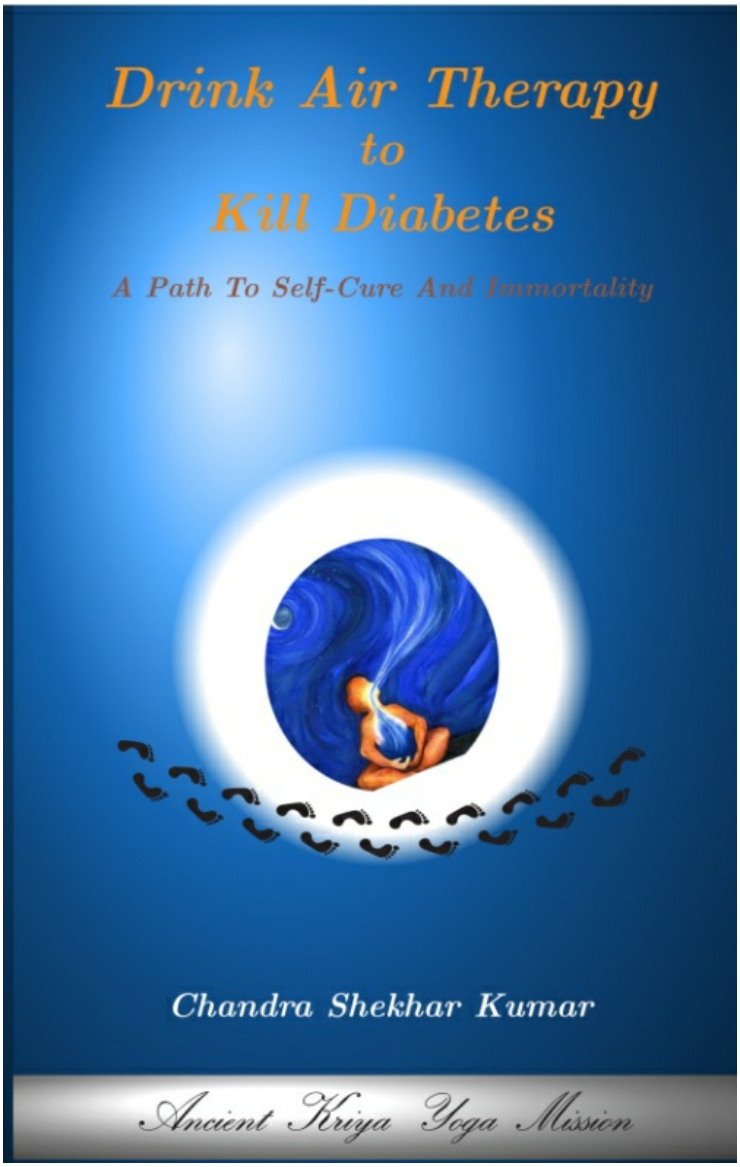
Drink Air Therapy
to
Kill Diabetes
A Path To Self-Cure And Immortality
Chandra Shekhar Kumar
Ancient Kriya Yoga Mission

३ खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या रहस्य कुञ्जिका (व्योमगम्योपनिषद)

खेचरी विद्या की गणना योगभक्तिपरक विज्ञान के चमत्कारिक विषयों में की जाती रही है — यह एक सिद्धिजन्य एवं अनुभूतिगम्य अविनाशी गुह्यतम कड़ी है — प्राचीन काल से ही योगी इसकी सार्वभौम गोपनीयता की प्रतिज्ञा एवं प्रण लेते-देते रहे हैं — सत्यपथगामी साधक इस गुह्य प्राच्यविज्ञान की अन्तर्निहित जटिलताओं के फलस्वरूप प्रायः दिग्भ्रमित हो जाते हैं —

प्राच्यकाल में यह अपूर्व विद्या व्योमगम्योपनिषद में अन्तर्निहित थी जो कालप्रवाह में विलुप्तावस्था में नियोजित हो गई — देशांतर एवं कालांतर में इसे खेचर्युपनिषद एवं त्रिशंकूपनिषद भी कहते थे। कालान्तर में अनेक ऋषि-मुनियों ने अपनी योग-तपस्चर्या की स्थिति के अनुसार इसके बहुआयामी खण्डों को प्राप्त किया जोकि अन्य उपनिषदों, घेरण्ड संहिता, हठ योग प्रदीपिका इत्यादि ग्रन्थों में पृथक भाव से उपलब्ध है —

प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से इस दुष्प्राप्य विद्या को पुनः प्राप्त किया — खेचरी विद्या अनन्त सिद्धिदात्री है जिसमें आकाशगामिनी विद्या सिद्धि भी एक है — साधकों के लिए यह ज्ञातव्य है कि आकाशगामिनी विद्या प्राप्ति के अनेक पथ हैं यथास्वरूप गुरुकृपाजन्य शक्तिपात, लम्बनिरोधनी योग, वायुपान पद्धति, कालिकागुह्य साधना इत्यादि — इसी भाँति खेचरी विद्या से अन्य सिद्धियाँ हस्तगत योग्य हैं यथास्वरूप मृत्युञ्जयी, अनिमेषि, गुडाकेशि इत्यादि —

इस पुस्तक की रचना का आधार अन्तःपुर में 'व्योमगम्योपनिषद' के गूढ़ अर्थों एवं अलौकिक अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन है। इस पारलौकिक स्पंदन को लेखनी में समाहित करना अति दुष्कर होता अगर ये कार्य सिद्ध साधन निर्देशित न होता। अनिर्वचनीय, अलौकिक एवं अद्भुत आनंद से परिपूर्ण इस साधना यात्रा में खेचरी विद्या साक्ष्य भाव दर्शित तथा सम्पूर्ण समर्पण के आभिर्भावभूत लक्षित हुई। इसी विशिष्ट अवस्था की समग्रता का समावेश इस रचना में लेखनीवश समाहित है।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

'आकाशगमिता' सिद्धों की अति विशिष्ट अवस्था है, जिसका बहुआयामी विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ में उल्लिखित है। साधनाकाल में साधक अपरिमित चरणों से गुजरता है। किसी भी चरणविशेष के पड़ाव का निर्धारण उसकी विशिष्टता एवं साधक की अंतर्दशा से होता है। इस साधनाक्रम में साधक की बाह्य दशावलोकन से उसकी अन्तर्दशा का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता है। बाह्य लक्षण यथा शरीर का भयानक कम्पन एवं उत्तोलन (वायु में तैरना) इत्यादि से दर्शक हत्प्रभ एवं विस्मित हो उठता है। जबकि साधक स्वयं साक्ष्य भाव से इन बाह्य लक्षणों को सरलता एवं सुगमता से स्वीकार करते हुए साधनारत रहता है।

अधिकांश (सामान्य) योगी एवं इतिहासवेत्ता 'खेचरी विद्या' को योगपरक मुद्रा मात्र जानते हैं जोकि भूख-प्यास, व्याधि, वृद्धावस्था इत्यादि से निवृत्ति का साधन मात्र है। कालांतर में साधक को ये सत्य विदित होता है कि यह एक सार्वभौम विद्या है एवं इसका प्रत्येक 'शब्द' अक्षुण्ण, पारलौकिक एवं अक्षय है जिसका प्रादुर्भाव सामान्यतः अगोचर है। ये सर्वदा गुंजायमान है एवं सिद्धों द्वारा इनके अनवरत तथा अदभूत कालातीत जप का श्रवण साधक को उपयुक्त काल में होता है।

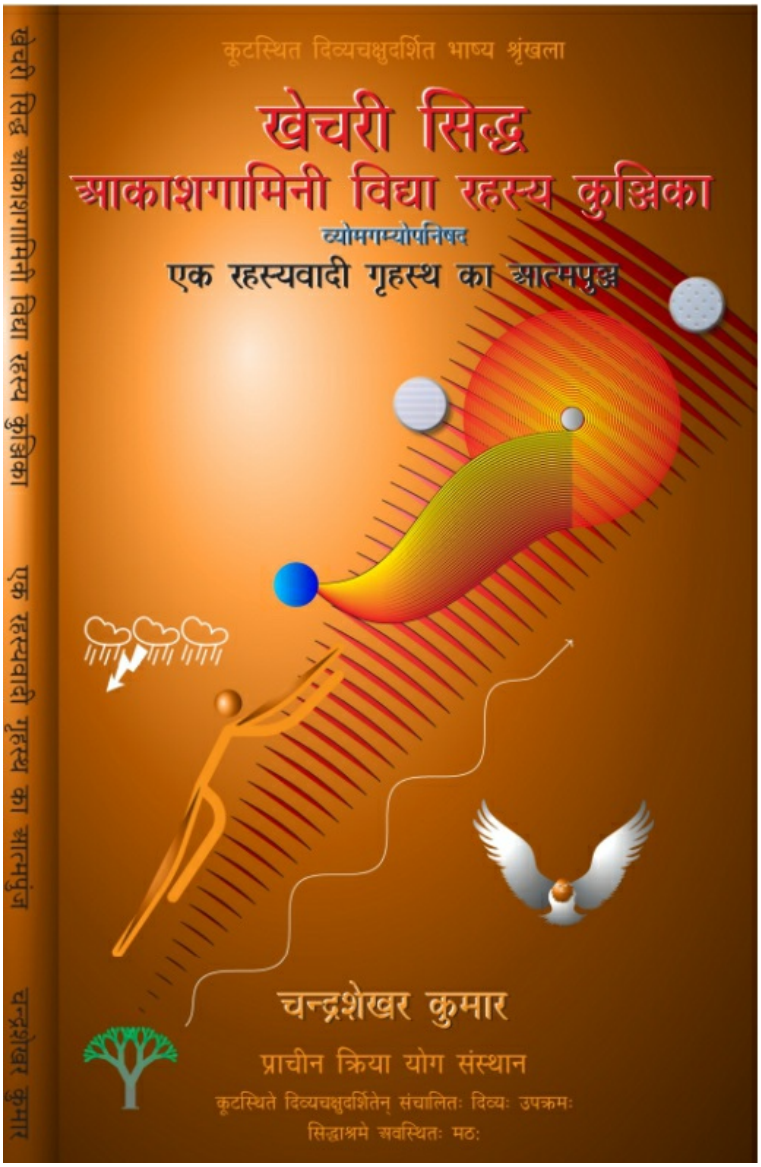

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।

४Khechari Siddha Unlocking Aakashgamini Vidya

The Art and Science of Flying
Vyomagamyopanishad

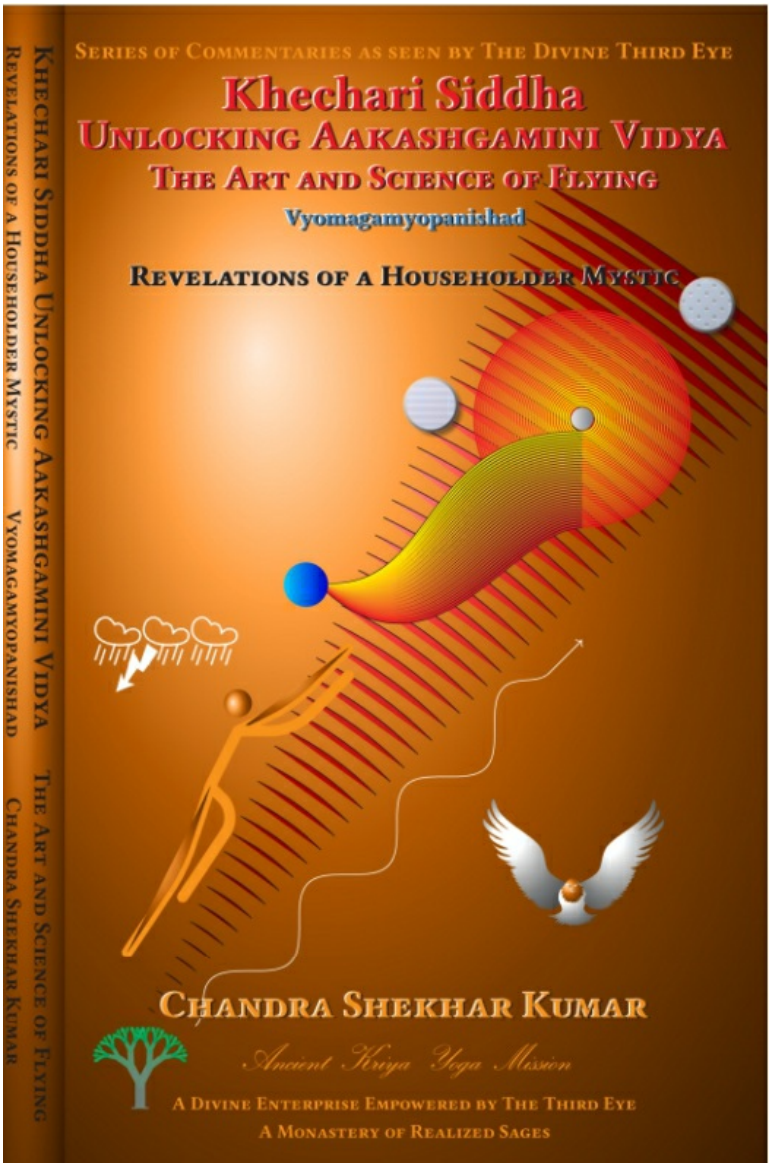

कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित आत्मदर्शन श्रृंखला

१ महा प्राणायामी लाहिड़ी गुरु गीता रहस्य कुञ्जिका

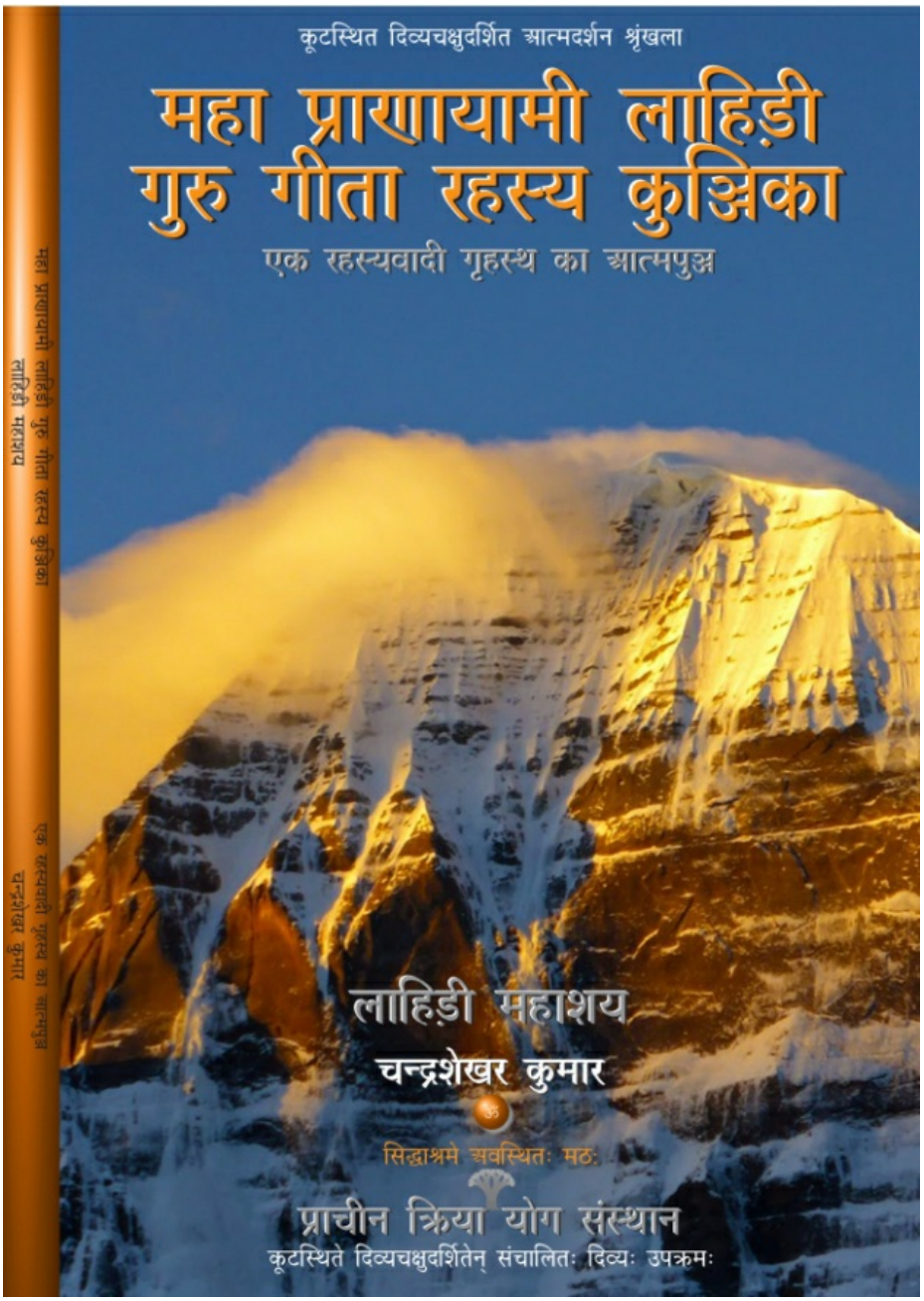

२ महा प्राणायामी लाहिड़ी कबीर गीता रहस्य कुञ्जिका

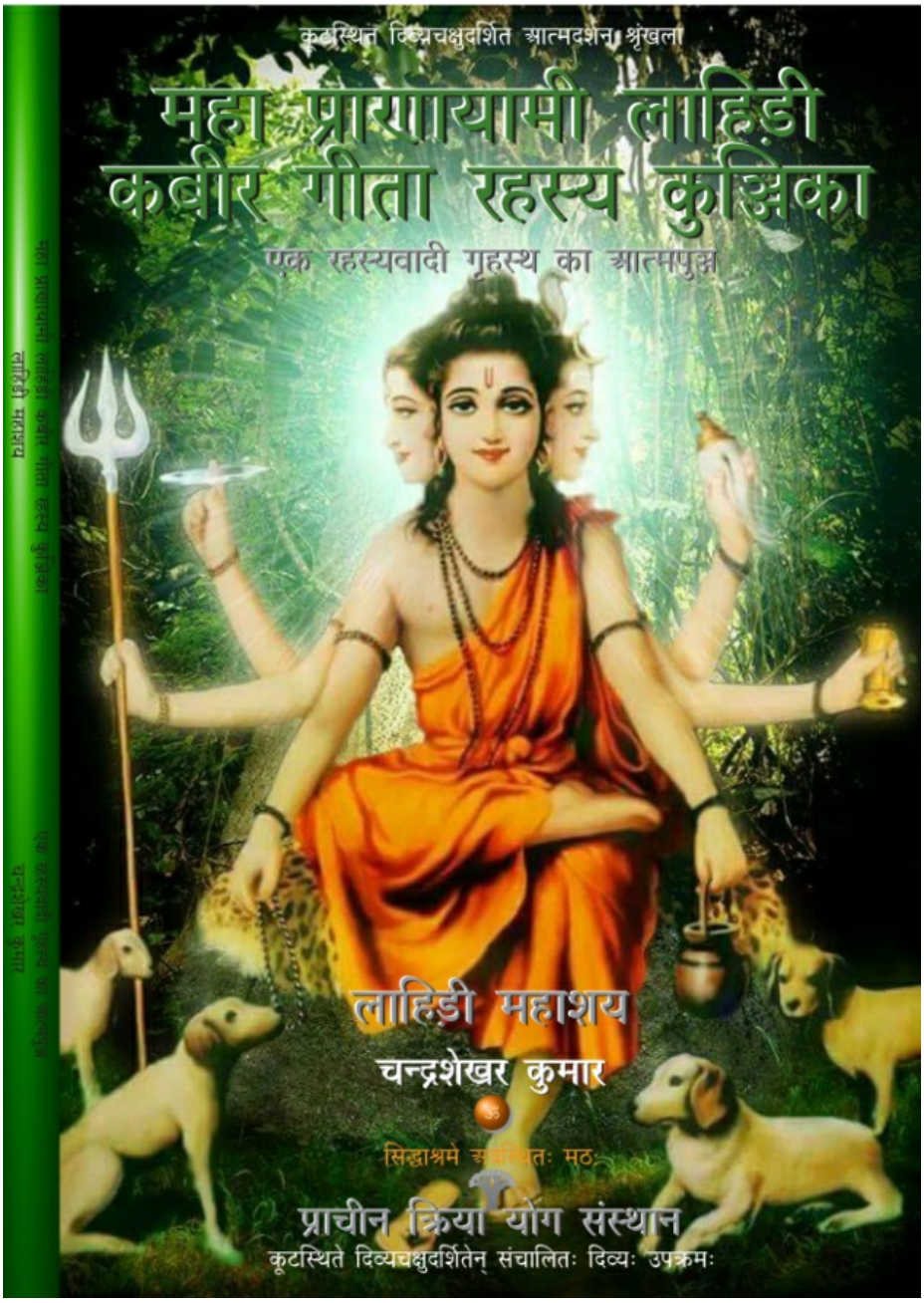

३ महा प्राणायामी लाहिड़ी अवधूत गीता रहस्य कुञ्जिका

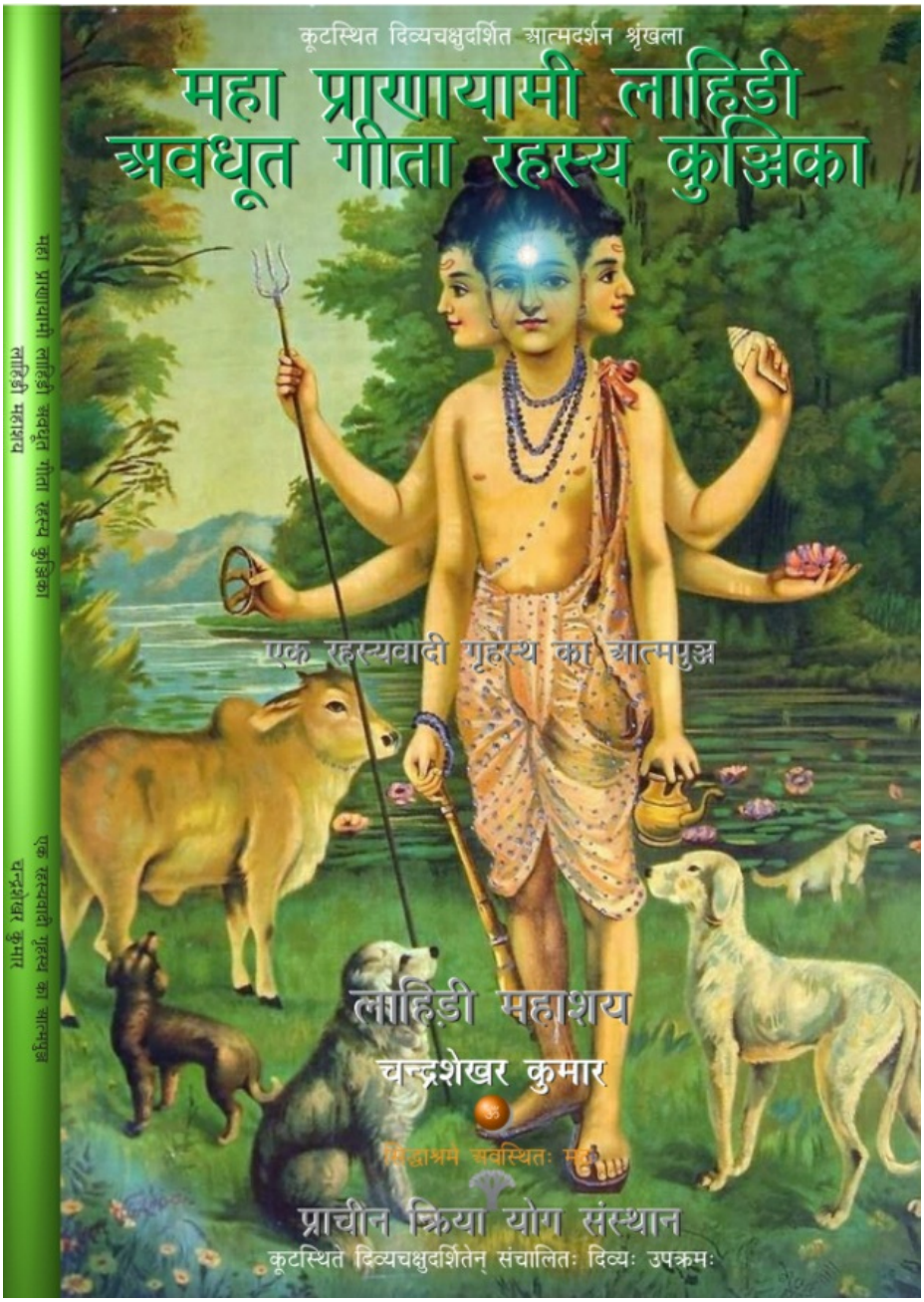

४ महा अवधूत तैलङ्ग स्वामी जीवन रहस्य कुञ्जिका

कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित आत्मदर्शन श्रृंखला

महा अवधूत तैलङ्ग स्वामी

जीवन रहस्य कुञ्जिका

एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुञ्ज

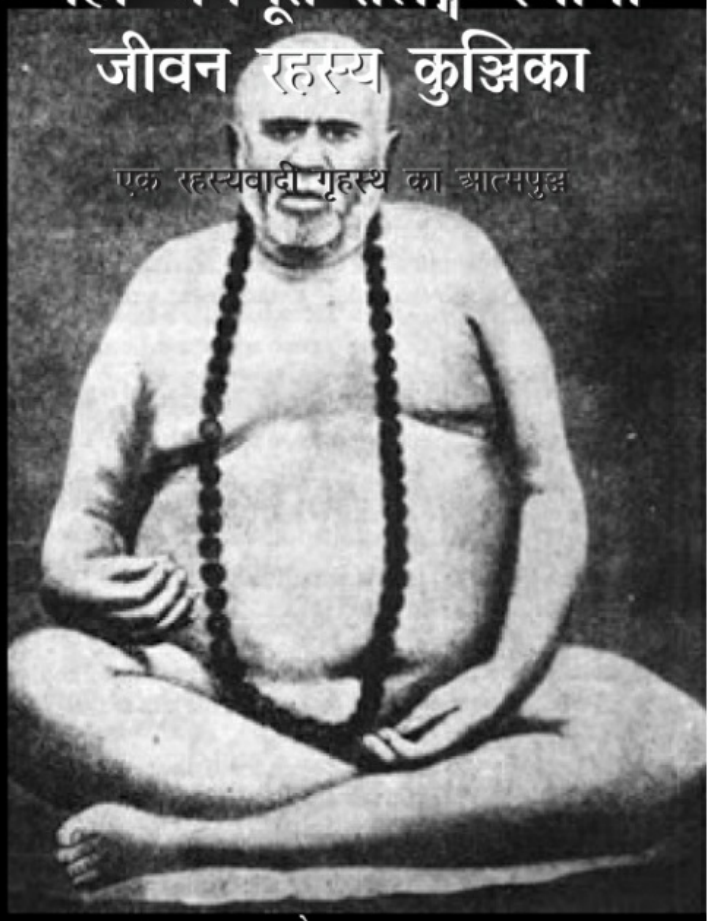

चन्द्रशेखर कुमार

Ancient Kriya Yoga Mission

महा अवधूत तैलङ्ग स्वामी रहस्य कुञ्जिका एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुञ्ज चन्द्रशेखर कुमार

५ महा प्राणायामी लाहिड़ी जीवन रहस्य कुञ्जिका